कहानीकार

मोहन राकेश

डॉ॰ सुषमा अग्रवाल

कहानीकार मोहन राकेश

कहानीकार मोहन राकेश

डॉ. सुषमा अग्रवाल

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कालोनी, जयपुर-302003
संस्करण : प्रथम
प्रकाशन वर्ष : 1979
मूल्य : बीस रुपये मात्र
मुद्रक : मूनलाइट प्रिन्टर्स
मनिहारों का रास्ता, जयपुर-3

Kahanikar Mohan Rakesh *(Criticism)*
Rs. 20.00 *By : Dr. Sushma Agarwal*

पूर्वकथन

परिवर्तन प्रकृति की अनिवार्यता है। इससे कोई नहीं बच सकता है। न जीवन, न कला और न साहित्य। एक समय था जब हम हाथी दाँत की मीनारों की छाँह में रहा करते थे। कुछ समय और बीता और हमारे जीवन में आए परिवर्तन के क्रूर हाथों ने उस समूची व्यवस्था को झकझोर दिया। नतीजा यह निकला कि हाथी दाँत की मीनारें चटकने लगी, महल ढहने लगे और हम उनकी देहरी लाँघ कर खुले मैदान में आ खड़े हुए। यह अचानक नहीं हुआ, यह तो सालों के निरन्तर संघर्ष का परिणाम था। खुली हवा में साँस लेने के कारण हम, हमारा जीवन और उसी के रंगों से धुला-पुछा और सँवरा साहित्य भी बदलता गया। बदलाव की यह प्रक्रिया आजादी के बाद तेजी से घटित हुई। संवेदनाशील कलाकारों के मनोजगत में एक हलचल हुई। अनेक परम्पराएँ टूटी–बदली और कुछ नवीनीकृत हुई। इसका असर कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास सभी पर पड़ा। साफ शब्दों में कहूँ तो कह सकती हूँ कि इस परिवर्तन को कथा-साहित्य ने जिस तेजी से पकड़ा, उस तेजी से कविता ने नहीं। आजादी के बाद का कथा-साहित्य मेरे इस मत का गवाह है। इसी कथा-साहित्य को जिन सर्जकों की यथार्थ व जीवन सापेक्ष दृष्टि ने विकास व गति प्रदान की उनमें "मोहन राकेश" की अपनी जगह है—एक बहुत बड़ी जगह है।

'राकेश' समकालीन कहानीकारों में अन्यतम हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी को आडम्बर, कृत्रिमता, सस्ती भावुकता और जुमलेबाजी से अलग करके एक आत्मीय रिश्ता प्रदान किया, एक नयी अर्थ-दृष्टि थी और एक नया संभावनाकुल संसार दिया जो गत वर्षों से लगातार आगे आने को कसमसा रहा था। यही कारण है कि राकेश की कहानियों में संवेदना की आधुनिकता है, अनुभव का खरापन है और संप्रेषण का जीवित आधार है। कहानीकार के रूप में राकेश हिन्दी की नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियों की उपलब्धि अप्रतिम है। उनके जीवन में अनेक संदर्भ ऐसे आये जब उन्हें मोह-भंग की स्थिति से गुजरना पड़ा अनेक जीवन्त अनुभवों के कडवे-कसैले घूँट पीने पड़े।। अतः उनका कहानी साहित्य इस मोह-भंग के त्रासद अनुभवों को हर बार नयी शैली में शब्दबद्ध करता रहा। उनकी कहानियों में प्रायः अकेले पड़े उस व्यक्ति का चित्रण हुआ है जो आज के समाज में परिवर्तित मूल्यों और साम्बन्धिक यन्त्रणा को अपने अकेले क्षणों में झेलते जाने के लिए अभिशप्त है। हाँ, यह सच है कि राकेश का अकेलापन अपने समाज से कटे हुए व्यक्ति का अकेलापन नहीं है, वरन् समाज के भीतर लुटते-पिटते, जीते-भोगते और लगातार अर्थहीनता की ओर बढ़ते व्यक्ति का अकेलापन है।

मैंने समकालीन कहानीकारों की लम्बी जमात में से केवल "राकेश" को लिया है। इसके पीछे भाव यह नहीं है कि दूसरे कहानीकार नगण्य हैं, अपितु, यही है कि राकेश अकेले ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने किसी मान्य परम्परा का विरोध मात्र विरोध के लिए नहीं किया, अपितु इसलिए किया है कि चिर प्रचलित परम्परा अपना सारा रस उँडेलकर खाली गिलासों की पंक्ति में रखी निरन्तर अर्थहीनता की ओर बढ़ती जा रही थी। कहानीकार के रूप में राकेश की कला और अन्तर्वस्तु को विवेचित विश्लेषित करते—कराते मेंने नयी कहानी की उपलब्धियों—कहानीकारों की प्रतिबद्ध कला की चर्चा भी की है। इस सब के लिए मैं तो अपनी ओर से केवल यही कहना चाहती हूँ कि मैंने सहृदय पाठिका के रूप में राकेश की कहानियों का पढ़ा--समझा और विश्लेषित किया है। अतः में यह दावा नहीं कर रही हूँ कि मेरे इस विवेचन में एक प्रबुद्ध समीक्षकीय दृष्टि है; अपितु यही कह पा रही हूँ कि इसमें एक पाठकीय संवेदना है—प्रतिक्रिया है। यह प्रतिक्रिया कैसी है ? कितनी सही, कितनी गलत और कितनी रूचिकर, कितनी अरुचिकर यह कहना आपके हिस्से की चीज है।

जिन्दगी की आपाधापी में जो भी वक्त मिलता है या बचता है, उस पर कइयों का हक है। मैंने उसी में से कुछ घण्टे, कुछ पल रोज चुराये हैं और उन चुराये हुए या कहूँ कि छीने हुए घण्टों की एक लम्बी शृंखला है जिसमें जब तब बहुत कुछ आकर कैद होता रहा है—होता रहेगा। आज जब उन क्षणों के लिए सोचती हूँ--या कौन जाने उनमें कुछ खोजती ही हूँ—तो एक साथ स्मृतियों का सैलाब मेरे सामने उतर आता है—आसमान में लगातार चक्कर काटती झुण्ड की झुण्ड उन चिड़ियों के धरती पर उतरने की तरह और मैं डूब जाती हूँ उन पलों और घण्टों में जब इस कृति का लेखन हुआ था। फिर डूबने के बाद ऐसा क्या बचता है ? जिसे आभार या धन्यवाद की सतह पर लाया जा सके।

हाँ, अन्त में कहानीकार "मोहन राकेश" के सम्बन्ध में मेरी प्रतिक्रिया और संवेदना को पुस्तकाकार रूप देने में पंचशील प्रकाशन' के संचालक श्रीमूलचन्द गुप्ता ने जो उत्साह प्रदर्शित किया है, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद अर्पित करती हूँ।

सुषमा

अनुक्रम

1

नया परिवेश : नया साहित्य

प्रत्येक युग की अपनी दृष्टि और सृष्टि होती है । बदलते संदर्भों में जिस दृष्टि का विकास होता है, उससे प्रेरित होकर ही साहित्य-सृष्टि के नये आयाम प्रस्तुत होते हैं । कोई भी साहित्य युग-निरपेक्ष नहीं रह पाता है । उसके मूल में इतिहास और जीवन, परिवेश और वातावरण तथा परम्परा व प्रगति की नयी भंगिमाएँ सदैव क्रियाशील रहती हैं । सृजन यदि अपने समकालीन परिवेश से आँखें चुरा लेता है तो वह न तो जीवन्त व यथार्थ बन पाता है और न उसका प्रभाव स्थायी होकर किन्हीं मूल्यों को उत्प्रेरित ही करता है । वर्तमान काल में विशेषकर स्वतंत्रता की पहली वर्षगाँठ मनाने के बाद से ही परिवेश बदलता गया है । नये मूल्य निर्मित हुये हैं, पुरानों की पुनर्परीक्षा हुई है और परम्पराओं का नवीनीकरण हुआ है । निर्माण, परिवर्तन और नवीनीकरण की इस प्रक्रिया ने न केवल जन जीवन को, अपितु साहित्य को भी प्रभावित किया है । प्रभाव की यह लहर इतनी तीव्र गति से दौड़ी कि उसने अपने पारम्परिक तट को लाँघ कर नई देहरी से नाता जोड़ लिया । यों आज का जीवन नाते-रिश्तों को कोई अहमियत नहीं देता है । फिर भी इतना तो सच है ही कि जीवन और साहित्य में जो नये रिश्ते कायम हुये हैं, जो नये मूल्य बने हैं और जिन नयी प्रतिभाओं ने आकार पाया है : उसकी जड़ें हमारे परिवेश में गहरे तल तक चली गई हैं ।

नये परिवेश की प्रारम्भिक सीमा रेखा सन् 1947 से पूर्व नहीं है और तब से अब तक परिवेश में कई परिवर्तन हुये हैं । स्वतन्त्रता के बाद जो परिवेश बना है, उसकी जो प्रतिमा बनी है, वह एक ओर तो स्वातंत्र्य बोध से रंजित है, समानता के भास्वर रंगों से दीप्त है और दूसरी ओर द्वितीय महायुद्धोत्तर परिस्थितियों से भी अपना आकार गढ़ती रही है । आजादी के बाद भारतीय परिवेश में सामाजिक उत्थान व कल्याण की लहर दौड़ी है । आर्थिक विकास और राजनैतिक प्रगति की विविध योजनाएँ बनी हैं और निम्न और उपेक्षित वर्ग को आगे आने का अवसर प्राप्त हुआ है । इससे समानता व भ्रातृत्व-बोध तो विकसित हुआ ही है, युद्ध परिवेश ने जन मानस को पर्याप्त आन्दोलित उद्वेलित किया है । जन जीवन समस्याओं के जाल में भटक गया है । अनेक वृहदाकार प्रश्नचिन्हों ने उसे लीलने का प्रयास किया है और

बाहरी व भीतरी स्तर पर असामंजस्य का भाव पनपा है । इतना ही नहीं मनुष्य बदला, उसके विचार बदले उसकी जीवन दृष्टि में परिवर्तन हुआ । उसका आचरण विसंगतियों से भरता गया, व्यवहार कृत्रिम होता गया और दुनियाँ की आपा-धापी में मनुष्य को मिली मात्र–निराशा,टूटन और भटकन । फलतः नये परिवेश में मनुष्य अनेक अन्तर्विरोधों का पुंज बन कर रह गया । उसकी आकृति पर स्याह धब्बे पड़ते गये, आँखों में धुंध छाती गई, कान और नासिका व कर्ण रंध्रों में गैसीली वायु भरती गई जिसके प्रभाव से मनुष्य न केवल हताश हुआ, अपितु उसके मस्तिष्क की चूलें हिल गयी, हड्डियों का 'फासफोरस' चुकता चला गया और वह अपनी ही टाँगों पर खड़ा गट्ठर हो गया । कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य की चेतना सुन्न हो गई और उसकी धार भोथरी होती गई । उसके पास न तो कुछ ऐसा रहा जिसके बल बूते वह खड़ा रह सके और न कोई ऐसी आशाकिरण ही बची जो उसे और कुछ नहीं तो कम से कम जीने की हिम्मत तो दिला ही सके ।

औद्योगीकरण, नगरीकरण और वैज्ञानिक अन्वेषणों के पार्श्व में खडा जीवन बाहर से ही नहीं, भीतर से भी बदला है । आजादी ने हमें जितना दिया है, उससे अधिक हम से ले भी लिया है । हमें सिर्फ आजादी मिली जो तीन थके हुये रंगों का नाम है । कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि 'स्वतन्त्रता और संस्कृति एक अल्प संख्यक वर्ग-विशेष को ही मिली है ।" सामान्य मनुष्य तो अभी भी आजादी को टोह रहा है । यों आजादी के बाद देश कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज सुधार आदि विविध दिशाओं में प्रगति कर रहा है । अनेक योजनाओं-परियोजनाओं के तहत देश ने प्रगति की कई सीढ़ियां चढ़ी हैं । अतः यह कहना तो सत्य से आँख मूँद लेना होगा कि आजादी के बाद कुछ भी नहीं हुआ । हाँ व्यक्ति का मन अभी भी आजादी के रंगों को खोज रहा है । आजादी राष्ट्रीय स्तर पर जितनी अहम उपलब्धियां लेकर आई है, वैयक्तिक स्तर पर उतना और वैसा कुछ भी नहीं हस्तगत हुआ है । व्यक्ति की मनोव्यथा बढ़ी है क्योंकि महानगरों में भीड़ बढ़ी है । मनुष्य पहले से अधिक अकेला हुआ है क्योंकि उसे अस्तित्व नहीं मिला है । उसकी ऊब दुगुनी हुई है क्योंकि मानवीय सम्बन्ध बिखर गये हैं । मनुष्य बेरोजगार होता गया है क्योंकि गाँव और नगर पीढ़ियाँ उगल रहे हैं । निराशा का रंग दिन प्रति-दिन गाढ़ा होता गया है क्योंकि मनुष्य की स्थिति अनपहचान होती गई है । महानगरों में भीड़ का दबाव बढ़ा है तो उसी अनुपात में जीवन यांत्रिक और एक रस होता जा रहा है । नतीजा यह है कि छोटे नगरों में जीवन के अभाव और विषम परिस्थितियाँ इतनी अधिक तेजी से बढ़ रही

हैं कि व्यक्ति के मन में 'एलियनेशन' और 'बोरडम' की भावना ने डेरा डाल लिया है।

उपयुक्त साधनों का अभाव, जीवन स्तर में उत्पन्न बाधायें, अव्यवस्था व अनुपयोगी शिक्षा, बेकारी, जनसंख्या की बढोतरी, वैज्ञानिक सुविधाओं का अधकचरापन और बीमारी, गन्दगी व भुखमरी के कारण देश का आम आदमी पीड़ित है। उसका रक्तचाप या तो ऊँचा है, या काफी नीचा है । वह 'नार्मल' नहीं रह गया है। युवक-युवतियों की अपनी समस्याएँ हैं । अप्राकृतिक यौन सम्बन्ध उन्मुक्त प्रेम, नशीलें पदार्थो का सेवन, तलाक, हड़ताल, भ्रूण हत्या और नंगे-अधनंगे शरीरों का नृत्य आदि जीवन को जिस हवा के साथ बहाये जा रहा है वहाँ ठहरकर सोचने का अवकाश ही किसको है ? नयी पीढ़ी समाज की सड़ी-गली परम्पराओं को तोड़ रही है। लीक से हटकर अपने अनुसार लीक बना रही है। वह 'वाइफ स्वैपिंग' के खेल खेलती है। फैशन का नया दौर सामने से गुजर रहा है । 'टापलेस' और 'मिनी स्कर्टस' का फैशन जोरों पर है। फैशन का बाजार गर्म है। एक तरह का डिजाइन आ नहीं पाता कि दूसरा आ कर उसे पुराने खाते में धकेल देता है। हिप्पी व बीटनिक संस्कृति ने देश के महानगरों का जीवन क्रम ही बदल दिया है । वर्तमान जीवन में कालेजों और विश्वविद्यालयों का जीवन भी अनाकर्षक अव्यवस्थित और असन्तोषपूर्ण होता जा रहा है। युवा बुद्धिजीवियों के सामने भविष्य का रूप स्पष्ट नहीं है और आज की नारकीय जिन्दगी की धकापेल में कर्त्तव्य का ज्ञान ही हवा हो गया है। अतः पिछले 25 वर्षों में हमारा जीवन जितना बदला है, उसमें जो अव्यवस्था, दरार और बिखराव आया है, उतना पिछले सैकड़ों वर्षों में भी नहीं आ पाया था। मध्यवर्गीय व्यक्ति एक ओर तो पुराने संस्कारों की जकड़न से बाहर आना चाहता है और दूसरी ओर 'टेबूज' व रूढ़ियों की जंजीरों को तोड़ डालने पर आमादा है, किन्तु करे क्या ? उसके हाथों की ताकत गायब है। वह आधुनिक विदेह हो गया है। उसकी संकल्पी मनोवृत्ति नीचे दब गई है । अतः विवश है, अभिशप्त जीवन जी रहा है। इस विवशता ने उसके मानस में कुंठा, एकाकीपन, अजनबीपन घुटन, निरुद्देश्यता, नपुंसक आक्रोश और अकेलेपन के बोध को गहरा दिया है। इस स्थिति से केवल पुरुष गुजर रहा हो सो बात नहीं है, स्त्रियाँ भी इसी स्थिति और परिवेश में जी रही हैं । उनका शरीर रीतिकालीन नायकों के द्वारा तो उन्मथित ही हुआ था। आज तो वह बार बार नापा जा रहा है। वासना के फीते के सामने वह छोटा पड़ गया है। अंग-प्रत्यंग पर वासना के नीले निशान हैं और उसकी परिणति भ्रूण हत्या, 'एबार्शन और भोग की दीवारों से सिर पटकने में ही रह गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक परिवेश का मानचित्र काफी भयावह, त्रासद और घिनौना है। उसमें समस्याओं के पहाड़ हैं, अतृप्तियों व विक्षुब्ध मनः स्थितियों की सरिताएँ हैं, अकेली शैलमालाओं और

समूचे मानचित्र में न कोई रंग है, न रौनक। वह विकृत हाशिया हीन, सीमाहीन, और लिजलिजा सा हो गया है। इतना ही नहीं उसमें अंकित प्रत्येक नगर अजन-वीपन का भार लिये अपनी जगह पर खडा भर है। यों उसके आसपास, छोटे बडे नगरों की भीड़ है, उसका दबाव है, परन्तु फिर भी वह अकेला है। ऐसे परिवेश में लिखा गया आधुनिक साहित्य इससे अलग कैसे हो सकता था? नहीं न। अतः उपरिसंकेतित परिवेश से प्रभावित साहित्य का रूप रंग भी तदनुकुल ही है।

अपने चारों ओर फैले परिवेश के दबाव को प्रत्येक नये संवेदनशील रचनाकार ने सहा है, भोगा है कभी चाहे–कभी अनचाहे। वह विक्षुब्ध हो उठा है। उसका मन प्रतिक्रियात्मक हो गया है–होता जा रहा है। समकालीन रचनाकार मानव मूल्य; नैतिकता; अनैतिकता, वैज्ञानिक और टैकनोलोजिकल प्रगति के बीच भूख; नवीन, परिस्थिति में यौन सम्बन्ध आदि प्रश्नों के विविध पक्षों के समाधान ढूंढ़ना चाहता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित व्यक्तिगत स्वार्थ, अवसरवादिता अनिश्चिता, अलसता, ग्लानि, असमंजस और रिक्तता बोध से घिर कर साहित्य-की मनः शक्तियाँ काँप उठी हैं। उसकी चेतना भूमि में जो भी अंकुर पडता है, वह विकृत है, खण्डित है। उसकी संवेदना से सिक्त होकर जो चित्र उभर रहें हैं वे भी भयावह, दंशक बाधाओं का कँपा देने वाले, भूख, भोग, अनैतिकता और टूटते बिखरते सायों के ही प्रतिविम्ब हैं। कविता, कहानी, नाटक व उपन्यास सभी में इस परिवेश से प्रेरित जीवन को अभिव्यक्ति मिली है। काव्य को एक बार छोड़ भी दें और केवल कथा साहित्य पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित करें तो स्पष्ट हो जाता है कि उसमें आधुनिक जीवन अपनी तमाम विसंगतियों व विडम्बनाओं के साथ अभिव्यक्त हुआ है। कहानी साहित्य यदि अनुभूत स्थितियों का प्रमाणिक दस्तावेज है तो उपन्यास साहित्य वर्तमान जीवन का आईना है जिसमें समूचे जीवन को उसके पूरे रोये रेशों के साथ देखा जा सकता है। रहा नाट्य साहित्य उसमें भी मानवीय रिश्तों की टूटन, कतरन और बेजुबान स्थितियों की नामहीन 'ट्रैजैडी' आकार पा सकी है। नाटकों में नये प्रतिमानों के साथ नयी पद्धति पर मंचीय आवश्यकताओं का विधान हुआ है। कहने का तात्पर्य यही है कि आधुनिक गद्य साहित्य परिवेश की दाहिनी आँख बन कर आया है। रचनाकारों ने उसमें जो देखा है, जितना भोगा सहा है वही प्रामाणिक अनुभूति के आईनें में छिपता दिपता दिखाई देता है। आधुनिक कथा साहित्य में निरुपित जीवन व्यक्ति के सम्बन्धों उसके त्रासद प्रसंगों और तत्सम्बन्धित एवं तत्प्रेरित जीवन मूल्यों की ऐसी महागाथा है जिसका कोई एक नहीं अपितु समूचा मानव जीवन है।

बोध के नये धरातल :

वर्तमान परिवेश से प्रतिबद्ध साहित्य जिस बोध को वाणी दे रहा है, वह नया धरातल लेकर जन्मा है। जन्म से ही इस धरातल पर मनुष्य मजबूरियों की वैसाखियों के सहारे चल रहा है। उसकी गति श्लथ है, दृष्टि परिवेश की धुंध गई है, हाथ विवशता के कारण जहाँ तहाँ चिपक गये हैं और मानस एक उत्क्रान्ति व विक्षोभ से भर गया है। ऐसी स्थिति में इस असंगत परिवेश ने कतिपय नये जीवन मूल्यों को भी प्रेरित किया है। फलतः बोध के नये धरातलों की निर्मित हुई है। कथ्य और शिल्प दोनों ही स्थितियों में बोध का नयापन देखा जा सकता है। नये जीवन मूल्य बाहर आने को कसमसा रहे हैं। साथ ही इस कार्य के लिए अभिव्यंजना की नयी शैली विकसित हुई है। किसी एक ही युग में अति लोकप्रिय और प्रचलित साहित्य के रूप कालान्तर में परित्यक्त और यदा कदा तिरस्कृत तक हो जाते हैं। बोध की नयी भूमिका नये साहित्यिक रूप और नयी अभिव्यक्ति व शैलियों तक में दिखाई देती है। कारण साफ है, प्रत्येक युग का साहित्य जैसे अपने समय की कोख से जन्म लेता है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक नया युग अपने साथ साहित्य ही नहीं जीवन की समस्त सर्जनात्मक गतिविधि के नये प्रतिमान भी साथ लेकर आता है। अतः यह प्रश्न साहित्य चिन्तकों, अध्येताओं और स्रस्टाओं के लिये महत्वपूर्ण व मौलिक है कि वे कौन से मूल्य हैं जिनके कारण अलग अलग युगों में साहित्य का कथ्य और शिल्प नया हो जाता है। साहित्य में प्रगट होने वाले नये मूल्य पहले पहल शंकित दृष्टि का शिकार होते है फिर परम्परा से विच्छिन्न होने के कारण उपेक्षित और कभी कभी प्रश्निल दृष्टि का आघात सहते हैं। कारण आकस्मिक रूप से उदित कोई भी मूल्य जब तक परम्परा और नवीनता का संघात सहकर स्निग्ध नहीं हो जाता तब तक उसे अनेक संघर्षों, और स्थितियों से गुजरना ही पडता है।

बोध के जो नये धरातल निर्मित हुये हैं उनमें मूल्यों का स्थान पहला है। मूल्यगत नवीनता आज त्रिआयामी है। परिवेश के दबाव के कारण सामाजिक चेतना के नये स्तर और उसी से सम्बन्ध भाव लोक का सृजन पहला आयाम है। परम्परा और नवीनता के मैल से बनी नयी समन्वयात्मक चेतना दूसरा आयाम है। इन दोनों आयामों के साथ तीसरा आयाम शिल्प संरचना की नवीनता का है। वर्तमान साहित्य चिन्तन में इन तीनों ही तत्वों के कारण एक विक्षोभ और हलचल पैदा हो गई है। आज जो साहित्य लिखा जा रहा है वह सुविधा प्राप्त व्यक्ति मानस का उच्छलन नहीं है; वह अब कुछ विशिष्ट अवकाशभोगी व्यक्तियों, रसिकों और मर्मज्ञों ही का भावविलास अथवा भावदान ही नहीं रहा है और न कुछेक

तथाकथित अथवा वास्तविक उदात उच्च महान भावदशाओं अथवा चरित्रों की उद्‌भावना तथा अभिव्यक्ति तक ही सीमित रह सका है ।........आज का साहित्य आज के किसी भी संवेदनशील साधारण नागरिक की आत्मोपलब्धि और आत्माभिव्यक्ति का साधन है । यही नहीं साहित्य की महानता आज केवल महापुरुषों और महान भावनाओं के चित्रण तक ही सीमित नहीं है । आज किसी अत्यन्त ही साधारण जीवन की सरल कहानी और गाथा भी साहित्यिक गाथा को जन्म दे सकती है । न केवल हम मर्यादा पुरुषोत्तम अथवा धीरोदात्त नायक से आगे बढ गये हैं । बल्कि एक प्रकार से होरी और शेखर के युग से भी आगे बढ आये हैं ।

आधुनिक साहित्य के भाव जगत में विस्तृति है । प्राचीन साहित्य की अपेक्षा नये साहित्य में भावनाओं का यह विस्तार मानवतावादी दृष्टिकोण का पोषक है । विशिष्ट के स्थान पर साधारण की प्रतिष्ठा और उसमें भी नवीनता का अन्वेषण आधुनिक साहित्य का सबसे पहला मूल्य है । समकालीन साहित्यकार अपने भाव जगत में हिम शिखरों का अन्वेषी नहीं है । वह तो साधारण से साधारण व्यक्ति को, उसके भाव संघर्ष और जीवन को अपनी रचनाओं में उतार रहा है । हिम शिखरों का सौन्दर्य और उसके आदर्श आज के रचनाकार के आदर्श नहीं रह गये हैं । इसके अतिरिक्त उसने धरती की खोज की है । उस मिट्टी में रचे-बसे कणों को उठाया है जो आम आदमी के पसीने से आर्द्र और संघर्षी जीवन का रंग अपने में समेटे हुये हैं । यही कारण है कि महान नायकों और आदर्श पात्रों के स्थान पर शेखर जैसे शिक्षित, हरवंस जैसे अन्तर्द्वन्द्व पीडित, मनोज जैसे अस्तित्व कामी, श्यामा जैसी भटकती नारी व नीलिमा जैसी महत्वाकाँक्षिणी और मैले आंचल में लिपटे अनगिनत धूल धूसरित नारी–पात्र साहित्य में स्थान पाने लगे हैं ।

आधुनिक साहित्य के भाव जगत में जो नये प्रतिमान अनुस्यूत हैं, उनका एक छोर परम्परा से सम्बन्धित है । वर्तमान जीवन का यथार्थ अपनी प्रस्तुति में परम्परा से एकदम कटकर नहीं चल सकता है । युग की भाव दशा और बौद्धिक अवधारणाओं के साथ सांस्कृतिक परम्परा का सम्बन्ध नये साहित्य की मौलिकता का ही एक आयाम है । कोई भी नवीनता आसमान से नहीं टपकती है । उसे अपनी स्थापना और प्रसारणा के लिये परम्परा से रस ग्रहण करना ही पड़ता है । ऐसी स्थिति में नवीनता और परम्परा का जो नया सामंजस्य उद्‌भूत होता है, वह नये साहित्य में भी देखा जा सकता है । उदाहरण के लिये महाभारतीय प्रसंगों को ही लीजिये । हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग में महाभारत के जिनप्रमुख पात्रों को लिया गया है वे व्यक्तित्व विशेषण के नये घटक प्रस्तुत करने हैं । आज

स्थिति और भी बदल गई है। आज तो कर्ण के हाथ का टूटा पहिया, अभिमन्यु के चक्रव्यूह में पिसते क्षण की व्यथा और अन्तर्दाह से अभिशप्त व संत्रस्त अश्वत्थामा ही वर्तमान युग की मनःस्थिति का वाहक बन गया है। कविता, कहानी, नाटक और उपन्यासों में ऐसे पात्रों को स्थान दिया जा रहा है जो समकालीन जीवन की विसंगतियों व विडम्बनाओं का विषपान करके भी जीने की कामना से वलयित हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि आज साहित्यकार परम्परा का पुनः परीक्षण कर रहा है, वर्तमान परिस्थितियों में उसके औचित्य को प्रमाणित करने के लिये उसे बुद्धि की कसौटी पर कस रहा है। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति के अनेक विस्मृत, उपेक्षित प्रसंग और रंगरूप समकालीन परिवेश में नयी प्रतिष्ठा पा रहे हैं। लोक जीवन और लोक संस्कृति की ओर बढता हुआ आकर्षण अथवा रूझान इसी तथ्य को रेखांकित करता दिखाई देता है। नेमीचन्द जैन ने ठीक ही लिखा है कि आज का साहित्यकार अपने भाव जगत के अधिक संस्कृत, विकसित और समुन्नत रूपों का स्रोत लोक संस्कृति में खोजकर अपनी सांस्कृतिक परम्परा को एक नया ही आयाम दे रहा है। सांस्कृतिक परम्परा आज न केवल साहित्यकार के लिये, बल्कि प्रत्येक प्रबुद्ध और संवेदनशील पाठक के लिये नई व्यापकता और गहराई प्राप्त कर रही है। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट हो जाता है कि नया साहित्य परम्परा और नवीनता के सामंजस्य से जो परिवेशवाही नये मूल्य प्रस्तुत कर रहा है वह उसके बोध की नवीनता का ही प्रतिफल है। परम्परा और नवीनता के संघात से निर्मित जीवन मूल्य न केवल कविता में, अपितु कथासाहित्य में भी पूरी स्पष्ट रेखा बन कर दिखाई दे रहे हैं।

नया साहित्य बोध के जिस नये धरातल पर स्थिति है उसमें व्यक्तिवादी चेतना का स्वर भी प्रमुखता से मुखरित दिखाई देता है। आधुनिक साहित्य की नयी पुरानी सभी विधाओं में व्यक्तिवादी चेतना मुखरित है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी और नये रचनाकारों, कवियों व कथाकारों सभी में व्यक्तिवाद अधिक उभरा है। फ्रायड ने चेतन और अचेतन सम्बन्धी खोजों के सहारे मानव मस्तिष्क के अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। यह अन्वेषण व उद्घाटन व्यक्तिवादी जीवन पर हुआ है। अज्ञेय, जैनेन्द्र, जोशी व मोहन राकेश के अँधेरे बन्द कमरें का स्वर व्यक्तिवादी है। भारती का गुनाहों का देवता और नरेश मेहता के प्रायः सभी उपन्यास इसी जमीन पर खड़े दिखाई देते हैं। व्यक्तिवादी मूल्यों के विकास, पोषण और अभिव्यंजन में अस्तित्ववादी दर्शन का भी विशेष हाथ है।

अस्तित्ववादी चिन्तकों के अनुसार मनुष्य अपने चिन्तन और निर्णय में स्वतन्त्र है मुक्त है। सार्त्र की मान्यता है कि यह स्वतन्त्रता या अस्तित्व रक्षा की

भावना किसी के द्वारा सौंपी नहीं गई है। इसका ज्ञान मनुष्य को स्वयं होता है। मनुष्य का हर निर्णय अपेक्षाकृत शुभ होता है और ऐसा कोई निर्णय हमारे लिए शुभ नहीं हो सकता है जो मानव मात्र के लिये अहितकर हो। सार्त्र का यह कथन आधुनिक कथा साहित्य से प्रमाणित हो जाता है। तात्पर्त यह है कि नये साहित्य सजेक ने बोध के जो धरातल खोजे हैं, उनमें व्यक्तिवादी मूल्यों के साथ अस्तित्व रक्षा सम्बन्धी मूल्यों का विकास भी शामिल है ।

रुढियों का बहिष्कार, बंधनों के प्रति विद्रोह और एक स्वनिर्मित स्वच्छंद मार्ग का अनुसंधान भी नये साहित्य का नया बोध है। इसीमें नैतिकता, अनैतिकता का बोध भी शामिल है। श्लील अश्लील भी इसी स्वच्छंदतावादी मूल्यों के तहत विवेचन का अधिकारी है। इससे सम्बन्धित जीवनवादी मूल्यों का उद्घाटन व प्रयोग स्थापन नये साहित्य की प्रत्येक विधा से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है । चाहे अज्ञेय हों, जैनेन्द्र हों, रेणु हों, भारती हों, नरेश मेहता हों चाहे राजेन्द्र यादव और मोहन राकेश हों सभी में स्वच्छंदतावादी जीवन मूल्यों के ग्रहण व स्वीकार का भाव पर्याप्त गहरा है । ये जीवन मूल्य पुरुष व स्त्री दोनों में समान भाव से मिलते हैं। अतः साहित्य में भी इनका प्रयोग इन दोनों के ही सहारे किया गया है। आधुनिक शिक्षा और पाश्चात्य शिक्षा सभ्यता और संस्कारों के कारण नारी भी पुरुष की तरह विद्रोहिणी हो गई है। वह हर कर्म क्षेत्र में पुरुष के साथ है। हर चौराहा, हर मंच और हरेक क्षेत्र उसके लिये खुला हुआ है। ऐसी स्थिति में उसने भी पुरुष के साथ खड़े होकर न केवल अपने स्वातंत्र्य की उद्घोषणा की है, वरन उसे जीवन का अंग भी मान लिया है। परिणामतः यौन नैतिकता, प्रेम और विवाह पर पुनर्विचार की आवश्यता हो रही है। नर नारी के जीवन में तीसरे व्यक्ति की घुसपैंठ भी इसी प्रवृति का परिणाम है।

आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों में परिवर्तन या ह्रास की प्रवृति विकसित हो रही है। वैज्ञानिक विचारकों और भौतिकवादी चिन्तकों ने जीवन को भौतिक चश्में से देखा है, किन्तु वे यह भूल गये कि जीवन की कुछ शाश्वत समस्याएँ भी होती हैं। वर्तमान जीवन मूल्यों को प्रभावित करने वालों में मार्क्स, फ्रायड और सार्त्र के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। नया रचनाकार जिस खुले मन से लिख रहा हैं, उसके पीछे ये सभी प्रभाव देखें जा सकते हैं। अतः बोध का नयापन जहाँ एक ओर समकालीन परिवेश और उसके दबाव से प्रेरित है, वहीं कतिपय बाह्य प्रभावों का बल पाकर भी अंकुरित और पुष्पित हो रहा है समूचा कथा साहित्य नाटक साहित्य और कहानी साहित्य बोध के इन नये बिन्दुओं से संस्पर्शित है ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चेतना और बोध के धरातल पर सर्वाधिक

महत्व साहित्यिक चेतना का नवीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिकीकरण है। यद्यपि कुछ लोग इसे फैशन के नाम पर अस्वीकार करते हैं किन्तु मेरी दृष्टि में उसकी अनिवार्यता और सटीकता को उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। समकालीन कहानीकार और उपन्यासकारों में जो आधुनिकता मिलती है वह फैशनपरक नहीं है। उसमें प्रयोगों के प्रति अतिरिक्त आग्रहभर नहीं है। वस्तुतः समकालीन रचनाकार की दृष्टि में पैनापन है। वह सूक्ष्म और अन्तर्भेदिनी है। इसी से साहित्य में जो बोध उभरा है, वह कई स्तरों पर नया है। यह नयापन समाज से कटकर नहीं आया है, व्यक्ति व्यक्ति के सम्बन्धों में आई टकराहट व शून्यता से उद्भूत है। यह विद्रोह के लिये नहीं अपनी अस्तित्व रक्षा के लिये है—व्यक्ति के लिये है। इतना ही नहीं साहित्य के प्रांगण में नये रचनाकारों की जो पौध उग रही है वह भी जीवन के जर्रे जर्रे को खुली निगाहों से देख रही है। उसकी सवालिया और कौतूहली दृष्टि के स्पर्श से जीवन के किसी भी सन्दर्भ का बच पाना संभव नहीं रह गया है। आज ऐसे अनेक साहित्य सर्जक हैं जिनका साहित्य बोध के नये धरातल पर बड़े विश्वास से पैर जमाये हुये है।

भाव बोध के इन नये धरातलों की अभिव्यंजना पुराने शिल्प से संभव न जानकर नये शिल्प का प्रवर्तन स्वाभाविक था। प्रत्येक नया भाव बोध और सौन्दर्य बोध अनिवार्य रूप से नये शिल्प के लिये लालयित रहता है। भाव के अनुकूल शिल्प का निर्माण जहाँ साहित्य को संप्रेषणीयता के द्वार पर ला खड़ा करता है, वहीं साहित्य को नवीनता से भी जोड़ देता है। कारण भाव और शिल्प के बीच कोई विभाजक रेखा खींचना न तो संभव है और न उचित ही है ये एक ही सत्य के दो पहलू हैं। शिल्प के नये धरातल के रूप में ही नवीन मूल्य आकार पाते हैं। नई पद्धति, नयी प्रतीक योजना, नई शैली और भाषा के अपरिचित और अप्रत्याशित प्रयोग ही जैसे नवीन परिवर्तन की सूचना देते हैं। वे एक प्रकार से मूल्यों के रथध्वज हैं। आज हिन्दी साहित्य में विशेषकर कविता और कथा साहित्य में प्रयुक्त नये शैल्पिक प्रयोग उपलब्धि बनकर हमारे सामने खड़े हैं। साहित्य की जीवंतता का प्रमाण उसके परिवेश बद्ध होने से ही मिल सकता है। जिस साहित्य में युग की धड़कन का स्वर नहीं है, जो प्रस्तरीकृत आदर्शों की वैसाखियों के सहारे चलता है और जिसमें भाव बोध की नवीनता को पुराने रूप बन्ध से उजागर करने की भावना है, वह साहित्य हो ही नहीं सकता है। अतः जीवंत साहित्य में शैल्पिक नवीनता का आना न केवल अनिवार्य है, अपितु औचित्य का जनक भी है।

आधुनिक साहित्य में अपनी मनोगत भाव राशि की अभिव्यंजना के लिये यदि गद्य की नयी नयी विधायें विकसित हो रही हैं तो यह सहज प्रतिक्रिया है।

रिपोर्ताज, लघुकथा, इंटरव्यू, एकालाप, रेडियो नाटक, यात्रा वृत्तान्त आदि गद्य रूप इसी तरह के हैं जिनमें अभिव्यक्ति को सप्राण बनाने का कार्य किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में रचित साहित्य में जो शिल्प अपनाया गया है वह नये शब्द प्रयोग अभिनव अर्थाभिव्यक्ति, नवीन प्रतीक योजना, कथानक ह्रास सांकेतिकता-प्रतीकात्मकता, सूक्ष्मदर्शी चरित्रांकन, शिल्प संघटन और सशक्त, किन्तु नई शैलियों के प्रयोग से युक्त है। यथार्थ के प्रति आग्रही होने के कारण नये साहित्य सर्जकों ने शब्द प्रयोग के क्षेत्र में नये प्रयोग किये हैं। इस शब्द प्रयोग में लोक जीवन की शब्दावली व आंचलिक शब्दावली का प्रयोग विशेष महत्व रखता है। अमृतलाल नागर जैसे उपन्यासकारों ने तो अपनी भाषा को कहीं कहीं इतना लोक जीवन से जोड़ दिया है कि उसमें गालियों तक की भाषा आ मिली है। राही मासूम रजा के आधा गाँव में ठेठ ग्राम्य प्रयोग भी आ गये हैं और श्रीलाल शुक्ल के राग दरबारी में भाषा के यथार्थ रूप की सुरक्षा के लिये ऐसे ऐसे शब्दों की आत्मा को टटोला गया है जिसमें अर्थ प्रेषण की अमित संभावनाएँ निहित हैं। स्पष्ट ही नूतन शब्द प्रयोग द्वारा नये अर्थ को पर्याप्त आत्मीयता प्राप्त हुई है। यह नूतन अर्थवत्ता आधुनिक गद्य साहित्य की महत्तम उपलब्धि है। प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग भी समकालीन साहित्य के शिल्प की विशेषताओं को प्रसारित करता है। पारंपरिक प्रतीकों में अब इतनी क्षमता नहीं रह गई है कि वे अपने मूल रूप में अर्थाभिव्यंन कर सकें। अतः या तो उन प्रतीकों को नया अर्थ प्राप्त हो गया है या फिर उनके स्थान पर वर्तमान परिवेश के गर्भ से नया प्रतीक स्वतः ही आ जन्में हैं। औद्योगिकीकरण, यांत्रिकीकरण और वैज्ञानिक बोध के प्रसार के कारण प्रतीकों का स्वरूप और अर्थ भी तद्वत होकर ही सामने आया है। परिणामतः कमल की अपेक्षा कैक्टस का, चन्दन की अपेक्षा रूपये का और चन्द्रवत् मुख के स्थान पर उसे अजायबघर के समान जिन्दा मुर्दा भावों का आश्रय स्थल बनाया गया है। यथार्थ की चोट से बिखरने वाले सपने करारें व भुने हुये पापड की तरह हल्के से स्पर्श से चूर चूर हो रहे हैं और सौन्दर्य का कोमल पक्ष यथार्थ के कटीलें तारों में उलझ कर रह गया है। यों तो वर्तमान कथा साहित्य में विविध शैलियों का जन्म हो चुका है, किन्तु प्रमुख शैलियों में पूर्वदीप्ति शैली, चेतना प्रवाह शैली, पत्र शैली, डायरी शैली और प्रतीक शैली का प्रयोग सर्वोपरि है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य अनगिनत संभावनाओं के द्वार खोल चुका है। इन द्वारों में कहीं भाव सत्य की नवीनता है और कहीं रूपबन्ध की।

नाटक, कहानी, उपन्यास और निबन्ध आदि सभी क्षेत्रों में हुई प्रगति को देखें तो लगता है कि हम काफी आगे बढ़ आये हैं। जो साहित्य कभी आदर्श के प्रासादों में रह कर सीमातिक्रमण नहीं करता था, वही वहाँ अपना दम घुटता

जानकर सड़क चौराहों और दुनियाँ की हलचल के बीच आ गया है। आज न तो उसे गली मुहल्लों से कोई दुराव है न दुनियाँ की आपाधापी से। प्रस्तरीकृत आदर्श छिन्न भिन्न हो गये हैं रुढ़ियों की जंजीरें टूट गई हैं, नैतिक बन्धन बोझ बन गये हैं और मानव मानव के सम्बन्घ परिवेश के यथार्थ में तपकर अपने असली रूप में निखर आये हैं। नाटकों में जो परिवेश प्रसाद ने तैयार किया था, वह बदल गया है। उनकी मंचीयता नयी सज्जा के साथ सामने आ चुकी है। कहानियों और उपन्यासों की दुनियाँ में जो शान्ति थी, वह आज दुनियाँ की हलचल से भंग हो गई है। भोगे हुये यथार्थ की तस्वीरें कथा साहित्य में सर्वत्र दिखाई देती हैं। व्यक्ति अपने अस्तित्व संघर्षी रूप के साथ समाज की हर पुरानी व्यवस्था से लोहा ले रहा है। उसकी परिवर्तित स्थिति और मनः स्थिति के बिम्ब आधुनिक साहित्य की यथार्थ के सबसे पुष्ट प्रमाण हैं मानव मानव के सम्बन्धों का पुनर्मूल्यांकन हो रहा है। व्यक्ति स्वातंत्र्य और निजी चुनाव का दायरा चौड़ा होता जा रहा है। एक वाक्य में जीवन और साहित्य का रूप–स्वरूप बदल गया है–भाव में भी और शिल्प में भी।

2

समकालीन परिवेश का रचनाकार : मोहन राकेश

जीवन सम्भावनाओं का दूसरा नाम है और मनुष्य है अनगिनत सम्भावनाओं की वैसाखियों के सहारे थम थम कर चलने वाला हिम्मतवर सैलानी । जन्म के प्रारम्भिक क्षण से लेकर मृत्यु के अन्तिम क्षण तक की सारी यात्रा अनेक रुचियों, भावों और प्रतिक्रियाओं की एक ऐसी परिणति है जिसकी गहराइयों में सब कुछ ऐसे समा जाता है मानो जन्म मिला ही इसलिये है कि उसे अपने लिये सब कुछ समेट कर उसी में विला जाना है जहाँ स्याह अँधेरा है । यदि यह अंधेरा न होता तो समूची मानव-सृष्टि का अस्तित्व या तो एक प्रश्न बनकर रह गया होता या एक बेजुबान रेत का ढेर । यों रेत भी अन्तःसलिल है किन्तु कब ? अज्ञेय के शब्द उधार लेकर कहूँ तो कह सकती हूँ कि "अरे अन्तःसलिल है रेत, अनगिनत पैरों तले रौंदी गई अविराम……जहाँ भी जिसने कुरेदा नमी पायी, और हुआ रस-संचार" ! कुरेदना आवश्यक होता है क्योंकि उसके बिना न तो कुछ उपलब्ध होता है और न किन्हीं सम्भावनाओं का जन्म ही सम्भव है । ध्यान से देखें तो प्रत्येक कलाकार एक संभावना के साथ धरती पर आता है और धरती जो वत्सला है, उसे अपने खाद-पानी से सींचकर न जाने कैसे-कैसे बड़ा करती है ? जब सामान्य व्यक्ति के जन्म पर इतना बड़ा आयोजन होता है कि उसे भावी की एक महत् आयोजना का साझीदार मान लिया जाता है तो वह कलाकार जो जन्म लेकर न केवल अपने निजी परिवेश को एक नई चेतना देता है, वरन् समूची मानवता, मानवीय सम्बन्धों और मूल्यों का अपने ढंग से पुनरन्वेषण करता है, अपने लिए एक मार्ग चुनता है, उसे केवल उसकी जन्म विवरणिका के माध्यम से कैसे समझा जा सकता है । उसकी पहचान उसकी व्यक्तिगत रुचियों, आदतों और प्रतिक्रियाओं से तो होती ही है, उसे उसके परिवेश और सृजन के सहारे से भी समझा जा सकता है । व्यक्ति वह नहीं जो वह बाहर से दिखता है, अपितु असली व्यक्ति वह है जो आदमीनुमा शक्ल का खोल ओढ़कर अपने भीतर एक आदमी को लिये चलता है । यह तथ्य सामान्य व्यक्ति से लेकर कलाकार तक पर लागू होता है । आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ तो इस तथ्य को और भी प्रमाणित कर देती हैं । मनुष्य लाख कोशिश करे, परन्तु वह आन्तरिक

संवेदना को छुए बिना न तो जीवन की विचित्रताश्रों से परिचित हो सकता है श्रौर न उसके मूल में कार्य कर रही शक्तियों से। कलाकार तो यों भी 'मूड़ी' होते हैं श्रौर फिर 'राकेश' जैसा कलाकार तो श्रौर भी सशक्त प्रतिमानों से ही जाना जा सकता है।

'मोहन राकेश' के जीवन में तो इतने परिवर्तन श्रौर उलट-फेर हुए हैं कि उनकी तह तक पहुँचे बिना या कम से कम उसकी गहराइयों को जाने बिना न तो उनके व्यक्तित्व का सही विश्लेषण किया जा सकता है श्रौर न उसकी श्रादतों, रुचियों श्रौर प्रतिक्रियाश्रों का सही निर्णयात्मक हल ही ढूँढा जा सकता है। ऐसी स्थिति में तो श्रौर भी नहीं जबकि उसका व्यक्तित्व श्रन्तर्विरोधों से युक्त हो। राकेश मस्त प्रकृति के जीव थे। मन में श्राया तो जमे श्रौर जमते चले गये श्रौर यदि उचाट का सिलसिला प्रारम्भ हुश्रा तो ऊबते चले गए। श्रतः राकेश को उसके स्वभाव, सस्कार श्रौर रुचियों के तहत ही पूरी तरह देखा श्रौर पाया जा सकता है। राकेश के पास एक श्रोर तो प्रयोगशील व्यक्तित्व था, उसके श्रपने सपने थे—घर के सपने श्रौर घर से जुड़े सपनों के सहारे राकेश का जो बहुश्रायामी व्यक्तित्व निर्मित हुश्रा है, उसमें विचित्रताएँ ही विचित्रताएँ हैं। श्रपनी प्रयोगगर्भिता के कारण ही राकेश न केवल साहित्य में वरन् जिन्दगी में भी प्रयोगरत रहे। साहित्य में पुरानी जमीन तोड़कर श्रौर जीवन में मानव सम्बन्धों की कीमत पर, मूल्यों के ध्वंस पर। टूटने श्रौर बनने की यह प्रक्रिया श्रन्तिम क्षणों तक चलती रही। राकेश जब प्रयोग के धरातल पर उतरे तो उन्होंने सामने वाली वस्तु को न देखकर श्रपितु उसकी श्रसली नाड़ी की परख करके ही भुठलाया। स्वीकार श्रौर श्रस्वीकार, ग्रहण श्रौर त्याग तथा विरोध श्रौर सामंजस्य की यह प्रक्रिया रेल की समानान्तर पटरियों की तरह राकेश के जीवन श्रौर साहित्य में देखी जा सकती है। वस्तुतः राकेश एक ऐसा कलाकार था जिसमें एक साँस में ही सब कुछ को नकारने की क्षमता थी तो बहुत कुछ को एक साथ ही ग्रहण करने की शक्ति भी थी। उसकी यह क्षमता निरन्तर श्रन्वेषणरत होकर प्रयोग करती रही। कहने की श्रावश्यकता नहीं कि ऐसे राकेश के जीवन की कहानी विचित्र भी है श्रौर श्रकल्पनीय भी। कभी-कभी लगता है कि राकेश की जिन्दगी का यह वैचित्र्य बोध, यह श्रन्वेषणी स्वभाव ही उनके व्यक्तित्व का समर्थ पहलू भी है श्रौर यही उसकी दुर्बलता भी। श्राधुनिक बोध का यथार्थवाही चितेरा, कहानियों श्रौर उपन्यासों का थकाहारा, किन्तु सम्भावनाकुल व्यक्ति श्रौर नाटकों में श्रन्तर्मुख भाव वलयित चेहरे वाला मोहन राकेश श्राधुनिक युग का मोहन भी था श्रौर राकेश भी।

मोहन राकेश वर्तमान पीढ़ी के उन कृतिकारों में श्रन्यतम हैं जिन्होंने हिन्दी रचना के श्राडम्बर, कृत्रिमता, चमत्कार, सस्ती भावुकता श्रौर जुमलेबाजी से श्रलग

करके एक आत्मीय रिश्ता प्रदान किया। यह आत्मीय रिश्ता रूढ़िवादिता से दूर है। उसमें संवेदना की आधुनिकता है, अनुभव की सच्चाई है और सम्प्रेषण का जीवित आधार है। राकेश ने जो लिखा वह सब जीवन की यथार्थ स्थितियों को स्वीकार है। उसमें व्यक्ति-व्यक्ति का सम्बन्ध निरूपित है, सामाजिक विसंगतियों के सीमाहीन फैलाव और उसमें जकड़े आदमी की जीवन्त तस्वीर है। अपने समकालीनों में राकेश सबसे जुड़कर भी सबसे अलग हैं। उनका यह अलगाव ही उसके साहित्य की उपलब्धि है। वस्तुतः राकेश ने जिस किसी भी विधा पर कलम चलाई उसे पूर्णत्व प्रदान करने का प्रयत्न किया। नाटककार से लेकर कहानीकार तक, उपन्यासकार से लेकर यात्रा-संस्मरण तक जिन्दादिली के साथ लिखते रहे। यद्यपि उन्होंने बहुत अधिक नहीं लिखा—कुल चार नाटक, कुछ एकांकी, कुछ बीज-नाटक व पार्श्वनाटक, तीन उपन्यास, लगभग ७० कहानियाँ, एक यात्रा संस्मरण और कहानी, नाटक व समकालीन साहित्य की रचना-प्रक्रिया व प्रवृत्तियों को विश्लेषित–समीक्षित करने वाले निबन्ध। अपने लेखन से राकेश ने समकालीन हिन्दी लेखन की गहराई के साथ प्रभावित किया है। उनका साहित्य उनकी अद्वितीय प्रतिभा और सर्जनात्मक क्षमता का प्रमाण है।

राकेश ने कथ्य के चयन और उसके अभिव्यंजन में कभी न तो जल्दबाजी की और न कभी कच्चा माल ही पाठकों को देने की भूल की। वे जो भी लिखते वह पूरी तरह उनकी आत्मा में रच कर ही साहित्य का रूप धारण करता था। यही कारण है कि उनका समूचा साहित्य कथ्य और शिल्प के सन्तुलन का प्रमाण है। राकेश ने सदैव शिल्प को निखारते जाने में विश्वास किया। वे मानते थे कि जिस प्रकार अनुभूति का अभिव्यक्त होना एक सहज प्रक्रिया है, उसी प्रकार अभिव्यक्ति का निरन्तर परिष्कृत और विश्वसनीय होते जाना भी अनिवार्य है। विचार और अभिव्यक्ति के स्तर पर बराबर प्रयोगशील रहते हुए भी उन्होंने प्रासंगिकता और समकालीनता की चुनौती को कभी भी अनदेखा नहीं किया। यह ठीक है कि राकेश ने शिल्प के प्रति सतर्कता बरती और वे निरन्तर इस क्षेत्र में कार्यरत रहे। उन्होंने अनुभूति के अनुकूल ही अभिव्यक्ति के नये माध्यमों की खोज की।

राकेश एक सजग शिल्पी थे, आस्थावान रचनाकार थे और उनका समस्त लेखन गवाह है कि वे कभी भी अपने परिवेश से कटे नहीं। उससे कटकर लिखना न तो उन्हें अभिष्ट ही था और न उनके लिए सम्भव ही था। ध्यान से देखें तो राकेश का समस्त साहित्य परिवेश प्रतिबद्ध है। उसमें परिवेश की सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थितियों का अंकन है। राकेशके साहित्य में निरूपित स्थितियों का सीधा सम्बन्ध यथार्थ से है और यह यथार्थ उनके समय और परिवेश का यथार्थ है। व्यक्ति से परिवार, परिवार

से राष्ट्र और राष्ट्र से मानव समाज तक का पूरा परिवेश राकेश के साहित्य का जीवित आधार है। वे इनमें से किसी से भी कटकर या टूटकर नहीं जिये। फिर उनका सृजन इससे असंपृक्त कैसे रह सकता था ? यही कारण है कि उनके साहित्य में निरूपित कथ्य किसी अकेले व्यक्ति का नहीं है। वह तो उनके समय का है और समय में भी निरन्तर बढ़ती हुई आकुलता, पीड़ा, यन्त्रणा और असंतोष व विद्रोह की अभिव्यक्ति का है। ऐसी कोई भी स्थिति नहीं जो मानस को उद्वेलित करती हुई भीतर से आदमी को छीले और वह राकेश की पकड़ से बाहर हो। राकेश के साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है परिवेश के प्रति सजगता और उसकी सफल और यथार्थ अभिव्यंजना। उन्होंने आज के बदले हुए परिवेश में एक इकाई के रूप में व्यक्ति की त्रासदी को गहराई से समझने का प्रयास किया है। यही कारण है कि राकेश ने अपनी रचनाओं से अपने समय के मानवीय सम्बन्धों की गहनता, जटिलता और निरन्तर गहराते जाते संकट व टूटते बनते व बदलते सामाजिक मूल्यों के बीच व्यक्ति के निजी सम्बन्धों को समझने और समझाने का सफल प्रयास किया है। आज सामाजिक सम्बन्ध तो बिखर ही गये हैं, निजी सम्बन्धों के लिये भी संकट पैदा हो गया है। लगता है मानव-मानव के सम्बन्ध एक जैसे कगार पर खड़े हैं जहां से वे निरन्तर समस्याओं के प्रवाह से मिट्टी की तरह ढहते-खिरते और अस्तित्वहीन होते जा रहे हैं। मनुष्य अकेला होता जा रहा है। कैसी विडम्बना है कि समकालीन मनुष्य बाहर से सामाजिक दिखकर भी भीतर से बिल्कुल अकेला पड़ता गया है। उसका अकेलापन भीड़ में खड़े मनुष्य का अकेलापन है। राकेश ने इस स्थिति को पहचाना था, भोगा था। अतः उन्होंने अपने कथा-साहित्य में इस सबका अंकन बड़ी गहराई से किया है। स्त्री-पुरुष के निजी सम्बन्धों को, उनके बीच विकसित नये पीड़ा-बोध, अलगाव और विघटन को जिस गहराई से राकेश ने समझा और अभिव्यक्त किया है वैसे उनके समकालीनों में कोई नहीं कर सका। एक प्रकार से राकेश के कथा-साहित्य का यह एक प्रमुख स्वर है और काफी सशक्त स्वर है। यह उनके साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि है जो उन्हे अपने समकालीनों से बिल्कुल पृथक् महत्व प्रदान करती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-साहित्य एक नये मोड़ का, एक नई चेतना का और एक नये संदर्भ का साहित्य है। आजादी एक साथ ही कई चीजें लेकर आई, नये मान-मूल्य, नये तौर-तरीके और इन्हीं से अभिषिक्त साहित्य। इस नवीनता में मोहन राकेश का प्रदेय अभूतपूर्व है। स्वातन्त्र्योत्तर स्थितियों में हमारा जन-मानस, हमारा जीवन कहाँ से कहाँ आ गया है, इसका सही गवाह मोहन राकेश का साहित्य है। स्पष्ट ही मोहन राकेश का साहित्य बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के जीवन और परिवेश का प्रामाणिक दस्तावेज है।

नाटक को ही लीजिये। साठोत्तरी बर्षो में उसका जो विकास हुआ है उसमें जो नई प्रतिमाएँ बनी हैं और जो संदर्भ आये हैं वे राकेश के सहारे अधिक गतिमान हुए हैं। गतिमानता की इस प्रतिक्रिया में राकेश का योगदान अप्रतिम है। उन्होंने भाव से विचार और विचार से सूक्ष्म संवेदनात्मक स्तरों की खोज की है। इस खोज में व्यक्ति का भीतरी व्यक्तित्व ही अधिक विश्लेषित हुआ है। नाटक को रंगमंच से घनिष्ठतः और अनिवार्यतः संपृक्त मानकर राकेश ने अनेक नये मार्गों का उद्घाटन व प्रवर्तन किया है। इतना ही क्यों नाटक के क्षेत्र में राकेश की प्रयोगधर्मिता के इन्द्रधनुष भी झिलमिलाते दिखालाई देते हैं। बीजनाटक और पार्श्वनाटक जैसे नामों—केवल नामों ही नहीं कथ्य और शिल्प की ताजगी में भी, के सहारे राकेश अपनी प्रयोगशीलता का परिचय दिया है। वस्तुतः राकेश अन्वेषक थे और इसी वजह से उनका समस्त साहित्य एक सजग प्रहरी और अन्वेषक का साहित्य प्रतीत होता है।

कहानीकार के रूप में राकेश हिन्दी की नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियों की उपलब्धि अप्रतिम है। वे क्लासिक महत्व की कहानियां हैं। राकेश को जीवन में अनेक बार मोह भंग की स्थिति से गुजरना पड़ा था, अनेक कटु अनुभवों के कटुतम घूँटों को पीना पड़ा था। अत उनका कहानी साहित्य इस मोहभंग के त्रासद अनुभवों को हर बार एक नयी शैली में अभिव्यक्त करता रहा है। उनकी कहानियों में प्रायः अकेले पड़े उस मनुष्य का चित्रण हुआ है जो आज के समाज में परिवर्तित मूल्यों और सम्बन्धों की यंत्रणा को अपने अकेले क्षणों में झेलते जाने के लिए अभिशप्त है। हां, यह एक सच्चाई है कि इनका अकेलापन अपने समाज से कटे हुए व्यक्ति का अकेलापन नहीं है, वरन् समाज के बीच रह कर छटपटाते घुटते और निरन्तर खाली होते जाते मनुष्य का अकेलापन है। राकेश के कहानी साहित्य की उपलब्धि कथ्यपरक तो है ही, वह अपनी शैल्पिक ताजगी के कारण भी नयी पीढ़ी के लिए एक चुनौती है। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि समकालीन विसंगतियों और मानवीय रिश्ते की त्रासदी का सजग और आत्मीय शिल्प में अभिव्यंजन है। कथ्य जितना दमदार और यथार्थ है, शिल्प भी उतने ही दम से युक्त है। उसमें आत्मीय और विश्वसनीय शैली का प्रयोग हुआ है।

राकेश के उपन्यास उनकी कहानियों में निरुपित कथ्य के ही विस्तार हैं। वे कहानियों में जिस त्रासदी, पीड़', आकुलता और जटिलता बोध को अभिव्यक्त करते रहे वही अधिक गहनता और घनता के साथ उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है। 'अंधेरे बंद कमरे'' यदि हरबंस और नीलिमा की कहानी भर बनकर रह गया

होता तो यह उसकी कमजोरी होती । यह तो दिल्ली के परिवेश में साँस लेते विविध वर्गों वाले पात्रों की जीवन्त गाथा है । इसमें आकर समकालीन जीवन विशेषकर समकालीन परिस्थितियों की जटिलता में घुटते और हताश होते स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध अपनी स्थिति के अभिव्यंजन के लिए जुबान भी पा गये हैं । "न आने वाला कल' अस्तित्व की चिन्ता और उसकी सुरक्षा-भावना को लेकर लिखा गया उपन्यास है। अंतराल' में फिर एक बार राकेश ने कुमार और श्यामा के सम्बन्धों और उनके सम्बन्धों के अंतराल को चित्रित किया है । ध्यान से देखें तो राकेश की अधिकांश कहानियाँ और उनके सभी उपन्यास मानवीय सम्बन्धों—विशेषकर दाम्पत्य सम्बन्धों में आई कटुता, पीड़ा और विसंगतियों के विशद् शब्द-चित्र हैं । गत दो दशकों में सामाजिक जीवन और व्यक्ति का जीवन कितना बदला है, परिवेश कितना तल्ख हुआ है ? और मानव-मन खालीपन से कितना, कहाँ तथा किन स्थितियों में भरता गया है, इसकी जानकारी के लिये राकेश की कहानियाँ और उपन्यास सर्वाधिक प्रामाणिक हैं । यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि एक रचनाकार अपने समय और परिवेश को पूरी ईमानदारी से अपने साहित्य में अंकित करता हुआ उसे विश्वसनीय बना दे । राकेश ऐसे ही सर्जक थे ।

नाटक, कहानी और उपन्यास लेखक राकेश ने गद्य की विविध विधाओं पर भी लेखनी चलाई है । उनके निबन्धों में समकालीन विषयों व जीवन की चर्चा है । वे अपनी शैली की अभिनवता के कारण निश्चय ही लोकप्रिय होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है । अन्य विधाओं को भी राकेश ने छुआ है जैसे डायरी, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र और रिपोर्ताज, किन्तु इस दिशा में वे सक्रिय नहीं रहे । अन्य विधाओं में उनका ध्यान यदि कहीं केन्द्रित हुआ है तो वह यात्रा वृतान्त है । 'आखिरी चट्टान तक' यात्रा संस्मरण है—यात्रा-वृतान्त है । इसमें प्रकृति की अनाघ्रात छवियाँ हैं, सौन्दर्य की तरंगें हैं, सांस्कृतिक संदर्भ हैं और इन सबको वाणी प्रदान करने वाली अद्भुत शैली है । यात्रा परक साहित्य के इतिहास में राकेश की कृति सदैव एक ऐसी उपलब्धि बन कर जियेगी जिस पर वर्तमान पीढ़ी को नाज होगा और भावी को इससे प्रेरणा मिलेगी ।

राकेश का साहित्य युग-साहित्य है । उसमें समकालीन युग-जीवन की अभिव्यंजना है । उसमें मनुष्य के राग-विराग, आसक्ति-अनासक्ति, स्वीकार-अस्वीकार, ग्रहण और त्याग, जीवन के गुह्य और जटिल संदर्भ, युग-त्रासदी और उससे उत्पन्न विभिन्न मनःस्थितियों का यथार्थ, विश्वसनीय और सही अंकन हुआ है । राकेश के साहित्य का सर्व प्रमुख गुण है : अनुभूति की ईमानदारी और अभिव्यक्ति को निश्छल प्रसन्नता और सबसे बड़ी उपलब्धि है समकालीन जीवन की समग्र पहचान-पकड़ और सूक्ष्म संवेदनात्मक अभिव्यक्ति । यदि विधाता ने इस मनीषी सर्जक को

कुछ मोहलत और बख्श दी होती तो साहित्य और समकालीन जीवन का अव्याख्येय उपकार होता ।

एक व्यक्ति वह होता है जिसकी जिन्दगी सीधी और सपाट होती है और दूसरा वह जो अनेक उलट-फेर, स्याह-सफेद और विरोधाभासों के बीच अपने व्यक्तित्व का विकास करता है । राकेश का जीवन और उसमें आई उद्वेलनाएँ इस बात की गवाही देती हैं कि न तो उनकी जीवन रेखा सीधी और सपाट है और न वैसी होना उन्हें प्रिय ही था । वे संघर्ष से शुरु करके संघर्ष में ही समाप्त हो गये । प्रारम्भ और अंत के बीच जो अंतराल है, वह अनेक विरोधाभासों व अन्तर्विरोधों से ग्रस्त है । वस्तुतः राकेश के व्यक्तित्व का जो मानचित्र है उसमें ऋजुता और सरलता कम है, वक्र और वर्तुल रेखाएँ अधिक हैं । ऐसा नहीं है कि उसमें रंग न हों या वे भरे ही न गये हों । वे तो हैं पर इतने क्षणिक और कच्चे कि एक रंग पर दूसरा आसानी से चढ़ता गया है । एक ओर राकेश के व्यक्तित्व में जीवनगत अव्यवस्था, उतावलापन और आवेश है तो दूसरी ओर लेखनगत व्यवस्था, अनुशासन और संयम है, सहृदयता और संवेदनशीलता है । यदि वे ममतालु और स्नेही थे, आत्मीय और परहितैषणा के कायल थे तो दूसरी ओर उनमें विरोध का स्वर भी तीखा था । जिजीविषा, जिन्दादिली, आत्माभिमान, दोस्ती के नाम पर सब कुछ होम देने की प्रवृत्ति, बाहर से कहकहे और ठहाकों के बीच जीनेवाले और भीतर पीड़ा का संसार लिये जीने वाले राकेश का व्यक्तित्व सागर का व्यक्तित्व था । सागर जैसे शतशत तरंगों से आहत और पवन के थपेड़ों से उद्वेलित होता हुआ भी गंभीर बना रहता है वैसे ही राकेश भी एक मौन के साथ सब कुछ सहते रहे । उनकी सहने की प्रवृत्ति उनकी 'रहनि' को भी व्यक्त करती है । अन्तःसलिल व्यक्तित्व के धनी राकेश को कुरेदने से ही नमी पाई जा सकती थी । जब भी जिसने भी उन्हें कुरेदा तब-तब उनकी सहृदयता उभर कर सामने आती गई और जिसने उन्हें बाहर से ही देख कर फैसला दे डाला कि 'वह तो अन्तर्विरोधों से ग्रस्त अव्यवस्थित व्यक्तित्व का स्वामी हैं' तभी कहीं कुछ छूट गया और राकेश का व्यक्तित्व उसके लिए अपरिभाषित ही रह गया । मेरी दृष्टि में राकेश का असली व्यक्तित्व वह नहीं था जो बाहर से आभासित होता था, वरन् वह था जो नहीं दिखाई दिया । जो उन्होंने कहा उसकी अपेक्षा जो नहीं कहा वही राकेश का असली कथ्य था । उनकी कहानियाँ इसकी गवाही दे सकती है, उपन्यास के भीतर से यह अनकहा व्यक्तित्व झाँकता है । उनकी आँखों के तल में जो छिपा था, उसे कितने देख पाये ? कितनों ने उसे जानकर राकेश के साथ न्याय किया ? मैं समझती हूँ कि राकेश अपने साहित्य अपनी मान्यताओं और प्रस्तुतियों के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को भी विश्लेषित कर गये हैं । फिर कितना ऐसा भी है जो अभी नहीं कहा जा सका है—यहाँ तक कि 'अनीता' की कलम से भी वह अलिखित ही रह गया है ।

3

नयी कहानी : परिवेश और संवेदना

आधुनिक साहित्य का भावबोध और रूपवंध न केवल कविता, उपन्यास और नाटक में ही परिवर्तित मुद्रा लिए हुए है, बल्कि कहानी भी उसके प्रभाव से अपने को वचा नहीं पाई है। कहानी अपनी कहानीनुमा तस्वीर को लेकर नई विशेषण के साथ भी अवतरित हुई है। स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखी जाने वाली कहानियों की नवीनता रूप शिल्प और मानवीय दोनों की नवीनता है। पत्र-पत्रिकाओं में नई पीढ़ी के कहानीकारों और तरुण आलोचकों ने वर्तमान कहानी को लेकर पर्याप्त विवाद मचाया है। फलस्वरूप 'कहानी' नयी कहानी की संज्ञा से अभिषिक्त होकर गद्य साहित्य की विधाओं में अग्रिम मोर्चे पर खड़ी है। आजादी ने जो नयी चेतना प्रदान की है, उसमें आस्था व आशा का स्वर प्रमुख रहा है। जैसे जैसे सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य बदला है वैसे-वैसे ही उसमें साँस लेने वाला व्यक्ति भी बदल गया है। आजादी के पहले जो प्रश्न-उपप्रश्न और समस्यायें थीं, वे आजादी के बाद एक नये रूप में सामने आई हैं। कारण मानव के अनुभवों की शृंखला में वेहिसाब नये अनुभव आकर जुड़ गए हैं। उसकी समस्याओं की परिधि न केवल चौड़ी हुई है, वरन् उसकी बाहरी सीमा कँटीले तारों से बिंधी हुई है। ऐसी स्थिति में कहानी का नयी हो जाना परिवेश की माँग है। नयी कहानी से तात्पर्य उस कहानी से है जो सन् 50 के आस-पास से नये युग बोध के रंग में रंगी यथार्थ की रेखाओं से लिखी गयी है। इसके प्रमुख हस्ताक्षरों में मार्कण्डेय, भारती, राजेन्द्र यादव, अमरकांत, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भंडारी और नरेश मेहता आदि शीर्ष पर स्थित हैं। इन कहानीकारों ने जीवन की सचाई को आन्तरिक जटिलता और संश्लिष्टता के साथ उभारा है। गाँव और नगर दोनों के यथार्थ-जीवन को रूपायित करने तथा खोखले एवं थोथे आदर्शों को छोड़कर नये जीवन-मूल्यों की प्रस्थापना का संकल्प व ललक इस कहानी में मिलती है। परिवेश की जटिलता के बिम्ब, यथार्थ के सन्दर्भ, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों के प्रति लेखकीय सतर्कता, बौद्धिकता, रचना-तंत्र की नयी बुनावट और प्रतीकान्वेषी वृत्ति व बिम्बोद्भावक क्षमता नयी कहानी के प्रत्यक्ष गुण हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण नई कहानी अनुभव का प्रामाणिक दस्तावेज बन गई है। वह यथार्थ अनुभवजनित संवेदना की नयी राह पर चल रही है।

स्थिति और स्वरूप :

नयी कहानी विशेष संदर्भों की कहानी है। उसमें परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता और जागरूकता तो मिलती ही है, यथार्थ ग्रहण के प्रति जीवन्त दृष्टि भी मिलती है। वह नयी है ही इसलिए कि आज का नया कहानीकार यथार्थ को रूबरू देखने की दिशा में सक्रिय हैं। उसमें हर पारंपरिक दृष्टि को छोड़ने का आग्रह है—दुराग्रह नहीं। वस्तुतः नये कथ्य की समृद्धि को अनुभव करते हुए तत्कालीन परंपरा के प्रति यह असंतोष और वितृष्णा ही लेखक को नया बनाते हैं, मात्र समवयस्क या समकालीन होना ही काफी नहीं है। नयी कहानी में जो कथ्य और शिल्प की नवीनता है वह स्वातंत्र्योत्तर भारत की गतिविधियों का परिणाम है। राजेन्द्र यादव ने ठीक ही लिखा है : "वस्तुतः स्वतन्त्रता के पश्चात् के कथाकार का एक संसार वह है जो उसके आस-पास फैला हुआ है, जिससे उसे घृणा भी है, लेकिन उसकी मजबूरी यह है कि वह उसमें रहने, टूटने और घुटने व समझौता करने के अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं देख पाता है। दूसरी दुनियाँ वह है जिसे उसने अपने भीतर से निकाल कर बाहर फेंक दिया हैं। इसका निर्माण उसने खुद किया है। कथाकार अपने टूटने, घुटने और घिसटने की तस्वीर पूर्ण असामर्थ्य, पराजय और हताशा के साथ व्यक्त करता है। यही उसकी नियति है। उसे खुद नहीं मालूम कि जिस कुरूप, घिनौनी और चिपचिपी सृष्टि का जिम्मेदार उसे ठहराया जाता है, उसमें उसकी जिम्मेदारी कितनी है? जिस रंग-बिरंगे, लकदक सलमे-सितारे मढ़े संसार को उस पर लाद दिया गया है, उसकी कुरूप सिसकती आत्मा को खींचकर बाहर निकाल देना अपराध है या अपनी आंतरिक कुरूपता की कीचड़ को कला के माध्यम से औरों पर फैलाना। कलाकार का अपराध कहाँ है—कला धर्म का निर्वाह या न निर्वाह कर सकने की मजबूरी में"?[1]

नयी कहानी के सम्बन्ध में अनेक विचार प्रकट किये गये हैं। वह कल्पना-लोक से उतरकर समाज के धरातल पर प्रतिष्ठित हुई हैं। उसमें यथार्थ का स्वर न केवल साफ है, अपितु तीखा और तिलमिला देने वाला भी है। मेरी दृष्टि में नयी कहानी वह है जो आजकल लिखी जा रही है और जिसमें आज की अनुभूति व आज के युग का गहरा बोध है। नयी कहानी पुरानी कहानी से भिन्न है। इस भिन्नता को कमलेश्वर ने इन शब्दों में प्रकट किया है : "पुरानी कहानी में व्यक्ति शारीरिक रूप से आता था और वैचारिक रूप से कथाकार। नयी कहानी में यह विचार उसी शरीर में अवस्थित बुद्धि से उपजता है जिसे प्रस्तुत किया जाता है। ……… तब विचारों को हाड़-माँस प्रदान किया जाता था, अब हाड़-माँस के इंसान के विचारों

1. राजेन्द्र यादव : एक दुनियाँ समानांतर, पृष्ठ 19

को प्रस्तुत किया जाता है ।" कहने की आवश्यकता नही कि राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर आदि ने कहानी का यही रूप स्वीकार किया है । नयी कहानी का नया बोध मूलत: नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित है । 'नयी कहानी मानवीय मूल्यों से संरक्षण और जीवनी शक्ति के परिप्रेषण की दिशा में यत्नशील है ।'[1] इतना ही क्यों वह तो ध्वंसोन्मुखी आदर्शों की पुनर्स्थापना हेतु बदलते मूल्यों और टूटती मर्यादा के प्रति प्रबुद्ध और भावाकुल दिख रही । फर्क है तो केवल यही कि वह पारंपरिक आदर्शों व प्रतिमानों के अवमूल्यन या ध्वंस पर शोकाकुल नहीं है । वह तो स्थिति, परिवेश और आस-पास बिखरे जीवन से प्रेरित हो नये प्रतिमानों के प्रस्तुतीकरण के निमित व्यग्र व इच्छुक है । नयी कहानी ने नर-नारी के सम्बन्धों की साहसपूर्ण वास्तविकता, परिवेश और हाड़–माँस का सत्य अंकित किया है। जीवन का घिनौनापन ही उसका प्रतिपाद्य नहीं है । यही कारण है कि नयी कहानी 'सैक्स' की अपेक्षा 'सैक्स साइकोलीजी' को प्रस्तुत कर रही है । उसमें अश्लीलता की अपेक्षा बौद्धिक निर्लिप्ति अधिक है ।

नयी कहानी की व्याख्या करते हुए कमलेश्वर ने लिखा है कि 'आज की कहानी घटनाओं का संपुजन या कथानक का मनोवैज्ञानिक विकास भर नहीं है—उसकी यात्रा घटनाओं या संयोगों से न होकर प्रसंगों की आंतरिक प्रतिक्रियाओं के बीच होती है और संवेदना के सूक्ष्म तन्तुओं पर धीरे-धीरे आघात करती हुई वह एक सम्पूर्ण अनुभव से गुजर जाती है, इसीलिए वह कथायात्रा नहीं, पाठक के उस अनुभव से स्वयं की यात्रा हो जाती है ।,[2] अश्क जी की धारणा है कि 'नयी कहानी में सबसे महत्व की चीज वस्तु और देखने वाली दृष्टि है । इसके बाद शिल्प का स्थान आता है ।'[3] इसी संदर्भ में मोहन राकेश का कथन है कि 'कहानी कविता या चित्रकला के गुण से कहानी नहीं बनती, अपने गुण से कहानी बनती है—सजीव और सशक्त भाषा में यथार्थ के प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हुए उनके माध्यम से एक संकेत देकर ।'[4] नयी कहानी के संदर्भ से राजेन्द्र यादव ने प्रमाणिकता की बात कही है । वे प्रामाणिकता की खोज उसका सम्पूर्ण स्वीकार और अप्रामाणिकता के अस्वीकार को ही नयी कहानी का धरातल मानते हैं । इस प्रामाणिकता में दोनों गुण हैं—'अथेंटिसिटी' और बैलेडिटी' । तात्पर्य यह है कि वह तो यथार्थ का सत्यपरक चुनाव ही है । प्रत्येक यथार्थ कहानी का कथ्य नहीं बन सकता है जो 'वैलिड'

---

1. कमलेश्वर : नयी कहानी की भूमिका, पृष्ठ 70
2. वही, पृष्ठ 72–73
3. अश्क : नयी कहानी एक पर्यवेक्षण लेख से
4. मोहन राकेश : कहानी नये संदर्भों की खोज लेख से

है वही नयी कहानी का यथार्थ है। इसी से स्पष्ट है कि नयी कहानी संदेश नहीं अनुभव का खरापन अपने पाठकों को सौंपती है।

नयी कहानी के सम्बन्ध में और भी कहानीकारों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। 'मार्कण्डेय' ने 'नयी कहानी' को स्पष्ट करते हुए लिखा है : "नयी कहानी से हमारा मतलब उन कहानियों से है जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण है, जो जीवन के लिए उपयोगी है और महत्वपूर्ण होने के साथ ही, उसके किसी न किसी नये पहलू पर आधारित हैं या जीवन के नये तत्वों को एकदम नई दृष्टि से दिखाने में समर्थ है.........नवीनता इसमें नहीं है कि उसमें किसी अछूते भूभाग के अजीब प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें है कि साधारण मानवीय में वह कौनसा विशेष नयापन है जो सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है, या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौनसा ऐसा पहलू है जो साहित्य में एकदम अछूता है"।[1] 'मार्कण्डेय' के इस लम्बे कथन से स्पष्ट है कि वे नयी कहानी उसे मानते हैं जिसमें नया भावबोध हो और जीवन के नये संदर्भों का उद्घाटन हो।

डॉ० नामवरसिंह ने भी नयी कहानी में निरूपित नये भावबोध को स्वीकार करके ही उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनका मत है : "अभी तक जो कहानी सिर्फ कथा कहती थी या कोई चरित्र पेश करती थी या एक विचार का झटका देती थी वही 'निर्मल' के हाथों में जीवन के प्रति एक नया भावबोध जगाती है......दुर्लभ अनुभूति चित्र प्रदान करती है"।[2] असल में नयी कहानी किसी विन्दु पर केन्द्रित प्रभाव की कहानी नहीं है; अपितु जीवन के एक संश्लिष्ट खण्ड में व्याप्त संवेदना की कहानी हे। आज भी कहानी में प्रभावान्विति का महत्व उतना नहीं जितना अनुभूति जनित प्रभाव की गहराई और घनता का है। कहने का तात्पर्य यह है कि नये कहानीकार में अपने आस-पास के परिवेश की स्वीकृति है और वह पूर्वाग्रह रहित है। उसकी कहानी का विषय उसका भोगा हुआ यथार्थ है। इस भोगे हुए यथार्थ की अनुभूति की घनता और परिवेशव्यापी अनुभवों, घटनाओं, संदर्भों की प्रमाणिक किन्तु यथार्थ प्रस्तुति और वह भी परिचित शिल्प में, नयी कहानी का महत्वपूर्ण आयाम है।

आज की कहानी का सूत्रपात कब हुआ, यह विवाद का विषय है। कुछ लोग उसे निर्मल वर्मा (1929) की 'परिन्दे' कहानी से स्वीकार करते हैं और कुछ लोग सन् 1950 के आसपास डॉ० शिवप्रसाद सिंह की 'दादी माँ' से। मेरी दृष्टि में यह विवाद बेकार है। वर्तमान कहानी अपनी पिछली परंपरा का युगानुकूल स्वाभा-

1. मार्कण्डेय : हंसा जाई अकेला भूमिका भाग से।
2. नामवरसिंह : कहानी 'नयी कहानी' पृष्ठ 68

विक विकास है। कहानी के सम्बन्ध में नयेपन का प्रश्न डॉ० नामवर सिंह ने 'कहानी' के वार्षिक विशेषांक में और दुष्यंतकुमार ने 'कल्पना' में 1954–55 में उठाया था, किन्तु 'नया' शब्द दलबंदी और और घुटन या दुःस्वप्न मात्र बनकर रह गया। 'नयी कहानी' के नामकरण को लेकर भी अनेक विवाद उठे और समाप्त होते चले गये। कुछ लोगों ने इसे 'कहानी', 'एन्टीस्टोरी', 'सचेतन कहानी' और 'आज की कहानी' भी कहा, किन्तु ये नाम आधारहीन हैं। आजकल समानांतर कहानी की विशेष चर्चा है। वास्तव में नयी कहानी विषय और शिल्प की नवीनता के साथ-साथ अनुभव के खरेपन को व्यक्त करती है। ऐसी स्थिति में उसे 'नयी कहानी' की अभिधा से मंडित करना सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में मुझे 'मोहन राकेश' की बात ही अधिक समीचीन प्रतीत होती है। उन्होंने लिखा है : "नयी कहानी" नाम तो मात्र एक अनुबंध है, प्रश्न वास्तव में दो अलग-अलग दृष्टियों का है। नयी कहानी के साथ शब्द 'नयी' का प्रयोग केवल विभाजन की सुविधा के लिए है—एक सीमांत के बाद कहानी के विकास की अलग दिशा का संकेत देने के लिए है। मैं नहीं समझता कि आज के किसी कहानीकार को इस बात का मोह होगा कि उसकी कहानी भविष्य में 'कहानी' के रूप में न जानी जाये, नयी कहानी के रूप में जानी जाये, नयी कहानी के रूप में जानी जाये। हाँ, उसका यह चाहना और इस बात का दावा करना कि उसके आज के प्रयोग पहले के प्रयोगों से भिन्न हैं, उसका दुराग्रह नहीं है।"[1]

वास्तविकता यह है कि नयी कहानी और पुरानी कहानी के मध्य दो संस्कारों की टक्कर है। यही टकराहट यह प्रमाणित करती है कि हिन्दी की आज की कहानी न केवल पहले की कहानी से अपनी दृष्टि और 'एप्रोच' में भिन्न है, अपितु उसका अपना एक निजी धरातल भी है। वस्तु, शिल्प और भावभूमि---सभी दृष्टियों से नयी कहानी अपनी एक पहचान बना चुकी है। उसकी अपनी उपलब्धियाँ हैं। 'कमलेश्वर' की दृष्टि में "नयी कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने जैनेन्द्र और अज्ञेय की नितांत व्यक्तिवादी, अहंवादी और रुग्ण मानसिकता से हिन्दी कहानी को मुक्त किया है।" मोहन राकेश की दृष्टि में रचना-दृष्टि और जीवन-दर्शन अलग-अलग बातें हैं।" जहाँ तक नयी कहानी के जीवन-दर्शन का प्रश्न है, वह अपनी मुख्य धारा में यथार्थपरक समाजवादी विचारधारा से सम्बद्ध रही है, पर अपनी रचना दृष्टि में उसने यथार्थ के आंतरिक घात-प्रतिघातों में से ही अपने संकेत ग्रहण किये है।"[2]

1, मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ 48
2. मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ 78

नयी कहानी जिस स्थिति में है, उसमें उसका स्वरूप काफी हद तक बदला हुआ है क्योंकि आज का रचनाकार पूर्वाग्रहों और पारंपरिक स्वीकारों से मुक्ति चाहता है। कारण, पुराने कुँए का पानी मीठा और स्वास्थ्य के लिए उपयोगी तो हो सकता है, किन्तु वह हर युग में नयी उभरती पीढ़ी को भी वैसा ही उपयोगी लगे यह आवश्यक नहीं है। सरोवर का जल निर्मल कितना ही हो, कंकडी फैंकने पर उसमें अनगिनती लहरें भले ही उटलें, किन्तु उसकी कोई भी बूँद वैसा स्फुरण और संवेदन नहीं जगा सकती है जैसा कि झरने से छूटते पानी के किंचित स्पर्श से ही जग जाता है। इसके कारण और कितने भी हों, किन्तु एक अहम कारण यह है कि प्रत्येक युग की दृष्टि अपने अनुकूल सृष्टि रचती है। उसे अपनी सर्जना से अधिक आश्वस्ति मिलती है। फिर आज जबकि साहित्यकार की चेतना शतगुणित होती हुई परिवेश के समूचे फैलाव को अपने भीतर समोती जा रही हो, तब तो समकालीन परिवेश की बाँहों का सहारा लिये बिना एक कदम भी चल पाना असंभव नहीं तो कठिन और बेमतलब अवश्य लगता है। यही कारण है कि आज का सर्जक परिवेश बोध की संवेदना को आत्मसात करके जी रहा है। वह अपने अन्तस् और बाह्य की असंगतियों, कटुताओं और अन्तर्विरोध जनित रिक्तताओं को झेल रहा है। जीने और झेलते जाने के इस क्रम में उसे आदर्श का मीठा जल भी बेस्वाद अनुपयोगी और व्यर्थ प्रतीत होने लगा है। फलतः वह नये सिरे से व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों और व्यक्ति व समाज के सम्बन्धों का न केवल पुनरन्वेषण कर रहा है, अपितु उन्हें एक नये अर्थ से भी जोड़ रहा है। यद्यपि ऐसा करते जाने में अनेक बाधायें और खतरे हैं, किन्तु वह नये मानवीय क्षितिजों की खोज के लिये खतरे उठाने को तैयार है। खतरों और बाधाओं के बीच चलते-चलाते वह भटक भी रहा है और कभी-कभी अटक-अटक कर स्वयं को ही प्रश्निल दृष्टि से तौल भी रहा है। उसने अपने भीतर की अनमापी गहराइयों के बीच से जो स्वर ग्रहण किया है, वह एकदम निरर्थक नहीं है। उसकी सार्थकता ही यह है कि उसमें निरर्थकता भी एक मूल्य बन गयी है। अर्थहीनता में सार्थकता की खोज, व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों का नया संदर्भ और सामाजिक विषमताओं व विद्रूपताओं के बीच भी जीने की शक्ति प्रेरित कामना ही आज के कथा साहित्य में निरूपित हो रही है। यह निरूपण इस तथ्य का प्रत्यक्ष गवाह है कि आज की कहानी कल की कहानी से बहुत बदल गई है—बदलती ही जा रही है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया कहानी की वस्तु और दृष्टि–भंगिमा में स्पष्टतः लक्षित की जा सकती है। कहानी के बीच व्यक्ति की शक्ति और सामाजिक कटुताओं का यह प्रक्षेपण साक्षी है कि आज कहानी सैद्धान्तिक व बौद्धिक आवरण को चीर कर धरती के आग पानी को ही अपना धन समझ रही है। इसी से इसमें चित्रित व्यक्ति प्रेमचन्द के पात्रों की घुलनशील वृत्ति

की केंचुल उतारकर विषमताओं, स्थापित व्यवस्था और समस्त अत्याचारग्रस्त परिवेश के विरुद्ध अपने विश्वास का ध्वजारोहण कर रहा है।

नयी कहानी ने पूर्वाग्रहों से मुक्ति प्राप्त करली है। वह इन्द्रधनुषी रंगों और कल्पना के सतरंगे आग्रहों से मुक्त होकर यथार्थ की ऊबड़-खाबड़, किन्तु ठोस धरती पर आ गई है। उसमें पुराने व अव्यावहारिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है तथा असमय वृद्ध सांस्कृतिक मूल्यों का या तो नवीनीकरण किया है या उन्हें नये मूल्यों के प्रकाश के समक्ष मृत घोषित कर दिया है। आज हम जिस युग में जी रहे हैं, वह वास्तविकताओं की पहचान का युग है। कहानीकार में यह पहचान कविता की अपेक्षा अधिक तेजी से घटित हो रही है। यही कारण है कि कहानी लिखने की प्रेरणायें भी असीमित हो गई हैं। हमारे चारों ओर बिखरे हुए जीवन का हर पल, हर संदर्भ और हर स्थिति कतिपय प्रभावों से आन्दोलित हो रही है। सजग कहानीकार के पास इस सबको पहचानने की क्षमता है, गहरी अनुभूति है और अनुभव के उस यथार्थ को व्यक्त करने के लिये सशक्त शिल्प है। "ऐसी स्थिति में जीवन का हर पल, हर संदर्भ और अपने आस-पास का सब कुछ कहानी बनता जा रहा है। परिणामत: हम जहाँ पर दो पल विराम कर साँस लेते हैं वहाँ एक कहानी कसमसाने लगती है। जिस राह से गुजरते हैं वहाँ पैरों के बने निशान एक करुण-गाथा छोड़ जाते हैं। धरती के गर्भ में छिपा बीज जब अंकुरित होकर हवा में लहराता है, तो उसका एक इतिहास लिख जाता है जिसे कहानी बनते देर नहीं लगती। इतना ही क्यों वर्तमान परिस्थितियों में अनेक संकटों को झेलते मानव के चेहरे के भाव-अभाव, तनाव और सलवटों सभी में एक-एक कहानी लिखी दिखाई देती है। आज का सचेतन कहानीकार जब लगातार रौंदी जाने वाली सड़क के दिल की धड़कन भी सुन लेता है तो फिर मेहनत मजदूरी करने वाले आदमी के पसीने की बूंदों में, बीमारी और दर्द से पीड़ित मरीज की कराह में, अनेक संगतियों के बीच द्वन्द्व और तनाव झेलते स्त्री-पुरुषों में, निरन्तर टूटते मानवीय रिश्तों में, किसी घायल, गरीब और बेसहारा की विवशता में और किसी प्रेम के मारे असफल और पूरी तरह टूट चुके आदमी में छिपी कहानी क्यों बाहर नहीं आ सकती है? आज की कहानी यही है, उसकी संवेदना यही है और उसका परिवेश भी ऐसी ही अनेक स्थितियों से सम्बद्ध है।"[1]

यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय,, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय प्रेमचन्द की पींठ पर एक एक करके उतरने वाले कहानीकार हैं। जैनेन्द्र और अज्ञेय ने मानवीय आंतरिकता को मनोविश्लेषणात्मक कहानियों के सहारे अभिव्यक्त किया है। 'यशपाल' में सामाजिक वर्ग-वैषम्य की भावना और पात्रों की मनोग्रंथियों का विश्लेषण करके मध्य-कालीन बोध को तोड़ने का प्रयत्न दिखाई देता है। "अश्क" में सामाजिक

1. डॉ. हरिचरण शर्मा : नयी कहानी की संवेदना निबन्ध से।

भावना और वैयक्तिक जीवन-प्रसंगों के आपसी संयोग से एक समीकरणात्मक मानवीय चेतना की विचारणापुष्ट निर्धारणा और अभिव्यंजना दिखाई देती है। सामाजिक बोध की भूमिका पर विकसित चेतना का स्फुरण और अभिव्यंजन अश्क, अमृतलाल नागर, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, भैरवप्रसाद गुप्त, भीष्मसाहनी और धर्मवीर भारती की कहानियों में उपलब्ध होता है (परिस्थितियों की जटिलता और विषमता ने जीवन बोध और उसके स्तर को भी बदल दिया है। इतना ही नहीं मानवीय सम्बन्ध, रिश्ते-नाते और पारिवारिक और वैयक्तिक सन्दर्भों ने नई स्थितियाँ पैदा करदीं हैं। फलतः जीवन-निर्वाह का प्रश्न जटिल हो गया है। उसके लिये न केवल पति वरन् पत्नी भी नौकरी के क्षेत्र में उतर रही है। कहीं कहीं यह भी हुआ है कि पति पत्नी की कमाई पर पल रहा है। इसके साथ ही कहीं सामाजिक दायित्व के निर्वाह अथवा दबाव के कारण लड़कियाँ नौकरी कर रही हैं। उनको इच्छाओं का रंगमहल परिस्थितियों के दबाव के कारण खण्डहर होता जा रहा है। कभी वे अविवाहित होकर विवाहित का, कभी विवाहित होकर अविवाहित का और कभी प्रेम के नाम पर कलंकिनी बनाकर ठुकराई हुई उपेक्षिताओं का जीवन बिता रही हैं। इतने पर भी उन्होंने आत्महत्या से अपने को बचाया है, प्राणघाती पीड़ा सहकर भी अपने अस्तित्व को बनाये रखा है। अनेक रोजगार दफ्तर खुलने के बाद भी नयी पीढ़ी का अधिकांश जीवन बेमतलब और बेरोजगार हो गया है। परिणाम सामने है—काफी हाउसों, टी स्टालों और सिनेमाघरों पर भीड़ इकट्ठी होती जा रही है। भीड़ बढ़ रही है, उसका दबाव बढ़ रहा है और व्यक्ति अकेलेपन का बोझ लिये जीवन की रही-सही साँसों को जैसे तैसे गिन रहा है। सामाजिक और पारिवारिक दायित्वबोध बढ़ने के कारण व्यक्ति की विवशताएँ बढ़ रही हैं।

नगरीकरण की प्रक्रिया तेजी से घटित हुई है और अभी भी हो रही है। कस्बाती जीवन जीने का आदी बुद्धिवादी व्यक्ति रोजगार पाकर भी महानगरीय जीवन की चकाचौंध और तड़क-भड़क में खोता जा रहा है। एक ओर यह नगरीय जीवन है और दूसरी ओर वह अतीत है जिसकी स्मृतियाँ उसके मनोराज्य में कौंधती हुई उसे इन्सानी रिश्ते से जोड़ती हैं। इस पीड़ामय द्वन्द्व में वह भटक गया है। व्यक्ति का निजीपन अनजाने महानगरों की भीड़ में आकर छूट गया है। उसे केवल ऊब, उदासी और अपरिचय के बीच रहना पड़ रहा है। विवशता की प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं हो रही है। जो व्यक्ति कस्बाती जीवन को छोड़कर यहाँ आया है वह केवल व्यक्ति नहीं है। वह तो किसी का पिता है, किसी का पति है और किसी असहाय वृद्धा का बेटा है। ऐसी स्थिति में उसे अपने पीछे छोड़ आये परिवार के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था भी करनी है। व्यवस्था जुटाने की आशा लेकर आया हुआ यह व्यक्ति महानगरीय जीवन में आकर स्वयं अव्यवस्थित

होता जा रहा है। यह वह व्यक्ति है जो अपने किशोरकाल में भावी जीवन के सपनों का संसार सँजोये हुए था। उसकी कल्पना थी कि शिक्षा समाप्त करके वह जीवन को नई दिशा देगा। उसे अच्छी नौकरी मिलेगी, अच्छा जीवन स्तर होगा और एक मनचाही आकर्षक पत्नी होगी, किन्तु इस 'किन्तु' ने ही तो उसे प्रश्नों और समस्याओं के जंगल में भटका दिया है। यह तो था उसकी कल्पना का जीवन और जब उसे इसमें उतरने का अवसर मिला तो सारी स्थितियाँ उलट गईं, कल्पनायें यथार्थ के ताप से तपकर न केवल झुलस गईं अपितु उनकी स्थिति तक एक प्रश्न बन गई। स्थिति यह हुई कि उसका विवाह तो हुआ, किन्तु नौकरी न मिली और हर साल बाद वह अपने 'फ्रस्ट्रेशन' को एक नये बच्चे के रूप में जन्म देता रहा। स्वच्छ मकान की कल्पना सीलन और बदबूदार 'अँधेरे बन्द कमरों' में बदल गई। उसकी पत्नी का सौंदर्य झुरियों में बदल गया और बच्चे सही परिवेश और पोषण न पा सकने के कारण न केवल दुर्बल हो गये वरन् चिड़चिड़े भी हो गये। नौकरी मिली तो है, किन्तु सारे दिन दफ्तरी जीवन में सिर खपाते रहने के बाद जब वह घर लौटता है तो उसका दम घुटता है; बच्चों की माँगों और चीख पुकार से कान के पर्दे फटते दिखाई देते हैं।

पुरुष पत्नी की खीझ से भीतर ही भीतर घुलता जा रहा है। नतीजा यह कि वह वापस अपने अतीत में लौट जाना चाहता है। वह व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहता है और सारे जीवन-तंत्र को नया रूप देना चाहता है, किन्तु हो कुछ नहीं पाता है वह विवश भाव से इन सभी स्थितियों को स्वीकार कर लेता है। यह टूटन, यही विवशता और ऊब व निराशा नयी कहानी में प्रतिरूपित हो रही है।

एक दूसरी स्थिति शिक्षित दम्पति भोग रहे हैं। दोनों का समान शिक्षित होना, नौकरी करना और कुछ व्यक्तिगत कारणों से इच्छाओं के विपरीत जीते चले जाना, तनाव में जीना, एक दूसरे को अपने अनुपयुक्त समझकर नये ढंग से जीने का प्रयत्न आदि कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं जिनमें कुछ घर टूटते हैं तो कुछ नये बनते दिखाई देते हैं। बच्चे पिता से छूट जाते हैं और पति-पत्नी एक दूसरे से। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की यह स्थिति इतनी दारुण और यातनामयी हो जाती है कि दोनों अलग-अलग रहकर भी जी नहीं पाते। सम्बन्धों के बीच आई यह दूरी फिर एक नया आकर्षण पैदा करती है। दोनों के बीच एक नया सेतु बनते-बनते रह जाता है। वे अलग-अलग स्थितियों में जीते हुए एक दुर्निवार पीड़ा व टूटन को झेलते हुए जीवन के अन्तिम रूप में समा जाते हैं। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की यह स्थिति और परिणति पूरी कचोट भरी वेदना के साथ नयी कहानियों में आकार पा रही है। जीवन की विसंगतियों से उपजा यह पीड़ा-बोध न केवल मोहन राकेश की कहानियों का विषय है, अपितु समूची कथा-पीढ़ी द्वारा चित्रित कहानी यात्रा का एक अनिवार्य सोपान है।

अतः जब हम नयी कहानी की प्रगति और प्रवृत्ति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं तब हमारे सामने उसमें स्पंदित विशेषताओं का रूप कुछ इस प्रकार स्पष्ट होता है—

(1) वर्तमान कहानी का यथार्थ बोध पूर्वापेक्षा अधिक तीव्र और तीक्ष्ण है। कारण कहानियों में यथार्थ चेतना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप उद्घाटित हो रहे हैं। अमरकांत और निर्मल वर्मा ही नहीं राकेश की कहानियों में भी यथार्थ बोध की सूक्ष्मता और परिवेश की जटिलता पूरी ईमानदारी से अभिव्यक्त हुई है। सूक्ष्मतम अनुभूतियों का पूरी सच्चाई से अभिव्यंजन और कलात्मक बारीकी से अंकन नयी कहानी की उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। वर्तमान कहानीकार अनुभूतियों को जो व्यापकत्व देता है वह संपूर्ण जीवन की सचाई है। कहानी की आधुनिकता निर्भर ही इस बात पर है कि उसमें समकालीन जीवन-सत्य की व्यंजना व्यापक धरातल पर हुई है। इसमें कहानीकार की निजता का भी पुट है। अतीत के संदर्भों की निरर्थकता पर आज का कहानीकार लज्जावनत है।

(2) वर्तमान कहानी अपने में ईमानदार बने रहने के कारण उस रेशमी डोर को काट चुकी है जिसकी स्निग्धता कभी उसके गले की शोभा थी और जिसकी सुषमा प्रेम की सतरंगी किरणों के जाल में आबद्ध होकर ऐसी लड़खड़ाती जा रही थी कि भावी मार्ग ही अवरुद्ध हो गया था। आज उसका स्थान बौद्धिक जागरुकता ने ले लिया है। यही कारण है कि यथार्थ की विशिष्ट अनुभूतियों की व्यापक अर्थ-वत्ता के कारण आत्यंतिक वैयक्तिकता और भावुकता स्वतः ही टूट गई है। 'निर्गुण' की 'एक शिल्पहीन कहानी' 'उषा प्रियंवदा' की 'वापसी' जैसी कहानियाँ इसका प्रमाण हैं। राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर की कहानियों से यह भी तथ्य पुष्ट हो जाता है।

(3) आज की कहानी में शक्ति-तत्व के रूप में तटस्थता की प्रवृत्ति का विकास हो रहा है। इस तटस्थता के कारण कहानियों में एक विशेष मार्मिकता व अर्थवत्ता आ गई है ·········आती जा रही है। सर्जक सर्जक होता है। वह भोक्ता बनकर आये तो उसकी सर्जना शक्तिहीन क्षीण हो जाती है। अतः आज के कहानीकार असम्पृक्ति बोध के कारण अपने अनुभवों व उनके संप्रेषण में अपेक्षाकृत पर्याप्त सफल दिखाई देते हैं। नयी कहानी में यह तटस्थता यह असम्पृक्ति काफी स्पष्ट है। यही कारण है कि राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, नरेश मेहता और अमरकांत आदि की कहानियों में आई तटस्थता ने कहानी के कथ्य को वजनी, प्रभावी और शिल्प को सहज प्रेषणीय बनाये रखने में सफलता प्राप्त की है। यह कोई कम उपलब्धि नहीं कि कहानीकार असंपृक्त रहकर भी अपने अनुभूत को पूरे दायित्व के साथ निभा रहा है।

(4) नयी कहानी जीवन की कोख से जन्मी है । उसके जन्म की पीड़ा, विकास की वंचना और परिणति की उपलब्धि सभी कुछ जीवन के पार्श्व में खड़ी है । वह जीवन से दूर नहीं जा पाई है । उसने जिन्दगी की तहों में प्रवेश किया है और वहाँ से जो उसे मिला है वही सब उसका कथ्य है । परिवर्तित परिस्थितियों में जीवन की जटिलता, परिवेश की त्रासदी और व्यक्ति की पीड़ा व सम्बन्धों को निभाते जाने की वंचना आदि सभी कहानी में बखूबी अभिव्यंजित हुई है । मनुष्य जिस रूप में हमारे सामने है उसी रूप में उसका महत्व है । यह प्रवृत्ति ही कहानी को वैशिष्ट्य पूर्ण और पाठक को उसके प्रति जिज्ञासात्मक आस्था से भर देती है । शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं : "मनुष्य और उसकी ज़िन्दगी के प्रति मुझे मोह है । जो अपने अस्तित्व को उबारने के लिये विविध क्षेत्रों में विरोधी शक्तियों से जूझ रहा है अंधविश्वास, उपेक्षा, विवशता, प्रताड़ना, अतृप्ति, शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार और क्षुद्र स्वार्थान्धता के नीचे पिसता हुआ भी जो अपने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हक के लिए लड़ता है हँसता है, रोता है. बार-बार गिर कर भी जो अपने लक्ष्य से मुँह नहीं मोड़ता है, वह मनुष्य तमाम शारीरिक कमजोरियों और मानसिक दुर्बलताओं के बावजूद महान है ।"[1]

(5) नयी हिन्दी कहानी व्यक्ति के पीड़ा-बोध की गाथा है । यह बोध आज आसमान से अचानक नहीं उतरा है । वह तो वातावरण और सामाजिक परिप्रेक्ष्य से जन्मा है । इसमें सामाजिक और व्यक्ति-पीड़ा का गहरा स्वर है । एक ओर सामाजिक सन्दर्भों का दबाव है, विविध जलते-उबलते प्रश्न हैं और दूसरी ओर व्यक्ति की अस्मिता खतरे के निशान को छू गई है । उसका मानस विविध प्रकार के दबावों, अभावों और दायित्वों को पूरा न कर पाने की विवशता के बोझ से बोझिल है । ऐसी स्थिति में यदि व्यक्ति पीड़ा से कराहता है, भीतर ही भीतर खटते जाने के दश से व्याकुल है और होने न होने, पाने और न पाने के बीच की अनुल्लंघनीय देहरी पर खड़ा है तो आश्चर्य क्या है ? संवेदनशील कहानीकार इससे क्षुब्ध है । फलतः कहानी में यदि उसकी व्यथा-कथा के सूत्र पिरोये हुए हैं तो उसे उसकी सर्जकीय ईमानदारी ही कहा जा सकता है ।

(6) व्यक्ति-पीड़ा से ही सम्बन्धित चारित्रिक विकृतियों का भी विकास हुआ है । परम्परा के शव की दुर्गन्ध से कंपित होकर, प्राचीन सामाजिक मूल्यों की अन्धता और अविश्वसनीयता से निराश होकर जब व्यक्ति कुछ नया पाने के लिये लालायित हुआ तो उसके सामने कतिपय ऐसे सन्दर्भ आ खड़े हुए हैं जिन्होंने उसे स्तब्ध और जड़ताग्रस्त तो बनाया ही; कहीं भीतर से ही छील भी दिया । वह विकृतियों का पुंज

---

1. कर्मनाशा की हार : विकल्प पृष्ठ 6

बन गया। नये कहानीकारों ने इन स्थितियों को पहचाना और अपनी कहानियों में स्थान दिया। अनेक ऐसी कहानियों का सृजन हुआ जिनके पुरुष टूटे हुए और विकार ग्रस्त हैं, स्त्रियाँ बिखरी हुई और भटकी हुई हैं। नर-नारी के व्यक्तित्व की यह विकृति राजेन्द्र यादव की एक कटी हुई कहानी, किनारे-किनारे, कमलेश्वर की तलाश, माँस का दरिया, निर्मल वर्मा की दहलीज, पराये शहर में, श्रीकान्त वर्मा की शव यात्रा, मन्नू भण्डारी की तीसरा आदमी, उषा प्रियंवदा की मछलियाँ नरेश मेहता की अनबीता व्यतीत व राकेश की जख्म' 'सेफ्टी पिन' व कई एक अकेले' कहानियों मे देखी जा सकती है।

(7) परिवेश के नये रूप के कारण आज मानवीय सम्बन्धों में भी परिवर्तन आ गया है। नर-नारी का सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धों में सबसे ऊपर है। हिन्दी कहानियों का आधा भाग इस सम्बन्ध को घेरे हुये हैं। दाम्पत्य जीवन की कटुता रिक्तता, अकेलापन, अपरिचय, ऊब और उदासी व एकरसता की स्थितियों के बिंब समकालीन कहानियों में भरे पड़े हैं। स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की दृष्टि से लिखी गई कहानियों में कमलेश्वर की राजा निरबंसिया, उषा प्रियंवदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' राजेन्द्र यादव की मेहमान, भविष्य के पास मँडराता अतीत, मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी', 'जानवर और जानवर'. रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', महीपसिंह की 'कील', ज्ञानरंजन की 'कलह' और नरेश मेहता की 'तथापि' आदि को उदाहृत किया जा सकता है। इस सूची को और भी लम्बा किया जा सकता है। इस वर्ग की कहानियों में व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों का अकेलापन व उसका सबके बीच अपने को 'मिसफिट' पाने की चिन्ता का वर्णन सूक्ष्म और सांकेतिक शैली में हुआ है।

(8) वर्तमान कहानियों में सामाजिक बोध का चित्रण गहराई से हुआ है। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दबाव के कारण व्यक्ति जिस खींचतान को सह रहा है उसका चित्रण परिवेश के साथ सूक्ष्मता से हुआ है। एक ओर परम्परा के मोह और दूसरी ओर नवीन मूल्यों के आकर्षण के बीच मनुष्य 'टैंशन' और 'टेरर' सह रहा है। उसके व्यक्तित्व में त्रासद स्थितियों से उत्पन्न ऊब और हताशा बढ़ी है: आधुनिक कहानी ने इस स्थिति को चित्रण ईमानी कलम की नोंक से किया है। महानगरीय जीवन की भयावहता और विसंगतियों के कारण मनुष्य जिस सीमा तक अकेला और अजनबी हो गया है. उसे वर्तमान कहानी में बखूबी देखा जा सकता है।

(9) ननी कहानी की उल्लेखनीय प्रवृत्ति के रूप में आंचलिकता की भावना को भी बट्टे खाते में नहीं डाला जा सकता है। नयी कहानी जहाँ महानगरीय परिवेश की कहानी है, वहीं वह शहरी भीड़-भाड़ से दूर गाँव की जिन्दगी के रेखाचित्र भी प्रस्तुत कर रही है। इन कहानियों में धरती का सौन्दर्य मुखरित हुआ है तथा

गाँव के लोगों की मनोवृत्तियों को पूरी ईमानदारी से उभारा गया है। ग्राम्य-प्रकृति के बीच जीवन का सुख-दुख ही इन कहानियों का विषय बना है। प्रकृति के चिरनवीन सौन्दर्य की छवियाँ इन कहानियों के कथानक में आई है। 'रेणु' तो इस प्रवृत्ति के सफल शिल्पी हैं। उनकी आंचलिक कहानियाँ बिहार की धरती की गन्ध और उससे फूटते संगीत की प्रतिध्वनि से सिक्त हैं। शिवप्रसादसिंह की 'भैंरों पाण्डे', 'शेखर जोशी' की गुसांई और मार्कण्डेय की 'हंसा जाइ अकेला' कहानियाँ इस प्रवृत्ति की सशक्त और सफल कहानियाँ हैं।

(10) नई कहानी में उपलब्ध यथार्थवाद त्रिमुखी है तभी तो वैयक्तिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक, चित्रण पर भी बल दिया जाता है। इस समाजवादी यथार्थवाद को अमरकान्त, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी और श्रीमती विजय चौहान आदि की कहानियों में देखा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद से प्रेरित होकर लिखी गई कहानियों में बाह्य जगत की सत्ता को अस्वीकृत करके आन्तरिक अभिव्यंजना को महत्व दिया गया है। इस प्रकार की कहानियों में मनुष्य के अन्तस् में खिची और रची–वसी भावनाओं को मूर्तित किया गया है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद से प्रभावित होकर नई कहानियों में आत्मोपलब्धि पर विशेष बल दिया गया है; किन्तु उसकी सृजन-प्रक्रिया में आत्मान्वेषण का मार्ग अत्यन्त सीमित, संकीर्ण और विषमताओं से पूर्ण हैं। नयी कहानीकार मनुष्य की पशुधर्मी और विकृत प्रवृत्तियों का विश्लेषक भी है और सही कारण के साथ उनका प्रस्तोता भी। यही कारण है कि मनुष्य का घृणास्पद चित्रण करने में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद अत्यन्त सहायक होता है। 'सावित्र नम्बर 2 (भारती), जख्म (मोहन राकेश) अनबीता व्यतीत (नरेश मेहता) तलाश (कमलेश्वर) नये-नये आने वाले (राजेन्द्र यादव) तीसरा आदमी (मन्नूभंडारी) मछलियाँ (उषा प्रियंवदा) और दहलीज (निर्मल वर्मा) आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं जिनमें मनोवैज्ञानिक यथार्थ का संस्पर्श है। कतिपय नई कहानियों में अति यथार्थवाद का स्वरूप भी मिलता है। इसे अंशतः राजेन्द्र यादव की 'एक कटी हुई कहानी तथा प्रतीक्षा में मार्कण्डेय की माही में और रमेश वक्षी की अधिकांश कहानियों में देखा जा सकता हे।

(11)नयी कहानीमें निरूपित यथार्थ काएक रूप वह भी है जो मानवीय नियति के भयावह और जटिल संदर्भों में अस्तित्व की बुनियादी समस्याओं से जुड़ा हुआ है। मुक्तिबोध की कहानियाँ इसी विशेषता से युक्त हैं। उनकी क्लाड ईथरली एक ऐसी ही कहानी है। यह कहानी एक साथ अनेक स्तरों पर अन्तरात्मा और अस्तित्व के संकट को निरूपित करती है। आधुनिक सभ्यता के संकट को अनेक विरोधाभासपूर्ण स्थितियों के साथ मुक्तिबोध की विपात्र कहानी में भी देखा जा सकता है।। नरेन्द्र-मोहन ने लिखा है कि जीवन के क्रूर यथार्थ के भीतर से उभरी हुई, अस्तित्व संकट के

जबरदस्त ग्राघात देने वाली ऐसी कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम लिखी गई हैं। समकालीन कहानीकारों का एक दल संबंधों के जालों को बुनता ग्रौर तानता रहा है ग्रौर इसीमें ग्रपना महत्व मानता रहा है। इन लेखकों की संबंधों की कहानियाँ प्रायः यथार्थ की ऊपरी सतहों से जुड़ी हुई होने के कारण यथार्थ की भयावहता का कोई गहरा ग्रहसास नहीं करा पाती। ऐसी कहानियों में सम्बन्धों ग्रौर स्थितियों के विवेचन ग्रौर ब्यौरे तो हैं पर सम्बन्धों ग्रौर स्थितियों में निहित ग्रस्तित्व की चुनौतियाँ प्रायः ग्रनुपस्थित हैं। रोमांटिक किस्म के सम्बन्धों की प्रतिकिया स्वरूप कहानियाँ लिखने वाले ज्ञानरंजन ग्रौर दूधनाथसिंह इसीलिए जल्दी चुक गये ग्रौर ग्रपनी ही रचना-रूढियों के शिकंजे में ग्रस्त होकर कडीशंड हो गये। किन्तु इसका यह ग्रर्थ लेना गलत है कि मानव-सम्बन्धों को निरूपति करने वाली कहानियाँ लिखीं ही नहीं गई हैं।

(12) नयी कहानी के ग्रन्तर्गत कुछ ऐसी विशेषताएँ भी मिलती हैं जो राजनैतिक सदर्भ ग्रौर समसामयिक यथार्थ का ग्रावश्यक ग्रंग है। राजनैतिक क्षितिज पर घटित होने वाली भयानक घटनाग्रों ग्रौर स्थितियों का सांकेतिक निरूपण भी नयी कहानी में हुग्रा है। दूधनाथसिंह की कहानियों में ऐसे राजनैतिक संदर्भ सरलीकृत होकर ग्राये हैं। देश व्यापी 'कैग्रास' का यथार्थ बिंब हिमांशुजोशी की 'जो घटित हुग्रा है' 'कहानी में मिलता है। गिरिराज किशोर की 'पेपरवेट, कहानी भी एक ऐसी कहानी है। जिसमें राजनैतिक बोध, ग्रौर मानवीय स्थितियों के साक्षात्कार को देखा जा सकता है। गिरिराज किशोर की भाषा का मुहावरा ग्रमूर्त या काव्यात्मक या तनावपूर्ण न होकर सीधा, ठेठ ग्रौर सर्जनात्मक है। वस्तुतः समसामयिक यथार्थ एक जटिल, संक्रमित ग्रौर संश्लिष्ट प्रक्रिया है जिसका कोई ग्राखिरी रूप नहीं है। यह यथार्थ न तो यथार्थवादी किस्म का है ग्रौर न मनोवैज्ञानिक ढंग का।

(13) यौन सम्बन्धों की जटिलता ग्रौर उनके बदलाव की स्थिति भी कुछ कहानियों में ग्रभिव्यक्त हुई है। कृष्ण बलदेव वेद की कहानी 'त्रिकोण' महीपसिंह की 'गंध' ग्रौर सांत्वना निगम की कहानी 'बीतते हुए' में यौन संबंधों की जटिलता को ग्राकार प्रदान किया गया है। त्रिकोण में पति-पत्नी ग्रौर प्रेमी का नया त्रिकोण है। प्रत्येक मनःस्थिति ग्रलग-ग्रलग ग्रौर बदली हुई है। महीपसिंह की 'गंध' कहानी में यौन ग्रनुभवों का रचनात्मक ग्रौर संश्लिष्ट रूप देखने को मिलता है। वस्तुतः यह कहानी एक ऐसी कहानी है जो यौन विषयक विस्फोटक स्थितियों ग्रौर सम्बन्धों से उत्पन्न तनाव ग्रौर हताशा को व्यक्त करती है। बीतते हुए कहानी में सम्बन्धों की पीड़ा का रोमानी 'हेंगग्रोवर नहीं है। इसमें लगावहीन संबंध या लवलैस सैक्स ग्रथवा भावुकताविहीन होकर यौन संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया उदघाटित हुई है। कृष्ण बलदेव वेद की कहानियों में जो विसंगति ग्रौर विडम्बना मिलती है, वह यथार्थ का एक परिदृश्य प्रस्तुत करती है 'सब कुछ नहीं' शीर्षक कहानी में यौन

स्थितियाँ निरूपित हुई हैं। इसमें एक ओर पति से अलग हुई औरत है तो दूसरी ओर पत्नी से अलग होकर जीने वाला पुरुष है। दोनों के बच्चे भी हैं। दोनों उन स्थितियों को अच्छी तरह जानते हैं जिनसे उन्हें विकल्प या रास्ता नहीं मिल पाता है। इसीलिए औरत कहती है–'मैं लौटना नहीं चाहती, पर फिर भी लौटूँगी क्योंकि और कोई चारा नहीं है। वस्तुतः कुछ नयी कहानियों में यौन सम्बन्धों का नहीं, यौन संबंधों के दौरान पैदा हो जाने वाली उस मनोभावना को आकार मिला है जो आदमी को अकेला, आत्मपीड़ित और अजनबी बना देती है।

(14) नयी कहानी की एक नयी दिशा वैयक्तिक चेतना से युक्त है। यह चेतना व्यष्टिवाद से प्रभावित है। इस प्रकार की कहानियाँ लिखने वालों में अश्क राजेन्द्र यादव, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोवती, मन्नू भण्डारी, रमेश बक्षी, प्रयाग शुक्ल और श्रीकांत वर्मा के नाम प्रमुख हैं। अश्क की वैयक्तिक चेतना को पलंग शीर्षक की कहानियों में देखा जा सकता है तो निर्मल वर्मा की परिन्दे' कहानी में इसी व्यष्टिवाद की स्थिति मुखरित हुई है। राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' और अभिमन्यु की आत्महत्या' कहानियों में भी वैयक्तिक चेतना को देखा जा सकता है। ध्यान से देखें तो स्पष्ट होता है कि अश्क के व्यक्तिचिन्तन में सामाजिकता का पुट अधिक है। निर्मल वर्मा में सूक्ष्मता और तरलता है तो राजेन्द्र यादव में बौद्धिकता अधिक है। निर्मल वर्मा की अधिकतर कहानियों की वस्तु रोमांटिक प्रेम के तत्वों से निर्मित हुई हैं। इसी से उनमें अवसाद की गहरी छाया है। अनुभूति की विफलता का अंश का भी अपेक्षाकृत अधिक है। मन्नू भण्डारी की कहानी-कला का मूल स्वर भी वैयक्तिक चेतना से प्रेरित है। यही कारण है कि इनकी कहानियों में या तो व्यक्ति की कुंठाओं का चित्रण हुआ है या फिर रोमांटिक प्रेम का व्यंग्यात्मक निरूपण। 'गति का चुम्बन' और 'एक कमजोर लड़की' ऐसी ही कहानियाँ हैं।

(15) नयी कहानियों में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। अनेक कहानियाँ सम्बन्धों के बनने की अपेक्षा टूटे हुए सम्बन्धों की कहानियाँ हैं। सम्बन्धों के टूटने पर टूटे हुए पुरुष और बिखरी हुई नारी का चित्रण नयी कहानी की अनुपेक्षणीय विशेषता माना जा सकता है। पिछली पीढ़ी के प्रति अविश्वास, घृणा, अपरिचय, अनिश्चय और अजनबीपन की भावना नयी कहानियों में देखी जा सकती है। वस्तुतः नारी एक पहेली है। नयी कहानी में नारी और पुरुष के बदलते हुए संबंधों को आकार प्राप्त हुआ है। युद्ध, स्वतन्त्रता और बाद के तेजी से बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण की परिस्थितियों, नारी के आत्मनिर्भर, आत्म-निर्णायक होने की नयी स्थितियों से उत्पन्न मानसिक स्थितियों का चित्रण नयी कहानियों में बखूबी देखा जा सकता है। नये कहानीकारों ने खुलकर स्वीकार किया है कि नारी और पुरुष का सम्बन्ध न तो हवाई प्रेरणा का शक्ति स्रोत है और न ही किशोर

जिज्ञासा का। जिन्दगी में सभी कुछ मधुर-मधुर नहीं होता है। कुछ मजबूरियाँ भी होती हैं, कुछ दुख भी होते हैं, विद्रोह भी होता है और जीत और हार भी होती है। अतः इन सभी स्थितियों को नये कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की हैं जिनमें स्त्री-पुरुष के आपसी सम्बन्धों के दबे-घुटे स्वर भी मुखरित हुए है। इस प्रकार की कहानियों में मोहन राकेश की 'फौलाद का आकाश', निर्मल वर्मा की 'अँधेरे में' तथा 'लवर्स' और मन्नू भण्डारी की 'चश्में', 'नशा', और 'तीसरा आदमी' कहानियाँ तो महत्वपूर्ण हैं ही, रमेश की 'शबरी', दूधनाथ सिंह की 'बिस्तर', कमलेश्वर की 'नीली झील' और राजेन्द्र यादव की 'छोटे छोटे ताजमहल', और 'टूटना' जैसी कहानियों को लिया जा सकता है। अनेक कहानियों में टूटे हुए पुरुष का चित्रण भी किया गया है। निर्मल वर्मा की 'सितम्बर की एक शाम', रामकुमार की 'सिमेटरी', और 'सेलर', शिवप्रसाद सिंह की 'अंधकूप', राजेन्द्र यादव की 'खुशबू', मोहन राकेश की 'मलवे का मालिक', अमरकांत की 'जिन्दगी और जौंक', दूधनाथसिंह की 'आइसबर्ग' और कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएँ' प्रमुख हैं। टूटते हुए पुरुष की तरह ही टूटती और बिखरती नारियों को लेकर भी अनेक नयी कहानियाँ लिखी हैं। कृष्णा सोवती की 'बादलों के घेरे', धर्मवीर भारती की 'गुल की बन्नो', मन्नू भंडारी की 'क्षय', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', भीष्म सहानी की 'सिर का सदका', राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', मोहन राकेश की मिसपाल' और शानी की 'एक सन्धि' कहानियों को लिया जा सकता है।

(16) नयी कहानी की एक प्रवृत्ति आदर्शवादी भावनाओं से भी प्रेरित है। इन कहानियों में कटु यथार्थ की उपेक्षा की गई है। आदर्शवादी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर कहानी लिखने वाले ये कभी स्वीकार नहीं करते कि आज का मनुष्य और उसका जीवन टूटा हुआ है। उसके मूल्य और मर्यादायें बिखरी हुई हैं। ऐसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, मार्कण्डेय और रेणु ने कुछ कहानियाँ लिखी हैं। ध्यान रखने की बात यह है कि नयी कहानी में जो आदर्शवादी प्रवृत्ति मिलती है, वह प्रेमचन्द युगीन आदर्शवाद से भिन्न है। इसमें उतनी निर्जीवता और यांत्रिक प्रवृति नहीं मिलती है जितनी उस दौर की कहानियों में मिलती है। यही कारण है कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ नयी कहानी में निरूपित आदर्शवाद, यथार्थवाद में परिवर्तित होता गया है।

(17) नयी कहानी की एक विशेष प्रवृत्ति अस्तित्ववादी चेतना से भी प्रभावित है। अस्तित्ववाद एक ऐसा दर्शन है जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व के प्रति सतर्क रहता हुआ जीवन की क्षण-भंगुरता को पहचानता भी है और अनेक अनिश्चित स्थितियों में अपने को पराधीन भी महसूस करता है। इस तरह स्वातन्त्र्य की खोज, अस्तित्व के प्रति सतर्कता, अपने आपको बनाये रखने की जिद, शून्यता का अनुभव

और मृत्यु का भय भी अस्तित्ववादी चेतना का महत्वपूर्ण आयाम है। इस दर्शन से प्रभावित होकर लिखी गई कहानियों में मोहनराकेश की 'कई एक अकेले', कमलेश्वर की 'तलाश', नरेश मेहता की अनबीता 'व्यतीत', निर्मल वर्मा की 'पराये शहर में' रवीन्द्र कालिया की 'क ख ग', जगदीश चतुर्वेदी की 'त्रास' और ज्ञानरंजन की 'शेष होते हुए' कहानियों को लिया जा सकता है।

(18) नगर-बोध के अंकन को भी नयी कहानी की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। आज की कहानी नगर-जीवन और नगरीय संस्कृति के तत्वों से अनिवार्यतः जुड़ी हुई है। यही कारण है कि इस युग की अर्थात् समकालीन परिवेश में लिखी जा रही कहानी का संदर्भ ही नहीं रचना-संसार भी शहरी है। शहरी जीवन के दुहरे-तिहरे और चौहरे दबावों से आक्रान्त होकर वर्तमान मनुष्य अजीब अजूबा बनकर रह गया है। राजनैतिक परिदृश्य का दबाव, यांत्रिक जीवन की विशेषताओं से उत्पन्न दवाव और यौन-स्वच्छंदता की विस्फोटक स्थिति के दबाव ने मिलकर नगरीय व्यक्ति को न केवल बाहर से अपितु, भीतर से भी तोड़ डाला है। उसका जीवन अस्त-व्यस्त और छिन्न-भिन्न सा हो गया है। फलतः निरर्थकता की अनुभूति से घिरकर वह महसूस कर रहा है कि प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, मातृत्व बोध और श्रद्धाबोध आदि के युगों पुराने संस्कार अपने स्थान को छोड़ रहे हैं। अब तक के स्थापित मूल्य खण्डित हो रहे हैं और मनुष्य के सामने विशृंखलित स्थितियों की भयावहता ने आकर उसे प्रश्नचिह्न के जंगल में भटका दिया है जहाँ उसे मिला है अकेलापन, अजनबीपन और त्रासद परिवेश। यही नगरबोध की भूमिका है—वह धरातल है जहाँ खड़े होकर वर्तमान युग का नया कहानीकार अपने अनुभूत नगरबोध को अभिव्यक्ति प्रदान कर रहा है। यों तो इस नगरबोध की भयावहता, प्रश्निलता, अजनबीयत, अकेली मनस्थिति और त्रासद स्थितियों को मूर्तित करने वाले कहानी संग्रहों की कमी नहीं है किन्तु स्पष्टीकरण के लिए 'राजेन्द्र यादव' के 'अपने पार', 'सिद्धेश' के 'अर्थहीन वह मैं' और 'ज्ञानरंजन' के 'फैंस के इधर और उधर' संग्रहों को लिया जा सकता है। इन संग्रहों की कहानियों में महानगरवासी व्यक्ति की कुंठित मनोदशा और सम्बन्धों की निरर्थकता को नगरबोध की भूमिका पर प्रस्तुत किया गया है। 'सिद्धेश' की 'चेहरे', 'किनारा' और 'समुद्रगाथा' में इस स्थिति को स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। 'किनारा' कहानी में चित्रित औरत की मनस्थिति का चित्रण है। वह अर्थहीनता को भोग रही है—किनारे लग गई है। 'किनारा' शब्द ही खालीपन का अर्थ लेकर आया है। 'चेहरे' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो चुक गया है—बीत गया है या रीत गया है। रीतने के कारण ही वह घर और बाहर सभी जगह एक अपरिचित, आत्मनिर्वासित और अजनबी व्यक्ति की जिन्दगी जी रहा है। 'समुद्रगाथा' में भी यही स्थिति है। इस प्रकार इन तीनों

कहानियों में नगरीय जीवन में व्याप्त अर्थहीनता या व्यर्थताबोध को निरूपित किया गया है, किन्तु निरूपण की शैली और भाषा में वह ताकत नहीं आ पाई है जिससे जीवन व्यापी अर्थहीनता और व्यर्थता का बिम्ब पाठक के मानस की गहराइयों में तैरने लगे। संभवतः इसीलिए डॉ० नरेन्द्रमोहन को यह लिखना पड़ा है कि 'भाषागत असमर्थता की वजह से इस संग्रह की कोई भी कहानी स्थितियों और सम्बन्धों की अर्थहीनता और तज्जनित बहुरूपियेपन, ढोंग, सहानुभूतिशून्यता का कोई गहरा बोध नहीं जगा पाती है। इसका एक कारण यह भी है कि लेखक महानगर की व्यर्थता की सूचक स्थितियों और अर्थहीन होते जा रहे सम्बन्धों से 'आब्सेस्ड' है। इस 'आब्शेसन' के कारण ही इन कहानियों में यथास्थितिशीलता है दरअसल व्यर्थताबोध को अभिव्यक्त करने के लिए जैसी तटस्थ और बेबाक रचना दृष्टि चाहिए वैसी इस संग्रह की कहानियों में नहीं है।'[1]

हाँ; 'ज्ञानरंजन' के पास ऐसी रचना-क्षमता अवश्य है जो वर्तमान स्थितियों और सम्बन्धों का यथार्थ और प्रामाणिक अंकन कर सकी है। 'शेष होते हुए' कहानी इस दृष्टि से एक सशक्त रचना है। इसमें शेष होते हुए सम्बन्धों का प्रामाणिक वृत्त निरूपित हुआ है। परिवार के सभी सदस्य आत्मसीमित हैं, एक दूसरे से कटे हुए हैं और एक दूसरे को दोषी ठहराते हुए कभी खीझते हैं, कभी क्रुद्ध होते हैं और कभी रोब जमाते हैं। 'पिता' शीर्षक से लिखी गई 'ज्ञानरंजन' की इस कहानी में भी यही स्थिति है। इसी क्रम में 'खलनायिका' और 'बारूद के फूल' व 'फैन्स के इधर और उधर' कहानियों को भी इसी व्यर्थताबोध की भूमिका पर पढ़ा जा सकता है। 'राजेन्द्र यादव' की स्थिति इन दोनों कहानीकारों से भिन्न है। 'मेहमान', 'रिमाण्डर', 'चुनाव', 'आत्मसाक्षात्कार' और 'शहर की यह रात' शीर्षक कहानियों में एक ओर तो नगर-बोध के बिम्ब उभरे हैं और दूसरी ओर बदलते हुए सम्बन्धों की स्थिति अंकित हुई है। परिवर्तित मानवीय सम्बन्धों की अभिव्यंजना 'यादव' ने मनोविज्ञान के सहारे की है। उदाहरण के लिए 'अनुपस्थित सम्बोधन' कहानी को लिया जा सकता है। इसमें एक युवा लड़की 'सीमा' की मनस्थितियों का मनोवैज्ञानिक शैली में अंकन किया गया है। 'सीमा' की मनोग्रंथि यह है कि वह माँ जैसी है, उसी का प्रतिरूप है। यह ग्रंथि उसके दिमाग में 'कील' की तरह ठुकी हुई है। लेखक ने 'सीमा' की इस ग्रंथि का अंकन-विश्लेषण प्रभावी शिल्प में किया है। 'भविष्य के पास मँडराता अतीत' कहानी में पति-पत्नी के सम्बन्धों में आये तनाव व विच्छेद की स्थिति का अंकन है। ये पति पत्नी दाम्पत्य जीवन की व्यर्थता को महसूस तो करते हैं, किन्तु बच्ची के प्रति असीमित स्नेह के कारण टूटते सम्बन्धों पर यथार्थ करुणाशीलता की चिप्पी

---

1 डॉ० नरेन्द्रमोहन : आधुनिकता और समकालीन रचना–संदर्भ, पृष्ठ 121

भी बड़ी आकर्षक बन पड़ी है। ये सभी नगरबोध के ही आयाम हैं जो नयी कहानी का कथ्य बनकर आये हैं।

(19) षष्ठदशकोत्तर नयी कहानी में जो नया मोड़ आया है उसमें नयी संवेदना और नये वस्तु-शिल्प को देखा जा सकता है । इस काल की कहानियों में मानव नियति के जटिलतम सूत्र परिभाषित हुए हैं, निर्मम व क्रूर वास्तविकताएँ व्यक्त हुई हैं और मानवीय रिश्तों की परिवर्तित स्थितियों का रेखांकन हुआ है। जीवन के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा—इन कहानियों में मिलती है । सन् साठ के बाद जो पीढ़ी उभर कर सामने आई है, उसमें प्राप्त किये हुए की स्थापना का प्रयत्न दिखाई देता है। यह पीढ़ी जीवन की वास्तविकताओं से सीधे टकरा रही है। फलतः इसकी कहानियों में विद्रोह, निर्मम वास्तविकताओं का अंकन, आक्रोश, मोहभंग व दिशाहीनता के साथ-साथ एक क़िस्म की स्थितिपरक साझेदारी मिलती है। कतिपय कहानीकारों ने अकहानी आन्दोलन—'एण्टी स्टोरी मूवमेन्ट' के अगुआ बनकर वर्गीकरण, कथ्य और शिल्प के अब तक के प्रचलित प्रतिमानों को एक साथ ही नकार दिया है। मेरी धारणा है कि समकालीन कहानी को नाम कोई भी दे दिया जाये, उसमें आधुनिक जीवन की विसंगतियों, विषमताओं और विडम्बनाओं की अभिव्यंजना हुई है। सैक्स-प्रताड़िता नारियों और पुरुषों का चित्रण भी आज की कहानियों का महत्वपूर्ण सदर्भ बन गया है।

(20) नयी कहानी न केवल भाव-संचेतना के धरातल पर नई है, अपितु उसमें प्रयोगों की सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता और बिम्ब-विधान की नवीनता भी मिलती है। अनुभूति सहज हो तो अभिव्यक्ति भी असहज न हो, यह तथ्य नये कहानीकारों के गले नहीं उतरा है। इसी से राजेन्द्र यादव जैसे समर्थ कहानीकारों ने भी कतिपय ऐसी कहानियाँ लिखी हैं जिनमें आनुभूतिक सहजता का अभाव और कला-चमत्कार दिखाई देता है । बिम्ब और प्रतीक नयी कहानी के शिल्प के नये रूप के प्रमाण हैं। प्रतीकान्वेषण व बिम्बों की उद्‌भाविका क्षमता के कारण आज की कहानी की भाषा सरल होकर भी व्यंजक है, सीधी-सपाट होकर भी गहन अर्थ-संकेतों से युक्त है। यादव की 'छोटे-छोटे ताजमहल' खासी प्रतीकात्मक है। 'मार्कण्डेय' और 'मोहन राकेश' की कहानियों में भी प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग विविधता किंतु सफलता के साथ किया गया है। मार्कण्डेय की कहानी में 'तारों का गुच्छा' अपूर्ण इच्छाओं का प्रतीक है। गदराये हुए आसमान में तारों के एक गुच्छे को तोड़ने की कल्पना की गई है। 'राजेन्द्र यादव' की कहानी 'प्रश्नवाचक पेड़' में जीवन और प्रकृति के गहरे असतुलन के प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। प्रतीकों के साथ ही बिम्बों के प्रयोग की दृष्टि से निर्मलवर्मा, अमरकांत, उषा प्रियंवदा, 'मोहन राकेश' और 'कमलेश्वर' की कहानियों को विशिष्टता प्रदान की जा सकती है। 'निर्मलवर्मा'

की 'लवर्स' कहानी का यह अंश देखिए, "उस शाम पैवेलियन के पीछे 'टेरेस' पर बैठे थे। मेरे रूमाल में उसकी चप्पलें बँधी थी और उसके पाँव नंगे थे। घास पर चलने से वे गीले हो गये थे। और उन पर बजरी के दो चार लाल दाने चिपके रह गये थे। अब वह शाम बहुत दूर लगती है। उस शाम एक धुँधली सी आकांक्षा आ गई थी। मैं डर गया था। लगता है आज वह डर हम दोनों को है। गेंद की तरह कभी उसके पास जाता है, कभी मेरे पास"। बजरी के दो चार दाने, धुंधली सी आकांक्षा और गेंद की तरह के डर ये बिम्ब एक मानसिक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करते हैं। बिम्ब प्रयोग की दृष्टि से 'राकेश' की कहानियाँ भी अप्रतिम हैं।

(21) भाषागत प्रेषणीयता और भावगत यथार्थता नयी कहानी के शिल्प की उल्लेखनीय प्रवृत्ति मानी जा सकती है। नयी कहानी की भाषा में रोमानी संस्कार भी है और सरलता व अकृत्रिमता भी है। नये कहानीकारों ने प्रचलित शब्दों और यथार्थ के बीच के अंतराल को पहचाना है। सन् 60 के बाद के कहानीकारों की भाषा चित्रात्मक व भावात्मक के स्थान पर 'सजेस्टिव' और 'इन्टेन्स' हो गई है। भाषा का व्यावहारिक मिजाज मन को छूता है। यथार्थ परिवेश से जोड़ता चलता है। अवध नारायणसिंह की 'चेहरे' कहानी की यह वाक्यावली देखिए: "मुझे लगा कि कोई मेरे भीतर से चला गया है। वह इतनी देर तक अपनी कहानी सुनाता रहा !… सोचता हूँ कि क्या आवश्यकता है परिचय की ? परिचय और सम्बन्ध सुख कम, दुःख अधिक देते हैं। क्या हम अपने परिचितों को झेल पाते हैं ? एक ललक लेकर मिलते हैं और एक अजीब घृणा लेकर अलग हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में अकेलापन कौंचता है, ठीक सुई की नोंक की तरह, बराबर चुभता रहता है।" असल में नयी कहानी की भाषा में एक अपनापन है; एक खुलासा व्यवहार है; हर चीज को, हर संदर्भ को बेलाग व्यक्त करने की साहसिकता है। इसी से वह प्रेषणीयता, व्यंजकता और कम कहकर अधिक सोचने-विचारने की भूमिका तैयार कर देती है।

(22) नयी कहानी के शिल्प में एक प्रवृत्ति यह भी निहित हैं कि कथानक का ह्रास हुआ है। ठोस कथानक के बजाय एक संदर्भ भर को कहने की ललक प्रत्येक कहानी और कहानीकार में मिलती है। कथानक का यह ह्रास अनेक रूपों में देखने को मिलता है "एक तो उस रूप में जिसमें मात्र व्यंजना के माध्यम से या सांकेतिकता से पूरी कहानी कह दी जाती है। ऐसी कहानियाँ बौद्धिक हो गई हैं और उनमें प्रतीक योजना या व्यंजना का आग्रह बहुत ही दुरुह होगया है।… कथानक के ह्रास का दूसरा रूप कथा-सूत्रों की विशृंखलता के रूप में लक्षित होता है। इसमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कहानीकार जिन कथा-सूत्रों को आवश्यक समझते हुए ग्रहण करता है, उन्हें भी वह एक सूत्र में सुगुम्फित करने की आवश्यकता नहीं समझता, बल्कि उन्हीं के माध्यम से वह अपने पात्रों के मानस का विश्लेषण करते हुए

उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के उद्देश्य से उन पर 'रिफ्लेक्शन' डालता है।[1] धर्मवीर भारती की 'बंद गली का आखिरी मकान', 'मोहन राकेश' की 'कई एक अकेले' 'कमलेश्वर' की 'तलाश' 'मन्नू भण्डारी' की 'तीसरा आदमी' 'राजेन्द्र यादव' की 'किनारे से किनारे तक', 'ज्ञानरंजन' की 'खलनायिका' 'नरेशमेहता की 'अनबीता-व्यतीप्त' और रवीन्द्र कालिया की 'त्रास' आदि कहानियाँ इसी उपरिसंकेतित प्रवृत्ति को व्यक्त करती हैं।

(23) नयी कहानी में प्राप्त शैलियाँ भी नवीन हैं। इतिहास शैली, डायरी शैली, पत्रशैली, संलापशैली, आत्मचरित शैली, पूर्व दीप्तिशैली और प्रतीकशैली आदि नयी कहानी की प्रमुख शैलियाँ हैं। यों तो ये सभी शैलियाँ नयी कहानी में मिलती हैं, किन्तु आत्मचरित शैली का प्रयोग सर्वाधिक मात्रा में मिलता है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर समकालीन हिन्दी कहानी में यथार्थ का गहन अंकन, अनुभूति के सूक्ष्मस्तरों का उद्घाटन बौद्धिकता, असंपृक्ति, प्रतीकान्वेषीवृत्ति, बिम्बविधान और सांकेतिकता आदि विशेषताओं का विशेष महत्व है। 'मोहन राकेश' की कहानियाँ भी इसी पृष्ठिका पर लिखी गई हैं। उनकी कहानियों में जीवन के सूक्ष्मसंदर्भों का यथार्थवादी अंकन है, भोगे हुए यथार्थ का प्रतिबिम्ब है और इन सब के ऊपर नर-नारी के सम्बन्धों की नयी व्याख्या है। मानव की विवशता, अब अकेलापन और जीवन की यंत्रणाएं व त्रासदियाँ राकेश की कहानियों में भरपूर हैं। नयी कहानी की इन सभी विशेषताओं के मध्य 'मोहन राकेश' का कहानी-साहित्य किस सीमा पर है? कहाँ खड़ा है? इन सभी बातों का विवेचन आगामी अध्याय में किया जा रहा है।

———

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 167

4

मोहन राकेश: कहानी लेखन का प्रारम्भ और प्रतिपत्तियाँ

नयी कहानी की शुरुआत किसी एक व्यक्ति से नही हुई है। उसकी एक पीढ़ी है और उस पीढ़ी की प्रगतिशील दृष्टि है। इस दृष्टि के वाहकों में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, अमरकांत, निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी और मार्कण्डेय आदि का नाम शीर्ष पर स्थित है। इस पीढ़ी के कहानीकारों ने जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं और त्रासदियों से सीधा साक्षात्कार करके अपनी प्रामाणिक अनुभूतियों को प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि ये सभी नये कहानीकार परिवेश से प्रतिबद्ध हैं। इनका मानस सजग है; आँखें खुली हैं और प्रज्ञा और संवेदना के स्तर सजग हैं। तभी तो ये मानवीय स्थितियों और सम्बन्धों को यथार्थ की कलम से उकेर सके हैं।

'उपेन्द्रनाथ अश्क' की दृष्टि में ये ऐसे कहानीकार हैं जो पुरानों को नये तक पहुँचाने में समर्थ हैं।[1] दूधनाथसिंह की दृष्टि में इनमें 'राकेश' का नाम सर्वाधिक उपयुक्त है क्योंकि 'उसकी रोटी' की पुरातनता से 'मिस पाल' और 'परमात्मा का कुत्ता' की आधुनिकतम हास्यास्पदता और व्यंग्य का चित्रण राकेश को एक मौलिक और 'जेनुइन' लेखक के रूप में प्रस्तुत करता है।[2] नयी कहानी के विशिष्ट हस्ताक्षरों में राकेश का नाम और स्थान निर्विवाद है। जो कहानियाँ संवेदना और शिल्प के धरातल पर मौलिक, नवीन और अपरिहार्य हैं, उनमें राकेश की कहानियों की गणना की जा सकती है। आलोचकों और पाठकों में राकेश की कहानियाँ बहुचर्चित, बहुपठित और लोकप्रिय रही हैं। यथार्थ को पकड़ने की दृष्टि, जीवन का गहरा बोध और अनुभव का अपनापन व अभिव्यक्ति की प्रसन्नता राकेश की कहानियों के ऐसे गुण हैं जो सभी कहानीकारों में नहीं मिलते हैं। सैद्धांतिक आग्रह से परे अनुभव की सच्चाई और उसको संप्रेषित करने वाला शिल्प राकेश की सभी कहानियों में मिलता है। वर्तमान भारतीय जीवन जिन संकटों, अन्तर्विरोधों व असंगतियों से गुजरा है उसका

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क : कहानी के इर्द-गिर्द, पृष्ठ 65
2. दूधनाथसिंह : कहानी के इर्द-गिर्द में प्रकाशित अश्क के इण्टरव्यू से उद्धृत पृष्ठ 65

सटीक, वास्तविक और ईमानियत भरा अभिव्यंजन राकेश की कहानियों में सहज सुलभ है। स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित भारतीय जीवन के सही परिदृश्य और व्यक्ति की आन्तरिकता के विभिन्न स्तरों का उद्‌घाटन करती हुई राकेश की कहानियाँ जीवन की समग्रता को प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ हैं। क्यों न हों ? उनका समग्र लेखन प्रारम्भ से ही व्यक्ति के परिपक्व-अपरिपक्व मानस की अनुभूतियों का प्रतिफलन है।

कहानी लेखन : प्रारम्भ और विकास :

राकेश के कहानी लेखन की यात्रा का प्रारम्भ सन् 1944 से माना जा सकता है। उन्होंने पहले-पहल 19 वर्ष की आयु में ही 'नन्हीं' नामक कहानी लिखी थी जो अप्रकाशित ही रह गई। 'सारिका' मार्च 73 में उसे पहली बार राकेश के मरणोपरांत इस टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया गया है : "यह राकेश की शायद प्रथम कहानी हैं। उन्हीं की हस्तलिपि में प्राप्त स्कूल की परीक्षाओं की लम्बी कापी के कागजों पर लिखी हुई यह 7 मई 1944 में लाहौर में लिखी गई थी। इसकी पाण्डुलिपि पर तरह-तरह से 'राकेश' लिखकर देखा गया है। सम्भवत: यह प्रक्रिया उपनाम चुनने की रही हैं जो बाद में उनका नाम ही हो गया है।"[1] इसके बाद 1946 में उनकी एक कहानी 'भिक्षु' के नाम से प्रकाशित हुई। यही वह कहानी है जो राकेश की डायरी के अनुसार उनकी प्रथम प्रकाशित कहानी मानी जा सकती है।[2] इसके बाद राकेश की कहानियों का प्रकाशन पहले धीमी गति से हुआ फिर तीव्रता के साथ। कमलेश्वर ने सात ऐसी कहानियाँ भी प्रकाशित की हैं जो राकेश की डायरी से मिली हैं। इनमें दो सन् 1951 की रचनायें हैं जिनके नाम क्रमश; "बनिया बनाम इश्क" और "गुमशुदा" हैं। शेष कहानियों में अर्द्ध विराम, पंप, लड़ाई और 'लेकिन इस तरह' आदि का नाम लिया जा सकता है। राकेश ने इनमें से कुछ को तो स्वयं ही संशोधित और परिमार्जित कर दिया था, किन्तु कुछ को थोड़े बहुत परिवर्तन, रूपांतर और सुधार के बाद कमलेश्वर ने उनकी डायरियों से खोजकर सारिका के 'मोहन राकेश 'स्मृति अङ्क' में प्रकाशित किया है।

राकेश की कहानियाँ कहानी क्षेत्र में आये नवीन मोड़ का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें जीवन के माध्यम से कहानी और कहानी के माध्यम से जीवन की खोज की गई है। आज की स्थितियाँ किस प्रकार और किन-किन स्तरों पर कहानीकार को छूती हैं, इसका आकलन वस्तुतः समाज के नैतिक और आध्यात्मिक रूप से

1. सारिका मार्च, 1973, पृष्ठ 17.
2. वही, पृष्ठ 62.

परिचय प्राप्त कराता है। राकेश की कहानियाँ समाज के परिप्रेक्ष्य में उनकी जीवन संचेतना को व्यक्त करती हैं। उनकी अधिकांश कहानी आजादी के बाद के वर्षों में लिखी गई कहानियाँ हैं। तब से अपने अन्तिम रूप तक में राकेश निरंतर एक कथा-यात्रा से गुजरे हैं। इसमें अनेक स्तरों व पड़ावों पर विरमते, प्रतिक्रिया ग्रहण करते यथार्थ की आँख से जीवन की अनेक स्थितियों को देखते हुए राकेश अपने अन्तिम समय में कहानी- कला के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गये थे। राकेश की कहानियों में मानव सम्बन्धों की व्याख्या है, नये जीवन-मूल्यों के ग्रहण की ललक है और यथार्थ का तीखा और सूक्ष्म-बोध है। इसके साथ ही राकेश के कतिपय कहानी प्रयोग भी हैं जो उनकी नित नवीनता और मौलिक दृष्टि को सूचित करते हैं। कहानी–सर्जकों में उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, दूधनाथसिंह, कमलेश्वर और आलोचकों में डा० लक्ष्मणदत्त गौतम और डा० श्मामसुन्दर घोष ने उन्हें एक सुलझा हुआ, नवीन चेतना को वाहक कहानीकार स्वीकार किया है। राकेश वस्तुतः एक यथार्थ द्रष्टा, प्रयोगशील और नयी संवेदना–शिल्प के कहानीकार थे। उनकी कहानियों में जीवन के विविध स्तरों का सच्चा स्वरूप रूपायित है। लेखन के प्रारम्भिक वर्षों में राकेश ने जो कहानियाँ लिखी हैं, उनमें उनके तत्कालीन परिवेश व प्रतिक्रियावादी मानस की अनुभूतियों का प्रतिफलन है। कट्टर सनातनी परिवार, अच्छी औरं ऊँची शिक्षा, विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न परिवेश की टूटन-उखड़न तथा उनकी मनमौजी व यायावरी वृत्ति के वृत्त में आते गये संघर्ष-अंतःसंघर्ष राकेश की कहानियों में कभी सीधे-सादे, कभी करुण व मार्मिक और कभी तीखे प्रतिक्रियाबोध के साथ अभिव्यक्त हुए हैं।

कहानी विषयक मान्यताएँ और प्रतिपत्तियाँ :

राकेश ने आधुनिक कहानी को मोड़ दिया है। वे जीवनबोध के कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में जो जीवन अभिव्यक्त हुआ है वह हमारी आस-पास की स्थितियों से सम्बन्ध रखता है। एक सर्जक के रूप में राकेश जितने सफल हैं, विश्लेषण और चिन्तक के रूप में भी उतने ही 'सलझे हुए और संतुलित हैं। उनकी मान्यताओं-स्थापनाओं और विचारणाओं में मौलिकता है। वे कहानी ही नहीं लिखते रहे अपितु उसके स्वरूप, संगठन, शिल्प और समूचे तंत्र से सम्बंधित पहलुओं पर भी गम्भीरता से विचार करते रहे हैं। उनके कहानी विषयक चिन्तन, स्वरूप-निर्धारण और प्रावृत्तिक विवेचन में उनकी अनेक प्रतिपत्तियाँ निहित हैं। समय-समय पर लिखे गये लेखों, निबंधों, गोष्ठीप्रसंगों में अभिव्यक्त मतों और पत्र पत्रिकाओं में छपे विचारों से राकेश की नयी कहानी विषयक मान्यताओं को समझा जा सकता है। यहाँ इसी आधार पर राकेश की एतद्विषयक प्रतिपत्तियाँ प्रस्तुत हैं :

1. मोहन राकेश की दृष्टि में कहानी युग की प्राण शक्ति को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है, परन्तु जिस पाठक के लिए वह लिखी जाती है उसकी सीमाएँ और अपेक्षाएँ भी हैं। पाठक की सीमाओं और अपेक्षाओं के प्रति उदासीन रहकर की गई रचना केवल रचयिता के अहं को परितुष्ट कर सकती है, अपने वास्तविक उद्देश्य की सिद्धि तक नहीं पहुँच पाती है।[1] राकेश की इस मान्यता के सम्बन्ध से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि कहानी युग की अभिव्यंजना के साथ-साथ पाठकों से भी जुड़ी हुई होनी चाहिए। कहानीकार की संवेदना का पाठकीय संवेदना में रूपांतरण और पाठकीय दृष्टि का कहानीकार में होना सफल कहानी का गुण है। इसीलिये राकेश यह भी मानते थे कि कहानी में जीवन के विराट को प्रतिबिम्बित करने के साथ साथ यह दृष्टि भी बनाये रखनी चाहिये कि कहानी कहना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु पाठक में उसके लिए आग्रह पैदा करना भी वांछित है।

2. 'राकेश जीवन और कहानी के परस्पराशी व परस्पर सम्बन्धित होने के समर्थक थे। राकेश की मान्यता थी कि नयी कहानी जीवन की स्थिरता को अभिव्यंजित करने वाली विधा नहीं है, अपितु वह तो जीवन के पल-पल पर बदलते संदर्भों और स्पन्दनों को व्यक्त करने का माध्यम है। कहानी का विषय व्यापक जीवन क्षेत्र है। राकेश की यह मान्यता 'अज्ञेय' और 'जैनेन्द्र' की मान्यताओं के विपरीत है। जहाँ ये दोनों कहानी को वैयक्तिक और पारिवारिक परिवेश की विविध स्थितियों में ही घुमाते रहे वहां राकेश ने यह कहा "निरन्तर कुलबुलाते और संघर्ष करते सामाजिक पार्श्व का एक व्यापक भाग अछूता रहा है, जिसकी पहचान और पकड़ हमारे लेखकीय दायित्व का महत्वपूर्ण अंग है।"[2]

3. जीवन-व्यापी संघर्ष स्थितियों के बदलाव के साथ-साथ अधिकाधिक जटिल और पीड़ादायक हो जाता है। कहानीकार से पहली अपेक्षा ही यह होनी चाहिए कि वह समूचे परिदृश्य को उसकी वास्तविकता के साथ अनुभव करता हुआ कलात्मक रूप में प्रस्तुत करे। आज का कहानीकार यदि इसे स्वीकार करके चले तो उसकी रचना की बुनावट गाढ़ी और प्रभावी हो सकती है। इसी अनिवार्यता पर बल देते हुए राकेश ने 'नये बादल की' भूमिका में लिखा है : 'वास्तव में जीवन की संकुलता आज के लेखक के लिये चुनौती है। वह इस चुनौती को स्वीकार करे और जीवन की गहराई में नीचे तक जाने का साहस करे तो वह किसी भी समय की रचना से सूक्ष्मतर रचना कर सकता है क्योंकि बीते कल की रचना से सूक्ष्म

---

1. मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ 36
2. मोहन राकेश : नये बादल की भूमिका, पृ० 23

रचना की उपलब्धियाँ ग्राज के लेखक के लिये ग्रादर्श नहीं ग्रारंभ का संकेत हैं ।'[1]

4. परिवेश के प्रति सजग ग्रौर सतर्क बने रहने को राकेश ने पर्याप्त महत्व दिया है । उनके हर निबंध में जो कहानी से सम्बन्धित है, प्रायः ऐसी ही मान्यता व्यक्त की गई है । 'परिवेश' में संकलित 'समय ग्रौर यथार्थ के शिल्प में' नामक निबंध में राकेश ने इसी मान्यता को इन शब्दों के सहारे ग्रभिव्यक्त किया है "मेरे लिये नयी कहानी की दृष्टि ग्रपने संदर्भों में रहकर उनके ग्रन्दर से ग्रपने समय ग्रौर परिवेश को ग्राँकने की दृष्टि है जो हर बार, हर नये प्रयोग में, यथार्थ को उसकी सजीवता में व्यक्त करने की एक नयी कोशिश करती है । जहाँ यह कोशिश नहीं, केवल दोहराव है वहां कहानी हो सकती है, नयी कहानी नहीं··· ।'[2] स्पष्ट है कि नयी कहानी के सम्बन्ध में राकेश ग्रपने समय ग्रौर उसके वक्ष पर फैले परिवेश को बाँधने के पक्ष में हैं । जहाँ परिवेश के प्रति यह सजगता है, एक 'कांशस' 'दृष्टि' है, वहीं नयी कहानी की भूमिका तैयार हो सकती है । इस दृष्टि बिन्दु से नयी कहानी एक दृष्टि है– 'मनुष्य को इसके सामाजिक यथार्थ के ग्रन्दर से देखने की––उस यथार्थ को यथार्थ रूप के में स्वीकार करने की ग्रौर साथ ही उस संघर्ष की जो मनुष्य को उसके ग्राज के यथार्थ से ग्रागे कल के यथार्थ की ग्रोर ले जाती है ।[3]'

5. राकेश ने नयी ग्रौर पुरानी कहानी को भी ग्रलग-ग्रलग करके देखा है । उनके ग्रनुसार 'सतह से देखा जाय तो भले ही ग्राज का भारतीय जीवन शिथिल ग्रौर गतिहीन प्रतीत हो, पर सतह के नीचे उसमें इतनी हलचल है जितनी पहले कभी नहीं रही । स्थिति की गंभीरता ने जीवन को भीतर से झिझोड़ दिया है ।[4] परिणामतः नयी कहानी पुरानी से न केवल यथार्थ के बहुग्रायामी धरातल पर भिन्न है, ग्रपितु वह भाषा ग्रौर शिल्प संचेतना के स्तर पर भी भिन्न है ।

6. राकेश ने ग्रपनी नयी कहानी विषयक मान्यताग्रों की प्रस्तुति के समय इसके नामकरण पर भी विचार किया है । वे यह मानते हुए भी कि कहानी के नामकरण की बात को लेकर इतनी खींचतान हो चुकी है कि इस बारे में ग्रौर लिखना ग्रब बेमानी लगता है, कहते हैं : 'नयी कहानी नाम तो मात्र एक ग्रनुबंध है, प्रश्न वास्तव में दो ग्रलग-ग्रलग दृष्टियों का है । 'नयी कहानी' के साथ शब्द 'नयी' का प्रयोग केवल विभाजन की सुविधा के लिये है—एक सीमान्त के बाद कहानी के विकास

---

1. नये बादल की भूमिका पृष्ठ 23
2. राकेश : परिवेश, पृष्ठ 203
3. मोहन राकेश : परिवेश, पृष्ठ 204
4. मोहन राकेश : नये बादल की भूमिका, पृ० 12

की अलग दिशा का संकेत देने के लिये । मैं नहीं समझता कि आज के कहानीकार को इस बात का मोह होगा कि उसकी कहानी भविष्य में 'कहानी' के रूप में न जानी जाये, 'नयी कहानी' के रूप में जानी जाये । हाँ, उसका यह चाहना और दावा करना कि उसके आज के प्रयोग पहले प्रयोगों से भिन्न हैं, उसका दुराग्रह नहीं है ।[1]

7. राकेश की मान्यता है कि कहानी-लेखक का दायित्व अपने समय के प्रति होना चाहिए । कारण समय के यथार्थ की विविधता के अन्तर्गत एकसूत्रता का निर्देशन करने और निर्माणात्मक तथा विध्वंसात्मक शक्तियों की बहुमुखता के अन्तर्गत उनकी एकरूपता का परिचय देने का दायित्व प्रमुखतः कहानी-लेखक पर ही आता है । आगे चलकर देखें तो राकेश ने कहानी के यथार्थ को किसी एक खण्ड में सीमित नहीं किया है । वे जीवन को एक सामूहिक इकाई मानते हुए कहते हैं कि 'जो शक्तियाँ इसे बनाने या बिगाड़ने में कारण बन रही हैं, उन्हें किसी एक या दूसरे प्रकोष्ठ में बन्द करके नहीं देखा जा सकता है । यथार्थ की पकड़ का अर्थ किसी एक खण्ड के बाहरी रूप का वर्णन करने की क्षमता नहीं है । जीवन के यथार्थ पर लेखक–कहानी लेखक के, यथार्थ का अर्थ है जीवन के सभी खण्डों को समान या न्यूनाधिक रूप में प्रभावित करने वाली शक्तियों की पकड़ ।'[2] तात्पर्य यह है कि राकेश के अनुसार जो कहानी लेखक जीवन को उसके समस्त खण्डों, रूपों और प्रभावित-अप्रभावित करने वाली शक्तियों के रूप में पहचानता है, वही यथार्थ का चितेरा और जीवन का कहानीकार होने का दावा कर सकता है ।

8. चरित्र कहानी के लिये न केवल महत्वपूर्ण हैं, वरन् वे उसकी अहम आवश्यकता भी हैं । राकेश भी चरित्र को कहानी के लिये पहली चीज़ मानते थे । उनकी मान्यता थी कि सफल चित्रांकन का अर्थ है 'उन्हें उनकी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ एक सजीवन और विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करना । ऐसा इसलिये कि कहानीनिस्संदेह कुछ अभिजात, उदास और उदार व्यक्तियों की जीवन-गाथा नहीं है और 'स्ट्रक्चर' और 'टैक्सचर' पहली चीज कहानी का 'यार्न' है, वह तन्तुवाय जो आज का यथार्थ है–एक व्यक्ति विशेष या समुदाय-विशेष के जीवन का यथार्थ नहीं ।[3] चरित्रों के सम्बन्ध से कहानी की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कहानी लेखक 'चरित्रों और उनकी परिस्थितियों के विधान में कहाँ तक

---

1. मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ 48
2. वही, पृ० 34
3. वही, पृ० 40

निःसंग, तटस्थ और अयुक्त रह पाता है और अपनी घृणा या संवेदना की अभिव्यक्ति परिस्थितियों के वैज्ञानिक विश्लेषण या संघटन द्वारा ही करता है।[1] कहानी में लेखक की यह निर्वैयक्तिक दृष्टि ही सही, चरित्रों की प्रस्तुति कर सकती है। कहानी में आये चरित्रों को दुर्बल या सबल चित्रित करना महत्वपूर्ण नहीं है और न परिस्थिति की संकुलता या असंकुलता को चित्रित करना ही अर्थ रखता है। यह सभी आवश्यक है। कारण असुन्दर से दूर सुन्दर का और संकुल से अलग असंकुल का व निर्बल से अलग सबल का कोई अर्थ नहीं है। जीवन की विकासमान धारा में सभी कुछ एक साथ बहा करता है। अतः कहानी में भी उसकी अभिव्यंजना इसी रूप में होना श्रेयस्कर है।

9. राकेश ने जहाँ कहानी के सम्बन्ध से चरित्र, परिस्थितियों, यथार्थ, परिवेश की पकड़ और कहानी के रूप, प्रेरक तत्वों व नामकरण के सम्बन्ध से अपनी सैद्धांतिक मान्यतायें व्यक्त की हैं, वहीं उसके शिल्प के सम्बन्ध में भी कई मार्के की बातें कहीं हैं। उनकी दृष्टि में जो लोग महज शिल्प के स्तर पर चौंकाने वाले प्रयोग करते हैं, वे बाजारू प्रयत्न हैं। शिल्प की पहली आवश्यकता भाषा है। भाषा अनुभूतियों के भीतर से जन्म लेती है। अनुभूतियाँ जैसी और जितनी गहन होंगी उतनी ही गहन व अर्थवान शब्दावली वे अपनी अभिव्यक्ति के लिए चुन लेंगी। कारण अनुभूति अनभिव्यक्त रह ही नहीं सकती है। यह बात अलग है कि उसकी अभिव्यक्ति कभी शब्दों से, कभी चुप्पी से, कभी मुख-मुद्रा से और कभी किसी चेष्टा से या अन्तर में उद्वेलित किसी विकास के रूप में हो। इसका अर्थ यह हुआ कि शिल्प की संभावनायें अनिवार्यतः अनुभूति में अन्तर्निहित होती हैं। राकेश ने लिखा है कि 'कला के शिल्प को कला की वस्तु या कलाकार की अनुभूति से अलग करके देखना भी मुझे गलत लगता है....क्योंकि अनुभूति का अपना ही एक शिल्प होता है जिसकी अपने माध्यम की सीमाओं में, हर कलाकार खोज करता है...... अतः शिल्प को तराशने या बदलने की बात सवाल बनकर मेरे सामने नहीं आती है.......सामने आती है यथार्थ और उसकी अनुभूति को उसके शिल्प में व्यक्त करने की बात जो हर एक के लिये हर बार एक नयी चुनौती हो सकती है।[2] तात्पर्य यह है कि शिल्प अनुभूति का आत्मज है। जिस प्रकार आत्मज अपने पिता के आनुवंशिक गुणों को अपने रक्त में लेकर आता है, भले ही परिवेश के बदलाव के कारण कतिपय अन्य नये गुणों का विकास भी करले, ठीक उसी प्रकार

---

1. मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृ० 33
2. मोहन राकेश : परिवेश में संकलितनिबंध : समय और यथार्थ के शिल्प में, पृ० 202

अनुभूति के ताप में तपकर भाषा स्वतः ही तद्नुकूल रूप लेकर आ खड़ी होती है । कहानीकार की भाषा और शिल्प-संयोजना में जब यह गुण आ जाता है तो वही सच्ची भाषा होती है । इसी के लिये राकेश ने कहा है कि 'लेखक की भाषा उसके और पाठक के बीच कहानी कहने और सुनने वाले की सी घनिष्ठता उत्पन्न करने का एक साधन है । यदि भाषा में यह घनिष्ठता उत्पन्न करने की योग्यता न हो तो कहानी की रचना का उद्देश्य ही पूरा होने से रह जायेगा ।[1]

10. राकेश ने लेखन को एक अर्धचेतन प्रक्रिया माना है । वे कहते हैं कि 'लेखक दार्शनिक या वैज्ञानिक की तरह तर्क या प्रयोग के आधार पर दिशा नहीं देता है । चूँकि लेखन को मैं एक अर्धचेतन प्रक्रिया मानता हूं, इसलिये यह भी मानता हूं कि 'दिशा देने' या 'दिशा देनी चाहिये' का बोध रचना प्रक्रिया में नहीं होता । लेखक के मन में या तो समर्पण की भावना होती है या फिर विद्रोह की ...... साहित्य में हमेशा दो दिशायें रहती हैं—समर्पण की दिशा और नकारने या विद्रोह की दिशा । मेरी दिशा दूसरी है क्योंकि मेरे लिये वह अनिवार्य है । जिस दिन मुझे जूझने की आकांक्षा नहीं रहेगी, उस दिन लिखने की आकांक्षा भी नहीं रहेगी ।[2]

11. पिछले दशक में लेखकीय प्रतिबद्धता का प्रश्न भी पर्याप्त चर्चित रहा है । जहाँ 'कमलेश्वर' लेखक की प्रतिबद्धता को उसकी आस्था से जोड़ते हैं तो 'राजेन्द्र यादव' उसे युग-सत्य से 'मुद्रा राक्षस' जैसे कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि लेखक कहीं भी प्रतिबद्ध नहीं होता है । इस संदर्भ में मोहन राकेश की प्रतिपत्ति मौलिक, नवीन और अधिक ठोस है । पहले तो राकेश 'कला कला के लिये' सिद्धांत के विरोधी हैं और इसे व्यर्थ बतलाते हैं । उनकी स्पष्ट धारणा है कि 'प्रतिबद्धता की बात में अपने या अपनी कला के संदर्भ में न सोचकर जीवन और उसके यथार्थ के सम्बन्ध से ही सोचता हूं । मैं अपनी कला से प्रतिबद्ध हूं क्योंकि अपने परिवेश और उसके निरंतर बदलते यथार्थ से प्रतिबद्ध हूं । जीवन से हटकर अपने अकेलेपन में प्रतिबद्धता मेरे लिये कोई अर्थ नहीं रखती है ।[3] कहने का तात्पर्य यह है कि राकेश का सारा बल अपने परिवेशीय यथार्थ पर है । वे उसे ही गहराई से पकड़ने में विश्वास रखते है । ध्यान से देखें तो परिवेश के प्रति यहाँ संसिक्त और उसी की प्रतिकृति कला के प्रति उनकी प्रतिबद्धता एक प्रकार से जीवन के प्रति 'राकेश' की गहरी निष्ठा का ही प्रतिफल है ।

---

1. मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृ० 36
2. वही, पृ० 57
3. वही, पृ० 73

12. राकेश ने अपनी लेखन-प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनके कहानी लेखन के पीछे जो कारण रहे हैं वे ये हैं—(1) अपने या दूसरों के जीवन के जो सूक्ष्म द्वन्द्व और अन्तर्द्वन्द्व राकेश के कहानी लेखन का पहला संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। (2) कवि के रूप में गति न तलाश कर पाने के कारण भी राकेश कहानी लेखन के प्रति अग्रसर हुए (3) राकेश का विश्वास था कि जीवन के किसी भी हिस्से या टुकडे, किसी मूड़, किसी चरित्र या किसी भी संदर्भ को कहानी में ईमानदारी से उतारा जा सकता है। (4) कहानी परिवेश का प्रतिविम्ब है और हर साधारण आदमी नित्य प्रति कोई न कोई कहानी जीता है। अतः जीकर पचाई हुई कहानी को कहानी में ही उतारा जा सकता है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि मोहन राकेश का अपने सृजन में मौलिक होना और ईमानदार होना इस बात का संकेत है कि वे अपने आप में एक पूर्ण रचनाकार थे। उनकी साहित्यिक और सैद्धान्तिक मान्यतायें नवीन, मौलिक और नई दृष्टि का प्रकाश उद्गीरित करने वाली हैं। इतना ही नहीं राकेश ने कहानी विषयक जो मान्यतायें प्रस्तुत की हैं, उनमें चिन्तन की स्पष्टता तो है ही, प्रस्तुतीकरण की सादगी भी है। यदि उनके द्वारा कथित प्रतिमानों और प्रतिपत्तियों के आधार पर ही राकेश के कहानी-साहित्य का मूल्यांकन करें तो वह खरा उतरता है। राकेश की कहानियाँ परिवेश के यथार्थ को व्यक्त करने वाली, गम्भीर चिन्तनापूर्ण, ईमानी शैली में लिखित मानवीय सम्बन्धों की कहानियाँ हैं। उनका शिल्प कथ्य के अनुरूप हैं। एक वाक्य में राकेश की कहानियाँ सम्बन्धों की यंत्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं। उनमें निरूपित चरित्र परिस्थितियों के घात-संघात को व्यक्त करते हैं। वे मनुष्य हैं और उनका परिवेश यथार्थ है। राकेश ने एक निर्वेयवितकता और निस्संगता के साथ अपने चरित्रों को प्रस्तुत किया है। उनका शिल्प अनुभूतियों के तल से स्वतः स्फुरित हुआ हैं।

———

5

मोहन राकेश की कहानी-यात्रा

कहानी-यात्रा एक परिचय :

राकेश की कहानियों में निरंतर विकसित और परिवर्तित होते जा रहे भारतीय जीवन की झलक है। उनमें वह परिवेश अंकित हुआ है जो हमारे आस-पास मँडराता रहता है। रचनात्मक जीवंतता और वैचारिक सक्रियता का जो सिलसिला नयी कहानी से शुरू होता है, मोहन राकेश उसके एक हिस्से ही नहीं निगहबान भी हैं। कहानी-चर्चा के कुछ अहम सवालों को उठाने में उन्होंने पहल की और अपनी कहानियों के माध्यम से उन्हें एक रचनात्मक दिशा दी है।[1] जहाँ तक राकेश की कथा-यात्रा को स्पष्ट करने वाली उनकी कृतियों का प्रशन है वह पाँच कहानी संग्रहों के रूप में सामने आयी हैं। उनकी कहानियों के पाँच संग्रह कालक्रमानुसार ये हैं : इन्सान के खंडहर (1950) 'नये बादल' (1957) 'जानवर और जानवर' (1958) 'एक और जिन्दगी' (1961) 'फौलाद क्रा आकाश' (1966)। राकेश के ये संग्रह क्रमशः उनकी कहानी-यात्रा के विभिन्न सोपानों को व्यक्त करते हैं। इन संग्रहों में आई कहानियों को राकेश ने पुनः चार जिल्दों में बाँधने का कार्य भी तत्परता के साथ किया था। इन चार जिल्दों के नाम हैं :—'आज के साये', 'रोंये-रेशे', 'एक-एक दुनियाँ' और 'मिले जुले चेहरे'। इन संग्रहों की कहानियाँ प्रायः वे ही है जो उपनिर्दिष्ट संग्रहों में आ चुकी हैं। आपवादिक रूप से कुछेक कहानियाँ ही नयी हैं। पांच संग्रहों की कहानियों को चार में बाँधने की कोशिश के पीछे राकेश का एक विशेष मन्तव्य रहा है। राकेश ने अलग-अलग स्थितियों और संदर्भो की कहानियों को अलग संग्रहों में देकर एक प्रकार से अपनी कहानियों को विभाजित भी कर दिया है। कहानियों के प्रकाशन की गति इन्हीं संग्रहों तक नहीं रही है। राधाकृष्ण प्रकाशन से छपी चार जिल्दों की कहानियों को पुनः 'राजपाल एण्ड सन्स' से प्रकाशित कराया गया और अबकी बार उनकी समस्त कहानी–यात्रा को तीन खन्डों में ही सीमित कर दिया गया। यह भी एक विचित्र संयोग है कि पहले उनके 5 कहानी–संग्रह चार में परिबर्तित हुए और बाद में केवल तीन जिल्दें ही रह गईं। हर बार एक संख्या का कम होते जाना

---

1. डा० धनंजय वर्मा : सारिका मार्च, 73 में प्रकाशित लेख से, पृष्ठ 82।

राकेश की किस मनोवृत्ति को स्पष्ट करता है, कहना कठिन है। पहले के 5 संग्रहों को चार में परिवर्तित करने तक की बात तो समझ में आती है, किन्तु उन चारों को पुनः तीन में परिवर्तित करने के पीछे उनकी व्यापारिक मनोवृत्ति आभासित होने लगती है। यों उनके निकटवर्ती मित्रों की तो उनके सम्बन्ध में मान्यता भी यही रही है कि वे व्यापारिक मनोवृत्ति के थे। व सौदा पटाने में लगे रहते थे। जब मैं श्री उपेन्द्रनाथ अश्क से मिली तो उन्होंने राकेश की कहानियों, कला और नयी संवेदना की तो जी खोलकर प्रशंसा की, किन्तु उनकी इस सौदेबाजी वृत्ति पर प्रहार भी किया। उन्होंने साफ कहा कि वह चवन्नी तक का हिसाब रखते थे और जहाँ उनका सौदा पटता नहीं था, वहाँ वे नहीं जाते थे।[1]

खैर! अब राकेश की कहानियों के तीन संग्रह हमारे सामने हैं--'क्वार्टर' 'पहचान' और 'वारिस'। 'क्वार्टर' में 15, 'पहचान' में 19 और 'वारिस' में 20 कहानियाँ दी गई हैं। इस प्रकार 54 कहानियाँ हैं जो इन संग्रहों में समाहित हैं। यों राकेश ने इन तीनों संग्रहों की भूमिका में यही लिखा है कि 'चारों जिल्दों के अलग-अलग समय पर प्रकाशित होने के कारण बाद की जिल्दें आने तक पहले की जिल्दों के संस्करण लगभग समाप्त हो गये जिससे उन्हें एक सेट के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ क्योंकि पहले के प्रकाशित अलग-अलग संग्रह भी अब उपलब्ध नहीं थे। इसलिए बहुत से पाठकों के पत्र आने लगे कि अमुक-अमुक कहानियों की तलाश उन्हें कहाँ से करनी चाहिये। मुझे प्रसन्नता है कि पूरी कहानियों को एक साथ तीन जिल्दों में प्रकाशित करने की वर्तमान योजना से इस जिज्ञासा का समाधान हो जायेगा।[2] स्पष्ट है कि राकेश अपनी कहानियों को एक 'सेट' के रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे। उनकी यह कामना तो स्तुत्य है, किन्तु चार जिल्दों की जो साभिप्रायता और अर्थवत्ता थी वह इन तीन से पूरी नहीं हुई। 'सारिका' के 'मोहन राकेश' स्मृति विशेषांक में 9 अन्य कहानियाँ भी कमलेश्वर के सहयोग से प्रकाशित हुई हैं। इनके नाम हैं: 'बनिया बनाम इश्क', 'भिक्षु', 'लड़ाई', 'कटी हुई पतंगें', 'गुमशुदा', 'लेकिन इस तरह', 'पम्प' 'अर्ध विराम' और 'नन्हीं'। इस प्रकार अब तक राकेश की जो कहानियाँ सामने आई हैं उनकी संख्या 63 है। राकेश के समय-समय पर प्रकाशित कहानी संग्रहों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवेचन यहाँ दिया जा रहा है। इसके आधार पर उनकी कहानियों का स्पष्ट मानचित्र प्रस्तुत किये जाने की ही भावना है। पहले छपे पृथक्-पृथक् कहानी संग्रहों का परिचय प्रस्तुत है:

---

1. अश्क से भेंटवार्ता, दिनांक 29-5-76
2. पहचान की भूमिका से, पृष्ठ 5

'इन्सान के खण्डहर'

यह सन् 1950 में प्रकाशित राकेश का प्रथम कहानी संग्रह है। इसमें उनकी 'इन्सान के खण्डहर' 'धुँधलादीप' 'मरूस्थल' 'उर्मिल जीवन' 'एक आलोचना' 'लक्ष्यहीन' 'सीमाएँ', 'कंवल' 'दोराहा' 'वासना की छाया में' और 'मिट्टी के रंग' कहानियाँ संग्रहीत हैं। प्रेमचन्द की परंपरा का पाठक जब यशपाल तक आता है तो उसे एक तोष मिलता है। वह प्रेमचंद की परंपरा का आभास पाने लगता है, किन्तु, यशपाल में दृष्टिकोण के प्रति विशेष आग्रह झलकता है। 'राकेश' की स्थिति इसके विपरीत है। वे दृष्टिकोण से मुक्त होने की कोशिश में लगे रहे हैं। 'उनमें अपनी पूरी वस्तु के साथ सहयोग के स्तर पर एक एकात्मकता और पात्र व परिस्थिति के प्रति हिस्सेदारी का बोध झलकता है। कारण वे परिस्थितियों और घटनाओं के तटस्थ पर्यवेक्षक नहीं थे।[1] 'इंसान के खण्डहर' की कहानियों में राकेश का ध्यान अभिजात वर्ग की कुलबुलाती आत्मा और मध्यवर्ग की घुटी हुई चेतना की ओर अधिक केन्द्रित रहा है। वह शोषितों, पीड़ितों और श्रमिकों के प्रति अधिक सदय, अधिक दर्याद्र दिखाई देता है। धर्म के नाम पर चल रहे आडम्बर व पाखण्ड का पर्दाफाश करता हुआ व्यंग्यात्मक और आवेशी स्वर में बोलता है। वस्तुतः उसका प्रारंभिक स्वर प्रगतिशील चेतना के सरगम पर तैयार किया गया है। डॉ० धनंजय-वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि 'उसके पहले संग्रह' 'इन्सान के खण्डहर' को देखिये तो उसे सबसे पहले फिक्र है प्रगतिशील बनाम पराजयवादी मनोवृत्ति की। धर्माडम्बर के प्रति व्यंग्य का जोश और धनिक वर्ग की लिप्सा के लिये उबलता हुआ आक्रोश, पेट में पहुँची आग का ताप और सतह पर तैरते हुए विचार की अस्तव्यस्त श्रंखला, चित्रोणों में लिपटता हुआ वही ड्राइंगरूमी प्रेम और काफी के प्यालों पर बहसों का अंतहीन सिलसिला। भावुकता के विरोध में अतिरिक्त भावुकता और कमोबेश रुढ़ि-गत फार्म और 'ढ़हते घर की ईंटों पर गारे का लेप नहीं चलेगा' वाली मुट्ठी बाँध घोषणा लेकिन इस सबके बावजूद यही वह देखता है कि 'सामने जिन्दगी की किताब खुली पड़ी है जिसके पन्ने अपने-आप पलटते जा रहे हैं और उन पन्नों की इबारत आप बखूबी पढ़ सकते हैं।"[1] असल में इस संग्रह की कहानियों में परिस्थिति के साथ तेजी से नया रूप लेते जीवन की धड़कनों को पूरी साफगोई के साथ लिपि-बद्ध किया गया है। यद्यपि राकेश ने बाद में यह स्वीकार किया कि इस संग्रह की कहानियाँ उनके बाद के प्रयोगों से मेल नहीं खाती हैं। कारण ये उनकी एक विशेष मानसिकता की उपज है। ये उस परिवेश को मूर्तित करती हैं जिसमें व्यक्ति अपने को उससे कटा हुआ अनुभव करता है। सांस्कारिक परिवार और आदर्श की वैसाखियों

---

1. डा० धनंजय वर्मा : सारिका मार्च, 1973, पृष्ठ 82

के सहारे चलने वाले समाज और परिवार के प्रति जो विद्रोह भाव उनके मन में था, जो कटुता थी वह भी इस संग्रह की कहानियों में मिलती है ।

लेखक की मानसिकता समय के साथ-साथ बदलती रहती है । जिस समय लेखक सृजन की प्रक्रिया से गुजरता है, उस समय उस रचना के साथ उसकी जो निकटता रहती है, वह समय बीतने के साथ-साथ हल्की पड़ती जाती है । लेखक पर उसका प्रभाव बहुत समय तक नहीं रहता है । पहली रचना के प्रभाव से मुक्त होकर ही वह नयी रचना से आत्मीयता स्थापित कर सकता है । मोहन राकेश की कथा-यात्रा के भी अनेक पड़ाव रहे हैं । राकेश के प्रथम प्रकाशित कहानी संग्रह 'इंसान के खंडहर' की कहानियाँ उन्हीं के शब्दों में' कई दृष्टियों से मेरे बाद के प्रयोगों के साथ एक कड़ी के रूप में ठीक से जुड़ नहीं पाती । उनके शिल्प और कथ्य दोनों में एक तरह की कोशिश है, एक अनिश्चित तलाश का कच्चापन ।'[2] लेखक और पाठकों का दृष्टिकोण एक नहीं हो सकता । इसका कारण स्पष्ट है कि लेखक की बदलती हुई मानसिकता के साथ पाठक का दृष्टिकोण बदलना आवश्यक नहीं है । लेखक की कथा-यात्रा के हर पड़ाव पर कुछ पाठकों से उसका संबंध टूट जाता है और उसकी नयी रचना के साथ कुछ और पाठकों का संबंध स्थापित हो जाता है । यही किसी लेखक की गतिशीलता को सिद्ध करता है । जीवन भर एक ही मानसिक भूमि पर रहकर लिखना राकेश की दृष्टि में केवल शब्दों का व्यवसाय है । पाठकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो लेखक की पूरी रचना-यात्रा में उसके साथ रहता है, बल्कि अनेक बार अपनी नयी अपेक्षाएँ सामने लाकर उसे प्रयोग की दिशा में अग्रसर होने के लिये भी प्रेरित करता है ।

'नये बादल'

'नये बादल' राकेश का सन् 1957 में प्रकाशित दूसरा-कहानी संग्रह है । इसमें कुल तेरह कहानियों को स्थान प्राप्त है: नये बादल, मलवे का मालिक, अपरिचित, शिकार, एक पंखयुक्त ट्रेजेड़ी, उसकी रोटी, मंदी, हवामुर्ग, उलझते धागे, सौदा, फटा हुआ जूता, भूख और छोटी सी चीज । इसमें सम्मिलित की गई कहानियों का रचना काल सन् 50 से 54 तक या कहें कि 55 तक फैला हुआ है । ये वर्ष काफी उथल-पुथल के थे । एक ओर विभाजन और दूसरी ओर बेकारी की मार सहने वाले राकेश के जीवन में जो अनिश्चितता, संकटग्रस्तता और गहराइयों में लेजाकर छोड़ देने वाली निराशा व पीड़ा भर गई थी, उसका संकेत आलोच्य संग्रह की कहानियों से प्राप्त होता है । 'मलवे का मालिक' और मंदी कहानियाँ प्रेमचंद की परंपरा में आती हैं । वे आदर्शवादी हैं, किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों के खाद-पानी से तैयार

1. मोहन राकेश : मेरी प्रिय कहानियाँ, पृष्ठ 9-10

आदर्शवाद ही उनमें है। 'नये बादल' और 'उसकी रोटी' जैसी कहानियों में जिंदगी का कटु यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। स्वय राकेश की ये पंक्तियाँ इस संग्रह की वास्तविकता को व्यक्त करती हैं : 'इंसान के खण्डहर से इस दौर तक आते-आते ओढ़ी हुई बौद्धिकता के कोने काफी झड़ गये थे। जुमलेबाजी से इतनी चिढ़ हो गई थी कि अपने जुमलेबाज दोस्त से बारह साल पुरानी दोस्ती लगभग टूटने को हो गई थी। यद्यपि व्यक्तिगत जीवन भी बहुत से तनावों के बीच जिया जा रहा था, फिर भी अपने परिवेश से कटे होने की अनुभूति का स्थान सर्वथा एक दूसरी अनुभूति ने लिया था और वह थी जुड़े होने की अनिवार्यता की अनुभूति, पर वह कडवाहट निरर्थक और आरोपित नहीं थी। उसका उद्देश्य भी जुड़े होने की स्थिति से मुक्ति पाना नहीं, उसकी तात्कालिक शर्तों को अस्वीकार करते हुए जुड़े रहने के सार्थक संदर्भों को खोजना था। जिन स्थितियों को लेकर असंतोष था, उनकी विसंगतियों के प्रति मन में एक 'ह्यूमर' का भाव भी था। 'नये बादल' और 'जानवर और जानवर' की अधिकांश कहानियाँ इसी मानसिकता की उपज हैं।"[1] वस्तुतः इस संग्रह की कहानियों में जीवन को यथावत रूप में चित्रित किया गया है तथा उसके सहारे अन्तर्निहित यथार्थ को संकेतिक किया गया है। इस संग्रह की कहानियों के सम्बन्ध में डॉ० धनंजय वर्मा का यह मत लेखकीय दृष्टिकोण को ही पुष्ट करता दिखाई देता है : इस संग्रह के माध्यम से सहज अनुभूति के साथ कई स्थितिशील और गतिशील, व्यक्तिगत और सामाजिक स्तरों पर यथार्थ की खोज, उसके सामाजिक और भौतिक परिपार्श्व और अंततः एक व्यक्ति का चरित्र के माध्यम से पूरे समाज और युग की की कथ-व्यथा कहना ही आलोच्य कहानियों की दिशा है।[2] 'मलवे का मालिक', 'उसकी रोटी' 'मंदी' हवामुर्ग' 'मरुस्थल और 'भूखे' संग्रह की प्रसिद्ध और यथार्थ-चेतना वलयित कहानियाँ हैं। सामाजिक सदर्भों में लिखी गई ये कहानियां जीवन की तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करती हैं।

'जानवर और जानवर'

'नये बादल' की कहानियाँ जिस दौर में लिखी गईं, उसी दौर और संदर्भों में उक्त संग्रह की कहानियाँ लिखी गई हैं। इन दोनों संग्रहों के प्रकाशन वर्ष में भी एक ही वर्ष का अन्तर है। 'नये बादल' यदि सन् 1957 का संग्रह है तो 'जानवर और जानवर' सन् 1958 का। इसमें केवल आठ कहानियों को स्थान प्राप्त है। 'काला रोजगार', 'परमात्मा का कुत्ता', 'मवाली', 'आर्द्रा', 'आखिरी सामान', 'मिस्टर भाटिया', 'क्लेम' और 'जानवर और जानवर' जैसी कहानियों में जो स्वर

---

1. मोहन राकेश : मेरी प्रिय कहानियाँ, पृष्ठ 9–10
2. डा० धनंजय वर्मा : सारिका मार्च, 1973, पृष्ठ 82

है वह राकेश की तत्कालीन मन:स्थिति और परिवेश की पकड़ को उजागर करता है। आलोच्य संग्रह का मूल स्वर आर्थिक परिस्थितियों का सामना करने वाले निम्न-मध्यवर्ग की मजबूरियों, यातना, विवशता और आत्मवंचना को सहते-भोगते व्यक्ति की जिजीविषा से युक्त है। ये पूरी तरह सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लिखी गई प्रभावी कहानियाँ हैं। हाँ 'आखिरी सामान' और 'जानवर और जानवर' जैसी कहानियों में व्यक्ति के जीवन की विडम्बनाएँ और तत्सम्बन्धित घुटन को गहन सूक्ष्मता के साथ उरेहा गया है। यद्यपि इन कहानियों का मूल स्वर भी वैयक्तिकता की आखिरी सीमा का नहीं है। यहाँ राकेश ने सांकेतिकता से काम लिया है। यहाँ अपनी सांकेतिकता के विस्तार के लिये भी राकेश ने कोशिश की है। 'परमात्मा का कुत्ता' में आदमी के कुत्ते और परमात्मा के कुत्ते का विरोध उभारते हुए राकेश ने सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, रिश्वतखोरी और अन्याय से ग्रस्त परिवेश को तोड़ने के लिये बैचेन, संतप्त, विवश और उपेक्षित व्यक्ति का चित्रण यथार्थ शैली में किया है। यह संग्रह की प्रभावी कहानी है। 'आर्द्रा' में दो अलग-अलग रह रहे पुत्रों के बीच ममतालु माँ की पीड़ा प्रतिबिम्बित हुई है। माँ दोनों के बीच विभाजित होकर जीती है। यही उसकी पीड़ा और दारुण यंत्रणा का कारण है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि 'जानवर और जानवर' संग्रह की कहानियों में राकेश परिवेश के प्रति पूरे सजग हैं। आर्थिक विषमता ने किस सीमा तक निम्नमध्यवर्ग को तोड़ दिया है, झिंझोड़ दिया है और टूटकर मनुष्य किस तरह जीवन की विडम्बनाओं व यातनामूलक असंगतियों को विवश भाव से सहता हुआ भी जीने की ललक लिये हुए है, यही सब इस संग्रह की कहानियों की आत्मा में आन्दोलित-उद्वेलित दिखाई देता है।

'एक और जिन्दगी'

'जानवर और जानवर' के तीन वर्ष बाद सन् 1961 में राकेश का 'एक और जिन्दगी' कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमें 9 कहानियों को स्थान मिला जिनके नाम हैं : 'सुहागिनें', 'आदमी और दीवार', 'हक हलाल', 'गुनाह बेलज्जत', 'जीनियस', 'बस स्टैण्ड की एक रात', मिस पाल', 'वारिस' और 'एक और जिन्दगी'। इसमें संकलित कहानियाँ मानवीय सम्बन्धों की यंत्रणा को झेलते हुए लोगों की कहानियाँ हैं। सन् 57 के अगस्त में राकेश विवाह के बंधन को भी तोड़ चुके थे। उन्हें एक ओर वैवाहिक बंधन से मुक्ति मिली थी और दूसरी ओर वे नौकरी से भी त्यागपत्र दे चुके थे। अब जीवन अकेला हो गया था। मानवीय रिश्ते बेमानी सिद्ध हो चुके थे और बचा था अकेलेपन का बोध और उससे जन्मी पीड़ा। यही कारण है कि इस संग्रह की कहानियों में सम्बन्धों की यंत्रणा को अपने में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को मूर्तित करने का

प्रयास किया गया है । यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं है, समाज के बीच होने का अकेलापन है और उसकी परिणति भी किसी तरह के सिनिसिज्म में नहीं, झेलने की निष्ठा में है । व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी, एक दूसरे से भिन्न और आपस में टूटी हुई इकाइयाँ न मानकर यहाँ उन्हें एक ऐसी अभिन्नता में देखने का प्रयत्न है जहाँ व्यक्ति समाज की विडम्बनाओं का और समाज व्यक्ति की यंत्रणाओं का आईना है[1] ।

इससे पहले के संग्रह में जो सांकेतिकता थी; वही इस संग्रह में आकर और विस्तार पा गई है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह बिखर गई है, बल्कि यही है कि वह यहाँ अधिक सघन, अधिक सूक्ष्म और अन्वितिपूर्ण हो गई है । इन कहानियों में जो यथार्थ परिवेश उभरा है; वह अपेक्षाकृत अधिक वैयवितक है । उसमें पहले की अपेक्षा आंतरिकता का स्वर गहरा है । इस गहराई का कारण उसका वैयक्तिक होते हुए भी बाहरी परिवेश से जुड़ा होना है । 'सुहागिनें' और 'एक और जिन्दगी' में जो यथार्थ है वह भोगा हुआ यथार्थ तो है; किन्तु मानवीय परिवेश का जाना-माना यथार्थ संदर्भ भी है । राकेश की यह विशेषता है कि उसने जो अनुभूत किया, सहा, भोगा और पचाया उसे इस निर्वैंयवितकता और निस्संगता के साथ प्रस्तुत किया है कि वह बाह्य परिवेश का असली परिदृश्य बनकर रह गया है । वैयक्तिक सम्बन्धों की पीठिका पर निजी अनुभूत को बाह्य से जोड़ना और प्रस्तुति को ईमानदारी देना साधारण कलाकार का काम नहीं है । इसी लेखकीय ईमान-दारी के कारण इसमें आया यथार्थ अपनी अभिव्यंजना में सपाट न होकर कलात्मक, सांकेतिक और अन्वितिपूर्ण है । कहानी में आई अन्विति राकेश की कलागत परिष्कृति और कहानियों के विकसित स्तर को ही संकेतित करती है । यहाँ व्यवित, घटना और परिस्थिति को व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है, समय और समाज की प्रतिध्वनियों को शब्दबद्ध किया गया है और साथ ही जीवनगत द्वन्द्वों—अन्तर्द्वन्द्वों को चित्रित करते हुए यथार्थचिन्तना को प्रस्तुत किया गया है । इस संदर्भ में संग्रह की 'मिस पाल', 'सुहागिनें' और 'एक और जिन्दगी' महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं । इनमें एक अनुभूत पीड़ा है, अव्यक्त यातना है और निरंतर अकेले-पन को सहते जाने का बोझ है । 'एक और जिन्दगी' तथा 'सुहागिनें' 'संग्रह की सर्व-श्रेष्ठ कहानियाँ हैं । इनमें 'एक और जिन्दगी' यदि नारी:पुरुष के वैवाहिक जीवन की समस्या से जूझने वालों की कहानी है तो 'सुहागिनें' में नारी और पुरुष के निर्भरता चाहते व्यक्तित्वों की विवशता का सूक्ष्म अंकन किया गया है । 'मिस पाल' में एक भद्दी और मोटी स्त्री की संवेदनशीलता और बिडम्बनाओं का यथार्थ; किन्तु सूक्ष्म अंकन है

1. मोहन राकेश : मेरी प्रिय कहानियाँ भूमिका, पृष्ठ 11

तो 'हक हलाल' एक ऐसी कहानी है जिसमें निम्नवर्गीय परिवारों में रहने वाली नारी पर नित्य प्रति होने वाले अत्याचारों का वर्णन किया गया है । एक प्रकार से देखें तो इनमें टूटी और बिखरी हुई नारी का अंकन हुआ है । अतः यह संग्रह राकेश की कथा-यात्रा का जीवन्त सोपान हैं और इसकी अधिकांश कहानियाँ न केवल राकेश की उपलब्धियाँ हैं, वरन् नयी कहानी की भी उपलब्धियाँ हैं ।

'फौलाद का आकाश'

'एक और जिन्दगी' के लगभग पाँच साल बाद सन् 1966 में 9 कहानियों का संग्रह 'फौलाद का आकाश' प्रकाशित हुआ । अब तक की कहानियों से हटकर इसमें जिन नयी प्रयोगशील कहानियों को स्थान मिला, उसमें 'ग्लास टैंक', पाँचवे माले का फ्लैट, सेफ्टी पिन, सोया हुआ शहर, फौलाद का अवकाश, जख्म, जंगला, चौगान और एक ठहरा हुआ चाकू का नाम आता है । इन कहानियों के सम्बन्ध में स्वयं मोहन राकेश ने लिखा है कि "इस संग्रह की दो तीन कहानियों को छोड़कर प्रायः सभी में बड़ी आबादी वाले शहरों की जिन्दगी, उसकी भयावहता को चित्रित किया गया है । हालाँकि भयावहता के संकेत इन कहानियों में व्यक्ति के माध्यम से ही सामने आते हैं । फिर भी उनका केन्द्र बिन्दु व्यक्ति न होकर उसके चारों ओर का संत्रास है ।"[1] 'जख्म' और 'एक ठहरा हुआ चाकू' शीर्षक से लिखी गई कहानियों में इस संत्रास को गहराई से चित्रित किया गया है। 'ग्लास टैंक' और 'जंगला' कहानियों में जो भूमि है वह 'एक और जिन्दगी' की कहानियों से बहुत दूर नहीं है । इस संग्रह की कहानियों में न तो कोई निश्चित कथानक है, न परिस्थितियों और पात्रों से सम्बद्ध प्रसंगों के साक्षात्कृत संदर्भ हैं । इसके विपरीत यहाँ अनुभव प्रधान हो उठा है । उससे सम्बन्धित कुछ उत्तप्त क्षण, उन पर व्याप्त किसी मनःस्थिति की वर्तुलाकार गति और वे सूक्ष्मतर सूत्र जो एक व्यापक परिदृश्य से जुड़कर उस क्षण और परिस्थिति को सार्थक बनाते हैं ।[2] यहाँ भावात्मक सम्बन्धों की ऊब है, अकेलापन है, रिश्तों से मुक्त होने के लिए की गई बेमानी संघर्ष-योजना है, जीवन में निरंतर भरती जा रही जड़ता है, ठंडे और बेजान मानवीय सम्बन्ध हैं, अपरिचय का बोध है, आत्मनिर्वासन की स्थितियाँ हैं, अनेकशः आवृत्त जिन्दगी का दर्द है, छटपटापट है, दाम्पत्य-सम्बन्धों की ऊब है, बेगानापन है जीवन की भयावहता है, असुरक्षा और आतंक का भाव है और है ऐसी ही उबाऊ एवं निरर्थक स्थितियों की अभिव्यंजना ।

---

1. मोहन राकेश : मेरी प्रिय कहानियाँ,
2. डा० धनंजय वर्मा : एक समर्पित कथा-यात्रा नामक लेख सारिका मार्च 73

राकेश के इस संग्रह में आयी जख्म, ठहरा हुआ चाकू और पाँचवे माले का फ्लेट, अच्छी ही नहीं बहुत अच्छी कहानियाँ हैं। इसके अतिरिक्त 'ग्लास टैंक' और 'फौलाद का आकाश' कहानियों में निरूपित यथार्थ कृत्रिम, जीवन से असम्बद्ध और आरोपित प्रतीत होता है। श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने संभवतः इसी कारण लिखा है कि "नये के चक्कर में राकेश ने कुछ प्रयोग किये हैं। उनका संग्रह 'फौलाद का अवकाश' पढ़ता हूँ तो लगता है कि न किये होते तो अच्छा था।...... 'ग्लास टैंक' बहुत अच्छी बनते-बनते रह गई है। राकेश ने उसमें बड़ी ही सूक्ष्मता से एक पारिवारिक ट्रेजेड़ी को उजागर किया है, लेकिन 'ग्लास टैंक' का प्रतीक आरोपित लगता है। यदि 'ग्लास टैंक' के सम्बन्ध में कही गई सभी बातें कहानी से काट दी जायें यानी कहानी के पहले चार पृष्ठ चौथे पृष्ठ की केवल अन्तिम चार पंक्तियों को छोड़कर, काट दिये जायें और कहानी दूसरे परिच्छेद से शुरु की जाय तो प्रभाव में कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा। बेहतर भले हो जाये।[1]

बस ! यही राकेश की कथा-यात्रा का इतिहास है और इसी की पहचान और प्रामाणिकता के लिये राकेश के कहानी-संग्रहों की अनिवार्यता है। ध्यान से देखें तो इन संग्रहों के माध्यम से ही राकेश की कथा-यात्रा के विकास को समझा जा सकता है। अपने प्रारंभिक रूप में राकेश का कहानी-लेखन प्रगतिशील शैली में किया गया प्रेमचन्द की परम्परा का विकास प्रतीत होता है। वहाँ व्यंग्य है, धर्माडम्बर और सांस्कारिकता के प्रति विद्रोह का स्वर है। द्वितीय स्तर पर यही विद्रोह और प्रगत्युन्मुखी चेतना जीवन के विविध संदर्भों में लिखी गई स्थितियों का यथार्थ अंकन प्रस्तुत करती है। जीवन की वास्तविकताएँ और उनके मूल में निहित स्थितियों और कारणों की खोज भी इसी सोपान पर की गई है। यहीं पर राकेश ने सामाजिक परिवेश को व्यष्टि चिन्तन व अनुभव के सहारे वाणी दी है। अपने लेखन के तीसरे सोपान पर आकर मध्यवर्ग की विवशताओं, पीड़ाओं और यंत्रणाओं को झेलते व्यक्ति की जिजीविषा का स्वर मुखरित हुआ है। यहाँ सांकेतिक शैली में वैयक्तिकता और समाजिकता का स्वर प्रतिबिंबित हुआ है। आगे चलकर जब यही सांकेतिकता सूक्ष्म स्तरों पर अवतरित होती है तो कहानीकार का अनुभूत कलात्मक अन्विति से अभिव्यक्त होता हुआ जीवन के विविध परिदृश्यों के पार्श्व में जा खड़ा होता है। परिणामतः मानवीय सम्बन्धों की यंत्रका व्यक्ति के अकेलेपन को गहराती हुई टूटते-बनते रिश्तों को परिवेश की समूची तल्खी के साथ उभार देती है। अपने अन्तिम रूप में राकेश परिस्थिति और पात्र ले साक्षात्कार करता दिखाई देता है। महानगरीय बोध और वज्जनित भयावहता लेखक के शिल्प में बँधती चली गई हैं। वस्तुतः

1. उपेन्द्रनाथ अश्क : हिन्दी कहानी एक अन्तरंग परिचय, पृष्ठ 252

राकेश की यह कहानी-यात्रा एक समर्पित लेखक की ऐसी यात्रा है जिसमें यथार्थ के धरातल और समय के सत्य को पकड़ने की सफल कोशिश दिखाई देती है।

कहानी संग्रहों के पुनः प्रकाशन की शृंखला का औचित्य :

जैसा कि कहा जा चुका है कि राकेश की कहानियों के ये 5 संग्रह राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली से केवल चार ही जिल्दों में सिमट गये हैं। इन जिल्दों : 'आज के साये', रोंये रेशे', 'एक एक दुनियाँ' और 'मिले जुले चेहरे' में समग्र कहानियों को बाँधने का प्रयत्न साभिप्राय है। उसमें एक अर्थवत्ता है। कारण इनके माध्यम से प्रकाशक और लेखक ने अपनी एक जैसी कहानियों को विषय, स्थिति और संदर्भा: नुसार प्रस्तुत किया है। 'आज चे साये' में आज की परिस्थितियों में जीते हुए और उन्हें अपने-अपने ढंग से झेलते व्यक्तियों का मार्मिक चित्रण है। सन् 1967 के इस संग्रह में जो कहानियाँ हैं वे पचास और छियासठ के बीच समय-समय पर प्रकाशित वे कहानियाँ हैं जिनमें भारतीय जीवन के सामाजिक, साम्प्रदायिक और राजनीतिक पक्षों पर तीखा व्यंग्य है। व्यंग्य बोध की स्थिति में राक़ेश ने व्यक्ति की टूटन और नहन को भी अभिव्यक्ति दी है। 'संवेदनशीलता और अभिव्यक्तिगत तीक्ष्णता के द्वारा इन कहानियों में विविध मानसिक स्थितियों, मनोभावों और संदर्भों को रेखांकित करने वाली शैली में प्रस्तुत किया गया है। 'रोंये रेशे' सन् 1968 में प्रकाशित हुआ। संग्रह के शीर्षक के अनुकूल ही इसमें सूक्ष्म मानव-सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण हुआ है। द्रायः सभी कहानियों में परस्पर संघर्षरत और लड़ते-झगड़ते व्यक्ति का चित्रण किया गया है। 'आर्द्रा' 'ग्लास टैंक', अपरिचित, उसकी रोटी, एक और जिन्दगी और फौलाद का आकाश आदि कहानियों का विषय यही है। इसी वर्स प्रकाशित 'एक एक दुनियाँ' जो कहानियाँ संकलित हैं वे वर्तमान परि-स्थितियों में अकेले होते जाते व्यक्तियों की ऊब और पीड़ा को अभिव्यक्त करती है। सन् 1969 का ही चौथा संग्रह 'मिले-जुले चेहरे' है। इसमें नई-पुरानी दोनों प्रकार की कहानियाँ है जिनमें अलग-अलग स्थितियों और संदर्भों से सम्बन्धिन कहानियों को स्थान मिला है। यह वह संग्रह है जिससे "मोहन राकेश की मृजनशीलता के लम्बे दौर का परिचय प्राप्त होता है। राकेश ने जीवन की विविध आधुतिक परि-स्थितियों और परिवेश से सम्ब्रन्धित व्यक्ति को समस्त सामाजिक अन्तर्विरोधों सहित देखा-परखा है। नारी के प्रति लेखक की गहरी सहानुभूति है। बदलते हुए पारिवारिक और सामाजिक परिवेश में नारी के प्रति बदलते मूल्यों को राकेश ने भली भाँति रेखांकित किया गया है।" वर्तमान रूप में ये चार सग्रह भी तीन में सिमट गये है— 'क्वार्टर', 'पहचान' और वारिस, ।

6

मोहन राकेश की कहानियाँ : वर्गीकरण और विश्लेषण

कहानी जैसी विधा का वर्गीकरण अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया है, किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिये और कतिपय निष्कर्षों व उपलब्धियों तक पहुँचने में इससे सुविधा अवश्य हो सकती है। राकेश का लेखन, उनकी कहानी लेखन की प्रक्रिया और उपर्युक्त कथा-यात्रा के परिचय के बाद उनकी कहानियों का वर्गीकरण जटिल नहीं रह जाता है। वे एक ऐसे कहानीकार रहे हैं जिनके कहानी-लेखन को सभी ने स्वीकार किया है। नयी कहानी के वर्गीकरण का प्रश्न राजेन्द्र यादव ने 'एक दुनियाँ समानान्तर' में भी उठाया है और उन्होंने अपने ढंग का वर्गीकरण प्रस्तुत भी किया है। किन्तु वह वर्गीकरण 'जनरलाइजेशन' का द्योतक है। उनके द्वारा किया गया वर्गीकरण यह है :[1]

1. **गुजरते साये** : इसमें वर्तमान पीढ़ी की परंपरागत सम्बन्धों के प्रति परिवर्तित जीवन-दृष्टि की कहानियों को लिया जा सकता है। इसमें पितृ वर्ग के प्रति परंपरागत श्रद्धा-भावना, उदासीनता और उपहास में परिवर्तित होती दिखाई गई है। इस वर्ग में राकेश की 'आर्द्रा' कहानी को लिया जा सकता है।

2. **प्रणय और परिणय** : इस वर्ग के अन्तर्गत उन कहानियों को स्थान प्राप्त है जो नारी-पुरुष के बदलते स्वरों को अभिव्यंजित करती हैं। एक दूसरे के प्रति आकर्षण के धरातल पर उत्पन्न रागभाव मनःस्थितियों में परिवर्तन के साथ विरक्ति और उदासीनता के धरातल तक जाता है। इस वर्ग में मोहन राकेश की 'अपरिचित' व 'फौलाद का आकाश' जैसी कहानियों को लिया जा सकता है।

3. **टूटा हुआ पुरुष** : इस वर्ग में जीवन की भागमभाग में उलझे व्यक्ति की बिखरती हुई, टूटती हुई स्थितियों के साथ-साथ परिस्थितियों द्वारा निर्धारित नियति के प्रति समर्पित पुरुष की कहानियों को स्वीकार किया गया है। राकेश की 'एक और जिन्दगी' 'मलवे का मालिक', पाँचवे माले का फ्लैट और जख्म आदि

---

1. राजेन्द्र यादव : एक दुनियाँ समानांतर, पृष्ठ 10

कहानियाँ टूटे हुए पुरुष वर्ग की कहानियाँ हैं। इसी वर्ग के अन्तर्गत ऐसी कहानियाँ भी आती हैं जिनमें जीवन के लिये संघर्ष करते और वर्तमान जीवन-क्रम में परिवर्तन के आकांक्षी पात्रों की स्थिति का उद्घाटन किया गया है।

4. **बिखरी हुई नारी :** इस वर्ग के अन्तर्गत उन कहानियों को परिगणित किया जा सकता है जिनमें आधुनिक नारी जीवन के विभिन्न सूत्रों को उनके मन में निहित लालसा के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। नारी-मन में निहित आकांक्षा का स्वरूप और उसके विभिन्न सन्दर्भ संवेदनात्मक दृष्टि के साथ प्रस्तुत हुए हैं। सम्पर्कों के लिये और संपर्कों से कटी हुई नारी के अन्तस् का उद्घाटन नयी कहानी की महत्वपूर्ण विशेषता है। इसमें नारी,-मनोविज्ञान के अछूते एवं अनोद्घाटित संदर्भों की प्रस्तुति मिलती है। पुरुष प्रधान समाज में जो सामाजिक ढाँचा और आर्थिक–व्यवस्था है, उसमें पुरुष के प्रति नारी का मन कुछ विशिष्ट भावों और संस्कारों से ग्रस्त है। नयी कहानियों में ऐसी कहानियों की संख्या बहुत बड़ी है जिनमें उपरिसंकेतित मन स्थिति, परिस्थिति और स्थिति का आलेख मिलता है। राकेश ने भी ऐसी अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी 'मिस पाल', 'सुहागिनें' और 'जानवर और जानवर' ऐसी ही कहानियाँ हैं जिनमें बिखरी हुई नारी के जीवन-सन्दर्भों को विश्लेषित किया गया है।

मैंने राजेन्द्र यादव द्वारा किये गये इस वर्गीकरण के साँचे में यद्यपि राकेश की कहानियों को रख दिया है, किन्तु फिर भी अनेक ऐसी कहानियाँ हैं जो इसमें नहीं आ पाती हैं। ऐसी कहानियों में 'परमात्मा का कुत्ता', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'सेफ्टी पिन', 'नये बादल', फटा हुआ जूता', हक हलाल, पहचान, मवाली, एक पंख युक्त ट्रेजेडी और नन्हीं आदि हैं। ये ऐसी कहानियाँ हैं जिममें प्रतीकवाद, बाल मनोविज्ञान, विघटित होते समाज, सामाजिक भ्रष्टाचार और रिश्वत व प्रयोगशील मनोवृत्ति का निरूपण हुआ है। ऐसी स्थिति में 'यादव' का वर्गीकरण पूरी तरह राकेश के कहानी-साहित्य पर लागू नहीं होता है। यद्यपि कोई भी वर्गीकरण शत-प्रतिशत सही नहीं हो सकता है फिर भी वह कम से कम ऐसा तो हो जो राकेश के कहानी-साहित्य को समझने में ठोस सहायता कर सके। डा० सुरेश सिन्हा ने भी श्री राकेश की कहानियों का वर्गीकरण किया है। उन्होंने राकेश की कहानियों को प्रमुखतः चार वर्गों में रखा है :[1]

1. **आदर्शवादी कहानियाँ :** मोहन राकेश की कहानियों का एक वर्ग आदर्शवादी कहानियों का है। इस वर्ग की कहानियाँ परिवर्तित संदर्भों में प्रेमचन्द

---

1. डॉ० सुरेश सिन्हा : नयी कहानी की मूल संवेदना, पृष्ठ 100

की परम्परा में आती है। 'मलवे का मालिक" मंदी और जंगला ऐसी ही कहानियाँ हैं। ये समष्टिगत चिन्तन को लेकर लिखी गई हैं।

2. **जिन्दगी का कटु यथार्थ :** राकेश की कहानियों का दूसरा वर्ग वह है जिनमें जिन्दगी के तीखे, तल्ख और कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। इस तरह की कहानियों में 'नये बादल' 'उसकी रोटी' और परमात्मा का कुत्ता' जैसी कहानियों को परिगणित किया जा सकता है।

3. **जटिल और पेचीदा कहानियाँ :** राकेश की कहानियों का वर्गीकरण करते हुए डॉ० सुरेश सिन्हा ने उसकी जटिल और पेचीदगी भरी कहानियों को तीसरे वर्ग में स्थान दिया है। इनमें 'मिस पाल', 'जानवर और जानवर' 'ग्लास टैंक', 'फौलाद का अवकाश' और 'जख्म' आदि कहानियों को रखा जा सकता है।

4. **यौन-संदर्भों की कहानियाँ :** राकेश की कहानियों का चौथा वर्ग उन कहानियों का है जिनमें 'सेक्स' का स्वर प्रमुख हो उठा है। ऐसी कहानियों ये 'गुनाह बेलज्जत', 'आखिरी सामान', 'वासना की छाया में', 'उर्मिल-जीवन', शिकार, फटा हुआ जूता, पांचवे माले का फ्लैट और 'सेफ्टीपिन' आदि प्रमुख हैं।

राकेश की कहानियों के इस वर्गीकरण के बाद डॉ० सिन्हा ने लिखा है कि अपनी अनुभूतियों को लेकर जो कहानियाँ राकेश ने लिखी हैं वे अधिक महत्वपूर्ण बन गई हैं। इनमें 'सुहागिनें' और 'एक और जिन्दगी' उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।"[1]

वस्तुत: राकेश की कहानियों का यह वर्गीकरण भी उचित प्रतीत नहीं होता है। कारण, यह है कि डॉ० सिन्हा ने जो वर्ग निर्धारित किये हैं वे सभी कहानीकारों के ऊपर लागू किये जा सकते हैं। साथ ही इन वर्गों में रखी गई कहानियों में कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें किसी दूसरे वर्ग में भी आसानी से रखा जा सकता है। उदाहरणार्थ यौन-संदर्भों से युक्त कहानियों को ही लीजिये। ये वे कहानियाँ हैं जिनमें व्यक्ति का अकेलापन, उसकी मानसिक बोझिलता, विडम्बना और महानगरीय जीवन की भयावहता को व्यक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इन कहानियों में व्यक्ति के माध्यम से महानगरीय सभ्यता से उत्पन्न भयावहता के संकेत मिलते हैं, किन्तु इतने पर भी इनका केन्द्र विन्दु व्यक्ति न होकर उसके आस-पास का संत्रास है—संतप्त और यातना-ग्रस्त जीवन है। ऐसी स्थिति में इस विभाजन का क्या औचित्य रह जाता है ? फिर 'सेफ्टी पिन' कहानी यदि राकेश की प्रयोगशीलता को उजागर करती है तो 'पाँचवे माले का फ्लैट' तो महानगरीय संत्रास को व्यक्त करती हुई टूटे हुए पुरुष की कहानी है। उसमें यौन-संदर्भों को प्रमुख स्वर सुनना

---

1. डॉ० सिन्हा : नयी कहानी की मूल संवेदना, पृष्ठ 101

कहानी की मूल संवेदना से अपरिचित होना ही हो सकता है।

इसी प्रकार डॉ० सिन्हा ने जटिल और पेचीदा कहानियों में 'ग्लास टैंक' 'फौलाद का आकाश' और 'जख्म' को रखा वहाँ तक तो ठीक है किन्तु 'जानवर और जानवर' कहानी में यह सब कहाँ है ? कैसे है ? हाँ जटिल और पेचीदगी भरी कहानियाँ राकेश ने लिखी तो हैं क्योंकि उनकी प्रयोगशील वृत्ति ने उनसे ऐसी कहानियाँ लिखाली हैं; किन्तु 'जानवर और जानवर' को इस वर्ग में घसीटने का औचित्य समझ में नहीं आता है। यह कहानी उस दौर की है जिसमें उसकी रोटी, मंदी और 'मलवे का मालिक' लिखी गई हैं। इस कहानी में यथार्थ का तीखा स्वर है, एक तरह की कड़ुवाहट है और है परिवेश से जुड़े रहने की अनिवार्यता। ध्यातव्य यह है कि यहाँ राकेश परिवेश से जुड़ने की अनिवार्यता से मुक्ति पाने को लालायित नहीं है, अपितु तात्कालिक शर्तों के अस्वीकार बोध के साथ-साथ जुड़े रहने के सार्थक बिन्दुओं के अन्वेषण में रत दिखाई देते हैं। कहानी के पात्र पीटर, पाल, आंट सैली और अनीता सभी पादरी के परिवेश से जुड़कर भी उससे अलग होने के उतने अभिलाषी नहीं हैं जितने कि उस परिवेश को अस्वीकारते हुए सार्थक बिन्दुओं की तलाश के लिये बैचैन हैं। यों यह कहानी उन पात्रों की है जो आर्थिक अभावों के कारण विवशता व पीड़ा सह रहे हैं। हाँ, इतना सब सहकर भी एक जिविषा उनमें है जिसके आधार पर यह कहानी सार्थक बिन्दुओं की तलाश के लिये बैचेन हैं। 'पाल' का यह कथन कहानी में निरूपित यथार्थ संदर्भ की व्यंग्यात्मक मुद्रा को प्रतीकाश्रित शैली में व्यक्त कर देता है : "मेरा मतलब है पादरी कि रात को हम गरीब जानवरों को गोली मारते हैं और सुबह गिरजे में उनकी रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं—इसका कुछ मतलब निकलता है।" इस पर पादरी का यह कहना कि "मतलब निकलता है और वह यह कि हर जानवर एक सा नहीं होता है। जानवर-जानवर में फर्क होता है"[1] कहानी निरूपित यथार्थ परिदृश्य की तलखी को और अधिक कटुता प्रदान कर देता है। नतीजा यह कि यह यथार्थ परिवेश को निरूपित करने वाली कहानी है। इसमें कोई पेचीदगी नहीं है। इसके संदर्भ, स्थितियाँ और पात्रों के साथ आये कुछ प्रतीक आदि सभी स्पष्ट और व्यंजक हैं।

यहाँ इस विवेचन का तात्पर्य केवल इतना ही था कि डॉ० सिन्हा द्वारा किया गया राकेश की कहानियों का वर्गीकरण भी अनुपयुक्त है, एकपक्षीय है। उसे निरापद नहीं कहा जा सकता है। यों राकेश ने अपने पाँचों कहानी-संग्रहों को

---

1. वारिस: जानवर और जानवर कहानी, पृष्ट 163

जब चार जिल्दों में बाँधा तो एक प्रकार से अपनी कहानियों में निरूपित स्थितियों, प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के आधार पर उनका वर्गीकरण भी स्वय ही कर दिया। यदि उनके चार संग्रहों 'आज के साये', रोयें रेशे', एक-एक दुनियाँ' और 'मिले जुले चेहरे' में चयनित और संग्रहीत कहानियों को देखें तो प्रत्येक में एक जैसी या उसी की मूल संवेदना से मिलती जुलती कहानियों को स्थान प्राप्त हुआ है। इस प्रकार उनकी कहानियों के चार वर्ग स्वतः ही बन जाते हैं :

1. समकालीन परिस्थितियों में जूझते-पिटते व्यक्तियों की कहानियाँ जिनमें सामाजिक जीवन का यथार्थ प्रतिबिम्बित है।
2. मानव-सम्बन्धों को सूक्ष्मता से व्यक्त करने वाली अनुभूतिप्रवण कहानियाँ।
3. व्यक्ति-व्यक्ति के अकेलेपन के बोध की प्रतिरूपक कहानियां जिनमें उसकी ऊब, उदासी, नीरस जिन्दगी और पीड़ा-कथा चित्रित है।
4. नये पुराने सम्बन्धों को निरूपित करने वाली वे कहानियां जिनमें परिवेश से सम्बद्ध व्यक्ति को उसके समस्त अन्तर्विरोधों और असंगतियों के साथ आकार प्राप्त हुआ है। इस वर्ग की कहानियों में मूल्यों का बदलाव सामाजिक और पारिवारिक पीठिका पर अभि-व्यक्त हुआ है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि राकेश की कहानियों का यही मूल स्वर है। इसमें प्रायः सभी प्रमुख प्रवृत्तियों को रेखांकित कर दिया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिये और कहानियों में निरूपित मूल संवेदना के औचित्यपूर्ण अभिव्यंजन के लिये मेरी दृष्टि में राकेश की कहानियों को निम्नांकित वर्गों में रखकर समीक्षित-परीक्षित किया जा सकता है। हाँ मेरा यह दावा तो नहीं कि इससे अच्छा और इतर कोई अन्य वर्गीकरण नहीं हो सकता, किन्तु इतना अवश्य है कि इससे राकेश की कहानियों का अध्ययन व्यवस्थित रूप से किया जा सकता है। वर्गीकरण इस प्रकार है :

1. सामाजिक जीवन के यथार्थ की प्रतिबोधक कहानियाँ
2. सूक्ष्म मानव-सम्बन्धों पर आधारित कहानियाँ
3. स्त्री-पुरुष की टूटन और अकेलेपन के बोध की कहानियाँ
4. महानगरीय संत्रास और भयावहता से सम्बद्ध कहानियाँ
5. विभाजन और पारिवारिक-विघटन की कहानियाँ
6. मनोवैज्ञानिक संदर्भों में लिखी गई कहानियाँ

7. प्रयोग की भूमिका पर लिखी गई शैल्पिक रचाव की कहानियाँ।

निश्चय ही यह वर्गीकरण कथ्य के आधार पर किया गया है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य माध्यम को स्वीकार करके किया गया वर्गीकरण राकेश की कहानियों की मूल प्रवृत्तियों से परिचित नहीं करा सकता है। आगे इसी वर्गीकरण के आधार पर राकेश की कहानियों की विवेचना की जा रही है।

विवेचन :

राकेश की मनोरचना मध्यवर्गीय चेतना से सम्बद्ध है। उनके जीवन में आई स्थितियों-परिस्थितियों की टकराहट, अनुभव और अनुभूतियाँ सबकी सब मध्यवर्गीय संस्कारों को निरूपित करती हैं। उनकी कहानियों में अनुभव की निजता है, किन्तु वह परिवेशबद्ध होकर निरंतर सामाजिक भूमिका पर उतरती गई है। आधुनिक कहानीकारों में राकेश ही एक ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने जीवन के वास्तव को अपने स्तर पर भोगकर कहानियों के शिल्प में ढाल दिया है। जीवन का यथार्थ शरबत नहीं कुनेन की वह गोली है जिसे अनुभव की जुबान पर रखें तो वह तो कड़वी हो ही जाती है, उसे अभिव्यक्ति देने वाली शैली भी उससे अप्रभावित नहीं रह सकती है। यथार्थ की यह कड़वाहट कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप से राकेश की कहानियों में मिल ही जाती है। कुछ समीक्षकों की मान्यता है कि राकेश के लेखन में अनुभव का अपनापन भले ही हो और गहरा हो, किन्तु वह व्यापक नहीं है। यह उनके प्रगतिशील चिंतन की महत्वपूर्ण सीमा है। 'यायावरी जीवन को जीकर भी उन्होंने एक ठहरा हुआ चाकू जैसी एकाध कहानियों को छोड़कर जीवन को व्यापक संदर्भों में नहीं उठाया अपने मुताबिक कुछ नुक्ते उठाये हैं जो मनुष्योचित सामर्थ्य का प्रतिनिधित्व नहीं करते।'[1] जीवन के व्यापक संदर्भों के अभाव की शिकायत राकेश की कहानियों के संदर्भ से डॉ० नामवरसिंह को भी रही है। इसी कारण उन्होंने लिखा है कि 'अपने आसपास के वातावरण में उड़ती हुई कहानियों को पकड़कर निस्सन्देह मोहन राकेश ने उन्हें उतनी ही तेजी के साथ व्यक्त किया है जो मन में एक फ्लैश की तरह कौंध जाती है। लगता है उन्होंने अभी बिजली की कौंध ही पकड़ी है, बिजली की वह शक्ति नहीं पकड़ी जिसका उपयोग हम अपनी सीमा में उष्णता तथा आलोक के लिए कर सकें जो कि मनुष्योचित सामर्थ्य का प्रतीक है।[2] यह तो ठीक है कि राकेश की कहानियों में उनके आसपास का परिवेश प्रतिबिम्बित है, किन्तु जब हम यह मान लेते हैं कि अनुभव का प्रत्येक क्षण जीवन में हर बार कुछ

---

1. डॉ० लक्ष्मण दत्त गौतम : आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना, पृ. 454
2. डॉ० नामवरसिंह : कहानी नयी कहानी, पृ. 36

नया जोड़ देता है तो जो कलाकार अपने परिवेश के हर परिवर्तित क्षण के मुहाने पर सतर्क हो, उसके लेखन में व्यापकता के अभाव की शिकायत हठधर्मिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ? यों भी बिजली की कौंध में यदि परिवेश को तीव्रता से उजागर करने की क्षमता है तो फिर उसके अभाव को शिकायत उस कहानीकार की कहानियों में कैसे की जा सकती है जो हर अनुभूत क्षण में एक कहानी कसमसाती हुई देखता हो । मेरी दृष्टि में राकेश की कहानियों में परिवर्तित परिस्थितियों, बदले हुए परिवेश में साँस लेते व्यक्ति के सम्बन्धों, एक विशेष व्यवस्था से बँधे रहने की अनिवार्यता को ढोते जाने की विडम्बना और महानगरीय संत्रास की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है । उनकी कहानियाँ उनके कहानी लेखन के प्रारंभिक वर्षों से लेखन के चरमोत्कर्ष तक के परिवेश को कलात्मक अन्विति के साथ प्रस्तुत करती है । अतः मैं सोचती हूँ कि राकेश की कहानियों की उपलब्धि काल सापेक्ष है । मेरी इस मान्यता की पुष्टि राकेश के इन शब्दों से हो सकती है—मेरे लिए नयी कहानी की दृष्टि अपने संदर्भों में रहकर उनके अंदर से अपने समय और परिवेश को आँकने की दृष्टि है जो हर बार हर नये प्रयोग में यथार्थ को उसकी सजीवता में व्यक्त करने की एक नयी कोशिश करती है ।[1] स्पष्ट है कि राकेश का कहानी लेखन परिवेश के यथार्थ से पुष्ट और परिवर्तित परिस्थितियों में विकसित नये मूल्यों और मानवीय सम्बन्धों का लेखन है ।

यथार्थ की प्रतिबोधक कहानियाँ

राकेश के कहानी लेखन में सब से पहला वर्ग उन कहानियों का है जो यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए लिखी गयी हैं । उन्होंने जब लिखना प्रारंभ किया तो पहले पहल कुछ ऐसी कहानियाँ लिखीं जिनमें प्रेमचंद की परम्परा को समकालीनता से जोड़कर नये परिदृश्य में लिखा गया है । इसी कारण डॉ० धनंजय वर्मा और डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जैसे समीक्षकों ने राकेश के प्रारंभिक कहानी लेखन को प्रेमचंदीय कहानी परम्परा का विकास स्वीकार किया है । राकेश की जिन कहानियों में यथार्थ प्रतिबिंबित है वह एकपक्षीय न होकर क्रियात्मक है । उसका एक सिरा सामाजिक संदर्भों से समकालीन परिवेश से, दूसरा सिरा व्यष्टि चिन्तना से और तीसरा पारिवारिक विघटन, नगर बोध और देश के विभाजन से उत्पन्न समस्याओं से जुड़ा हुआ है । वास्तविकता यह है कि राकेश के कहानी लेखन यथार्थ का जो समायोजन है, वह प्रमुखतः सामाजिक धरातल पर अभिव्यक्त हुआ है । ऐसी कहानियाँ जो सामाजिक संदर्भों की पीठिका पर यथार्थपरक सामाजिक दृष्टि को उभारती है, उनका प्रतिपाद्य समय से जुड़ा हुआ है । यह यथार्थ राकेश की गहरी अन्तर्दृष्टि, प्रचेता बुद्धि और सामाजिक दायित्व के निर्वाह की भावना से वलयित है । यही

1. मोहन राकेश : परिवेश, पृ. 203

कारण है कि ऐसी कहानियों में जो अनुभूति का स्तर है वह सीधे परिवेश, समय और समकालीन वातावरण से जुड़ा हुआ है। स्वयं राकेश की धारणा है कि ऐसी कहानियों में वे व्यक्ति, परिवार' परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से समूचे मानव-समाज से प्रतिबद्ध हैं। परिवेश की प्रतिबद्धता उनमें लेखकीय ईमानदारी को व्यक्त करती है।

प्रेमचंद ने जहाँ यथार्थ को उसकी परिणति में आदर्श के रंगों में रंग दिया था, वहीं राकेश अपनी कहानियों में उसे यथावत् छोड़ देते हैं। जहाँ कहीं उन्हें आदर्श की आवश्यकता अनुभव हुई है वहीं उनकी कहानी-कला में कच्चापन आ गया है, किन्तु संतोष का विषय है कि प्रारंभिक स्तर की एक दो कहानियों को छोड़कर ऐसी स्थिति नहीं आने पायी है। शुद्ध यथार्थ को अभिव्यंजित करने वाली कहानियों में मन्दी, मलवे का मालिक, उसकी रोटी, नए बादल, फटा हुआ जूता, हक हलाल, परमात्मा का कुत्ता और जानवर और जानवर जैसी कहानियों की गणना की जा सकती है। मंदी एक ऐसी कहानी है जिसमें सीजन समाप्त होने के बाद पहाड़ों की आर्थिक विषमता और विपन्नता को निम्न मध्यवर्गीय लोगों की जिंदगी से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। 'मलवे का मालिक' यद्यपि भारत-पाकिस्तान-विभाजन की कृत्रिमता और उससे उत्पन्न मानव मूल्यों को निरुपित करने वाली कहानी है, किन्तु उसमें जो परिदृश्य उभरा है वह यथार्थ से पुष्ट एवं अनूरंजित है। इसमें परिवेशगत यथार्थ और जीवन-बोध का सीधा दबाव पात्रों पर पड़ता है। इसमें आये पात्र न केवल समकालीन जीवन के दवाव को झेल रहे हैं, अपितु उनका वैयक्तिक यथार्थ भी त्रासद, और दंशक है। 'उसकी रोटी' भी जिस यथार्थ को अभिव्यक्ति करती है वह कृत्रिम नहीं है। यद्यपि इस कहानी का प्रत्यक्ष 'कैनवस' छोटा और साधारण है, पर यह जिस परोक्ष की ओर उँगली उठाती है वह न तो छोटा है और न साधारण। इस कहानी के संबंध से डॉ० लक्ष्मण दत्त गौतम ने ठीक ही लिखा है कि यह एक ऐसी कहानियों में से है जिसे प्रेमचंद की विकसित परम्परा में रख सकते हैं। यहाँ परम्परा में आस्था के स्वर को मंद नहीं होने दिया गया है। यथार्थ की कड़वाहट में भी संस्कारों की शुद्ध आस्था की मधुरिमा, सांस्कृतिक गरिमा को देश-विदेश की निधि के रूप में अपने से जुड़े रहने की भावना है। कमाल यह है कि लेखक बिना भावुक हुए पाठक को विभोर कर देता है।[1] वस्तुतः पाठक और कहानी के बीच लेखक कहीं नहीं आने पाया है और उसकी यही निस्संगता इसे सफल यथार्थवादी कहानी बना देती है।

---

1. डा० लक्ष्मण दत्त गौतम : आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना, पृ. 459

'नये बादल' कहानी का प्रारंभ जिस ढंग से होता है और उसकी परिणति जिस बिन्दु पर जाकर होती है वह यथार्थ से जुड़ी हुई है। कुछ विशिष्ट अवसरों पर धर्मशाला के चौकीदार आगन्तुकों के साथ जैसा व्यवहार करते हैं तथा कुछ लोगों से पैसे वसूल कर रहने की जगह दे देते हैं, भले ही वे बहुत समय से आए और चिरप्रतीक्षित लोग तकलीफ पाते रहें। प्रस्तुत कहानी में भी यही स्थिति निरूपित है। धर्मशाला के चौकीदार का यह कहना है कि 'पैसे लेकर तो वह ईमानदारी से कह सकता था कि वे लोग औरों से पहले उसके पास आए हैं। इसलिए कमरों पर पहला हक उन्हीं का है।[1] इस कथन से न केवल चौकीदार की मनोवृत्ति स्पष्ट होती है अपितु सार्वजनिक स्थानों पर चलने वाले अनैतिक और भ्रष्टाचारपूर्ण कार्यों पर भी प्रकाश पड़ता है। इतना ही नहीं कहानी के अंतर्गत एक परम्परावादी व्यक्ति के मानसिक उद्वेलन को भी स्पष्ट किया गया है। चौधरी के मन में दो नावागन्तुकों और एक नवयुवती के एक ही साथ होने को लेकर अनेक प्रश्न उठते हैं। कभी तो चौधरी उनमें भाई बहन का रिश्ता कायम करता है और कभी पति पत्नी के सम्बन्धों को तलाशता है, किन्तु नवयुवती का कौमार्य चौधरी को ऐसा विश्वास भी नहीं करने देता। कहने का तात्पर्य यह है कि राकेश ने इस कहानी में जिस यथार्थ को प्रतिरूपित किया है वह एक ओर तो सामाजिकता से जुड़ा हुआ है और दूसरी ओर स्त्री पुरुष के साथ साथ रहने से उत्पन्न समस्या को परम्परावादिता के माध्यम से उजागर किया गया है। इसके लिए लेखक ने व्यंग्यात्मक पद्धति का सहारा लिया है। 'परमात्मा का कुत्ता' भी एक ऐसी ही कहानी है जिसमें लेखक ने अन्याय अत्याचार शोषण और ऐसे ही अमानुषिक कृत्यों और तत्वों के प्रति अपनी झुँझलाहट व्यक्त की है। इतना ही नहीं इस अभिव्यक्ति में लेखक ने अत्यन्त साफ जुबान में सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, निष्क्रियता, घूसखोरी और अन्याय से ग्रस्त वातावरण में उपेक्षित, मर्दित आदमी का चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में किया है। राकेश ने न्याय पाने के लिए भौंकने वाले सामान्य व्यक्ति के भौंकने को नियति के स्तर पर ही नहीं छोड़ दिया है उसमें विद्रोह का अर्थ एक और उपलब्धि भी प्राप्त करता है। भौंकने से व्यवस्था की जड़ता टूटती है, कान में तेल डालकर सोये हुए अफसरों की तन्द्रा टूट जाती है। इसी कारण परमात्मा का कुत्ता कहता है, 'चूहों की तरह बिटर बिटर देखने से कुछ नहीं होता। भौंकों भौंके सबके सब भौंकों अपने आप सालों के कान फट जायेंगे।[2] वस्तुतः राकेश की कहानियों में जिस

1. वारिस : नये बादल कहानी : पृष्ठ 57
2. वारिस : परमात्मा का कुत्ता, पृष्ठ 92

सामाजिक यथार्थ से संबन्धित परिदृश्य को उभारा गया है, उसमें व्यंग्य बोध भी उसके पार्श्व में खड़ा हुआ है। ऐसा लगता है जैसे राकेश झिंझोड़ देने वाले, तिलमिला देने वाले व्यंग्य से काम लेते हैं।[1] व्यंग्य बोध की पीठिका पर यथार्थ का चित्रण अधिक सहज, अधिक विश्वस्त और प्रभावी प्रतीत होता है। यथार्थ के निरूपण में राकेश भावुकता का वरण करते हुए कहीं भी द्रवित नहीं होते हैं। इसके विपरीत वे तो तीखी भाषा का प्रयोग करके वर्ण्य संदर्भ को और गहरा बना देते हैं। यही स्थिति 'जानवर और जानवर' कहानी की भी है। इसमें यथार्थ का कड़वा और तीखा स्वर है। कहानी के पात्र अपनी विवशता के कारण पादरी से जुड़े हुए हैं। उनमें आर्थिक अभावों से उत्पन्न पीड़ा गहरे यथार्थ का बोध कराती है। जिस वर्ग के ये पात्र हैं, उस वर्ग की समस्त यातना-गाथा और विडम्बनाएँ पीटर, पाल, आण्ट मैली और अनीता के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। ध्यान देने की बात यह है कि अपनी विडम्बनाओं को सहते हुए भी इन पात्रों में अभी भी कहीं न कहीं जीवन का स्पन्दन है जिसका स्वर पाल की वाणी में सुना जा सकता है। जिस समय पाल के गिरजाघर न जाने पर पादरी उससे प्रश्न करता हुआ यह कहता है, 'तुम जानते हो जो अच्छा भला होकर भी सुबह गिरजे में नहीं आता उसे यहाँ रहने का अधिकार नहीं है'[2] उस समय की पाल की मनस्थिति का चित्रण राकेश ने जिस कलम से किया है, वह यथार्थ परिदृश्यों के बाह्य रूप को उभारने में ही कुशल नहीं है, अपितु भीतरी संदर्भों को प्रतिरूपित करने में भी पर्याप्त सक्षम प्रतीत होती है। राकेश का यथार्थ चेता कलाकार ऐसे स्थलों पर जिस शैल्पिक संयोजना को अपनाता है, वह उनके समकालीनों में कहाँ है उसमें अनुभूति की प्रमाणिकता है। राकेश ने 'जानवर और जानवर' कहानी के माध्यम से पहाड़ी स्कूल की विशिष्ट परिस्थिति में जीत, उसे भोगते और झेलते मास्टर और मेट्रनों की जीवन-व्यापी विवशता, पराश्रित भावना और अरक्षित स्थितियों की ओर संकेत किया है। फादर 'फिश' का चरित्र काली सियाही से लिखा गया है, अनीता और मणि नानावती को वासनापूर्ति का माध्यम बनाया गया है, अधिकारों की शक्ति का प्रयोग करते हुए पादरी जिस तरह अनाचार, अनीति और भ्रष्ट तरीकों को अपनाता चित्रित किया गया है, उससे कहानी का परिवेश और वातावरण यथार्थ की गवाही देने लगा है। इससे यथार्थ को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिये व्यंग्य का सहारा लिया गया है। इससे प्रमाणित होता है कि इस कहानी की रचना-प्रक्रिया

---

1. दूधनाथसिंह : विवेक के रंग, पृष्ठ 374
2. मोहन राकेश : वारिस : जानवर और जानवर कहानी, पृ० 163–164

व्यंग्य के स्तर पर है। व्यंग्य के छींटे इस रचना में जान डाल देते हैं और 'जानवर' का प्रतीक इसके अंशों को बिखरने नहीं देता है। अन्त में गिरजे की घंटियों का डिंग डांग मिशन के अहाते की सतही, नकली और खोखली जिन्दगी को मुखरित करता है।[1]

नारी

'हक हलाल' राकेश की एक ऐसी कहानी है जिसमें निम्नवर्गीय जीवन में साँस लेती, पैसे के सामने अनेक अत्याचारों को सहती नारी की स्थिति का यथार्थ अंकन हुआ है। कहानी का पात्र 'पण्डित' अपनी पण्डितानी के भाग जाने पर उसके बदले में (जब तक वह लौटकर न आये तब तक के लिये) उसकी छोटी बहिन को ले आता है। उसकी पत्नी लौट भी आती है, किन्तु फिर भी वह अपनी साली को वापस नहीं भेजता और अपने वासनामूलक अत्याचारों पर पर्दा डालता हुआ यही कहता है : 'वह अब कहाँ जायेगी जी ?, पण्डित बोला मैंने आपसे कहा था, उसका बहुत गरीब आदमी है। उसके पास इसे खिलाने के लिये एक पैसा भी नहीं है। उसको उसका सौ-सवासौ चाहिए सौं मैं ही उसे दे दूँगा। इतने दिनों से घर में रही है, सो अब छोड़ने को मन नहीं करता। आदमी को आदमी से मोह हो जाता है। और क्या पता कल को बड़ी फिर भाग जाए। ऐसी का कोई भरोसा थोड़े ही हैं।[2] पण्डित का यह कथन जहाँ साधन सम्पन्न पुरुष की विलासिता, अनैतिकता और भ्रष्ट मनोवृत्ति को रेखांकित करता है वहीं नारी जाति पर किये गये अमानवीय व्यवहारों को भी स्पष्ट करता है। एक ओर साधन-सम्पन्नता और विलासिता है तो दूसरी ओर नारी की निरीहता, करुणा और विवशता इन सबसे मिलकर कहानी यथार्थ-परिदृश्य की उद्घाटिका प्रतीत होती है। नारी की असहायता पर पुरुष की यह अत्याचार-कथा बहुत पुरानी है; किन्तु राकेश ने उसे जिस स्तर से उठाया है, उस पर आकर यह कहानी खासी यथार्थवादी है। इसका यथार्थ पण्डित के यथार्थ से जुड़कर भी परिवेश से कटा हुआ नहीं है।

'फटा हुआ जूता' राकेश की एक ऐसी कहानी है जिसमें 'आज की पीढ़ी' की भटकन और आर्थिक विपन्नता का चित्रण 'मिस्टर राय' के सहारे किया गया है। 'राय' कर्ज के बोझ को ढोता हुआ एक ऐसा इन्सान है जिसके मन में व्यवस्था के प्रति विद्रोह है, अपने ढंग से जीने की भावना है, किन्तु यह सब है मानसिक स्तर पर ही। वह व्यवस्था में घुटता है और कुण्ठित अनुभव करता है, किन्तु उससे निकलने का कोई प्रत्यक्ष प्रयत्न नहीं करता है। यों उसके मन की स्थिति यह है : 'राय ने सोचा

---

1. डा० इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी कहानी अपनी जुबानी, पृ० 116
2. वारिस : हक हलाल, पृ० 153

ग्रौर सोचकर निश्चय किया कि जीना हो तो उसे ठीक से जीना चाहिये। यह ग्रंग-ग्रंग में ऊँघती हुई शिथिलता. यह खाना-सोना ग्रौर बीतना बरसों से खेली हुई ताश की तरह घिसा हुग्रा जीवन, यह सब बदलना चाहिए।"[1]....राय की यह जिजीविषा यथार्थ की कटुता से ग्राक्रान्त होकर भी बड़ी हुई है। वह जड़ता को बहिष्कृत करना चाहता है, व्यवस्था को तोड़ना चाहता है ग्रौर एक परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में साँस लेना चाहता है। फलतः उसके मन में बगावत का भाव पैदा होता है। वह सबके प्रति बगावत करना चाहता है–ग्रपने प्रति, कमरे के प्रति, उसकी छत ग्रौर दीवारों के प्रति ग्रालमारियों में रखे चीरफाड के ग्रौजारों के प्रति ग्रौर मालिक से लेकर गुजराती ढाबे के वैरे तक के प्रति उसके मन में विरोध जन्म लेता है, किन्तु इनाम में प्राप्त तीस रुपये के नोटों की ग्राकृतियाँ उसके बगावत वाले भाव को दबा देती हैं। ग्रार्थिक विपन्नता में पल रहे राय के मन में जूते पहनने की इच्छा जगती है, किन्तु बाजार में जाकर हर चीज को देखता है लेता-खरीदता कुछ नहीं। वह टेबुल लैंप, नेकटाइयाँ, जूते, चायदानी, साबुनदानी, घड़ी का फीता, रूमाल, बरसाती, मौजे का जौड़ा, मफलर, बिस्कुट का डिब्बा, फाउन्टेन ग्रौर सिगरेट केस जैसी ग्रनेक चीजों के भाव पूछता है, किन्तु हर जगह यह दिक्कत ग्राती है कि जहाँ दाम ठीक थे वहाँ चीज ग्रच्छी नहीं थी ग्रौर जहाँ चीज मनपसंद थी वहाँ दाम जरूरत से ज्यादा थे।[2] ग्रन्त में वह ग्रपनी इच्छावश एक होटल में भी जाता है, किन्तु वहाँ भी बिनाखाये-पीये एक एंग्लोइन्डियन लड़की की सिगरेट पीकर बाहर ग्रा जाता है क्योंकि उसकी दृष्टि या तो 'मीनू' की कीमतों में ही उलझ कर रह जाती है या फिर 'जेनी डिसूजा' के शरीर की गोलाइयों पर घूमकर यथावत रह जाती है। वह न जूते खरीद पाता है ग्रौर न कुछ। इस प्रकार राकेश की यह कहानी ग्रार्थिक ग्रभावो की चक्की में पिसते हुए युवक की कहानी बनकर रह गई है। हाँ इसमें ग्रभाव ग्रस्त जीवन जीने वाले युवक की मनोभावनाग्रों, ग्राकांक्षाग्रों ग्रौर जिजीविषा को यथार्थ परिप्रेक्ष्य में उभारा गया है। इसका यथार्थ ग्रारोपित ग्रौर कृत्रिम नहीं है। उसमें सामाजिक जीवन का एक हिस्सा पूरी सच्चाई के साथ उभरा है।

इस प्रकार राकेश की सामाजिक यथार्थ की प्रतिबोधक कहानियों में समकालीन जीवन के विविध संदर्भ ग्रंकित हुए हैं। ग्रंकन की इस प्रक्रिया में कहीं ग्रार्थिक ग्रसमानता, विपन्नता ग्रौर तज्जनित कुंठाग्रों के चित्र उभरे हैं तो कहीं इन्सानी खाल ग्रोढकर जानवरों के व्यवहार में पटु व्यक्तियों पर व्यंग्य है। कहीं शासन-व्यवस्था

---

1. वारिस : फटा हुग्रा जूता, पृ० 132
2. वारिस : फटा हुग्रा जूता, पृष्ठ 139

नौकरशाही के प्रति आक्रोश भरा विद्रोही स्वर है, कहीं नाजायज तरीकों से पैसा ऐंठने पर व्यंग्य है तो कहीं साधन-सम्पन्नता के नाम पर विवश नारी की स्थिति का यथार्थ और प्रभावी अंकन है। इस प्रकार राकेश की यथार्थ को निरूपित करने वाली इन कहानियों में परिवार, समाज और राष्ट्र सभी की गतिविधियों व जीवन-प्रणाली को प्रभावी शिल्प में बाँधकर प्रस्तुत किया गया है। ये कहानियाँ प्रेमचंदीय परंपरा को समकालीन संदर्भों से विकसित करने वाली कहानियाँ हैं। यहां कहानीकार की यथार्थ दृष्टि प्रगतिशील के सूक्ष्म स्तरों का स्पर्श करती चित्रित की गई हैं। वस्तुतः यथार्थ का परिदृश्य प्रस्तुत करने वाली ये कहानियाँ राकेश की उस छटपटाहट को व्यक्त करती हैं जो नया परिवेश और शिल्प पाने के लिए सतत प्रयत्नशील है और अंततोगत्वा 'एक और जिन्दगी' जैसी श्रेष्ठ कहानी तक पहुँच ही जाता है।[1]

मानव-सम्बन्धों को निरूपित करने वाली कहानियाँ :

राकेश की कहानियों का दूसरा वर्ग उन कहानियों का है जिनमें सूक्ष्म मानव सम्बन्धों का निरूपण हुआ है। स्वतंत्र्योत्तर काल मे भारतीय परिवेश और जनमानस में एक उत्क्रान्ति आई है। आदर्श और मर्यादाओं के मलबे पर यथार्थ और नये मान मूल्यों को स्थापित किया गया है। जीवन की सपाटता और सिधाई में असंगतियाँ, विषमतायें और अनेक विडम्बनाओं ने अड्डा जमा लिया है। मनुष्य समाज से कटा है और अपने इस कटने-टूटने और बिखरने में वह नितांत अकेला छूटता गया है। अकेलेपन, ऊब, उदासी और पीड़ा के साथ-साथ उसमें अनेक अन्तर्विरोध जन्मे हैं। कस्बाती जीवन की अपेक्षा मनुष्य में नगरबोध पनपा है। परिणामस्वरूप महानगरीय जीवन की भीड़ में आदमी खोया भले न हो, किन्तु लुट-पिट अवश्य गया है। जहाँ परिवेश में इतना बदलाव आया हो वहाँ मानव-सम्बन्धों में परिवर्तित दृष्टि का विकसित होना स्वाभाविक तो है ही, सहज और अनिवार्य भी है। गाँव के उजड़ने और नगरों के आबाद होने से व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्ध बदले हैं। पिता के प्रति पुत्र का आक्रोश बढ़ा है, पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव का विकास हुआ है और वह आत्मिक सम्बन्ध न केवल शारीरिकता के धरातल पर आया है वरन् वहाँ भी दोनो एक दूसरे को झेलते जाने या कहूँ कि निभाते जाने की सीमा में सिमट कर रह गये हैं। वे तनाव और असमंजस की स्थिति में जी रहे हैं। पहले का वह दाम्पत्य जीवन जो कभी विश्वास के पगों चलता और समर्पण के मैदान में खेलता था आज वही संदेह और अविश्वास की वैसाखियों के सहारे चल रहा है। जहाँ दिल के अतल में कभी प्यार जगमगाता था, वहीं अब अहं के गुब्बारे में भरी हुई नफरत की हवा डोलती

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 179।

है। परिणाम यह कि मानवीय सन्बन्ध मात्र औपचारिकता, विवशता, अभिशप्त जीवन और ऊब व अकेलेपन के पर्याय बनकर रह गये हैं। परिवेश का यह मानचित्र नयी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर 'मोहन राकेश' की अनेक कहानियों में उभरा है। यों तो राकेश ने व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों को विशदता से अपनी कहानियों में चित्रित किया है, किन्तु उनका ध्यान अधिकतर पति-पत्नी के सम्बन्धों तक ही केन्द्रित रहा है। नये कहानीकारों ने यदि सबसे अधिक किसी पर लिखा है तो पति-पत्नी के टूटते हुए सम्बन्धों पर। आज स्त्री पुरुष के साथ रहना तो चाहती है लेकिन कौनसा—पारिवारिक, सामाजिक और सार्वजनिक स्तर पाकर, अभी तक निर्णय नहीं पाई है। पुरुष भी नारी की आवश्यकता तो अनुभव करता है, किन्तु कितनी और कैसी वह भी निश्चित नहीं कर पाया है।

मोहन राकेश ने अनेक ऐसी कहानियाँ लिखी हैं जिनमें नर-नारी के सम्बन्धों को अभिव्यक्ति मिली है। ऐसी कहानियों में सुहागिनें, एक और जिन्दगी, खाली, अपरिचित, चौगान, फौलाद का आकाश, सेफ्टी पिन, मिस पाल और आखिरी सामान आदि को लिया जा सकता है। मानवीय-सम्बन्धों के ह्रास की शृंखला में ही वे कहानियाँ भी आती हैं जिनमें पिता-पुत्री के संबंध और भाई-बहिन के सम्बन्धों का ह्रास भी चित्रित है। 'वासना की छाया', रोजगार और मिट्टी के साये आदि इस प्रकार के सम्बन्धों के ह्रास को निरूपित करने वाली कहानियाँ हैं। इसी क्रम में राकेश ने कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी हैं जिनमें मानवीय सम्बन्धों का आधार आर्थिक रहा है। धन-दौलत की तराजू में तुलकर मानव-सम्बन्धों की जो नियति हुई है उसे राकेश की 'बनिया बनाम इश्क', गुनाह बेलज्जत औरहक-हलाल जैसी कहानियों में देखा जा सकता हैं। अतः स्पष्ट है कि राकेश के कहानी-साहित्य में सूक्ष्म मानव-संबंधों के टूटने और निरंतर ह्रासोन्मुखी होते जाने को निम्नांकित आधारों पर अभिव्यक्ति किया है :

1. पति-पत्नी के सम्बन्धों में आई तनावमयी स्थितियों व अनमेल रूचियों से।
2. पिता-पुत्र, पिता-पुत्री और भाई बहिन के सम्बन्धों की कटुता से।
3. आर्थिक आधार पर खड़े मानवीय सम्बन्धों के कच्चेपन से।

'एक और जिन्दगी:' नारी-पुरुष के वैवाहिक जीवन के संघर्ष से जूझते दम्पत्ति की कहानी है। 'प्रकाश'और 'बीना, पति-पत्नी रह चुके हैं, किन्तु तालमेल न बैठ पाने के कारण तलाक के बिन्दु पर आ पाते हैं। प्रकाश फिर अपने एक मित्र की बहिन निर्मला से विवाह कर लेता है जो अर्द्ध विक्षिप्ता निकलती है। उससे ऊबकर प्रकाश घूमने पहाड़ पर जाता है जहाँ उसे अपनी परित्यक्ता और उसका पुत्र 'पलाश' मिलते हैं। यही वह बिन्दु है जहाँ से कहानी प्रारंभ होती है। निर्मला के व्यवहार से टूटा हुआ प्रकाश पहाड़ पर चला तो जाता है, किन्तु वहाँ पलाश उसे बाँध लेता है। फलतः वह अपने जीवन के अभावग्रस्त होने वाली टीस से एक दम बेचैन हो उठता

है। जीवन का यहाँ एक दूसरा ही रूप उजागर होता है। इससे प्रकाश के जीवन में आई कटुता–'ट्रेजिक फीलिंग' उसे तोड़ तो देती ही है, कहीं बहुत गहरे मानव-संबंधों का एक नया अध्याय भी खोल देती है। दाम्पत्य जीवन के सम्बन्धों की समस्यास्नेहिल सम्बंधों की भूमिका पर उतर आती है। उधर संवेदना के धरातल मानवीय रागबोध से झंकृत होते हैं। सारे अजनबीपन और दूरी के बावजूद मानवीय व्यवहार कहीं न कहीं मानवीय राग को छू जाता है। इस कहानी में जो पीड़ा विगलित ऊब और उदासी है वह मानव-सम्बन्धों की पुनर्व्याख्या भी है और एक अवश अकेलेपन व निरर्थकता बोध से आक्रान्त भी है। इसमें निरूपित पीड़ा गलत चयन का परिणाम है। वस्तुतः राकेश ने एक युगल के माध्यम से उन सभी की पीड़ा को संकेतिक किया है जो अपने चयन में भटक गये हैं अथवा कहें कि जीवन के तथ्यात्मक रूपों से विछल गये हैं। अत; यह कहना उचित ही प्रतीत होता है कि मानवीय अस्तित्त्व रूप की यह आंतरिक टूटन संस्कार विगलित अस्तित्व का यह कोना, प्रत्येक अस्तित्वमय का अपना निजी रूप है और 'एक और जिन्दगी' में चलने वाली जीवन की कहानी न केवल प्रकाश की कहानी है, वलिक उन सभी अस्तित्व रूपों की कहानी है जो अपने मूल चयन से भटके हैं।[1]

स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को निरूपित करने वाली यह कहानी अपनी ईमानदारी में अकेली है। इसके प्रकाश और बीना अलग-अलग नौकरी करते हैं। उनके जीवन में आने वाला बच्चा भी उन्हें एक सूत्र में बाँध नहीं पाता है : 'बीना समझती थी कि इस तरह जान बूझकर उसे फँसा दिया गया है और प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे एक कसूर हो गया है "[2] बच्चे की वर्षगाँठ इस दम्पति के जीवन की ही गाँठ बन जाती है। यही गाँठ पुनः पहाड़ी इलाके में खुलने लगती है। लेखक ने बहुत ही प्रतीकात्मक ढंग से इन दोनों के बीते हुए जीवन के तनावों और संवेदनों को रूपायित करते हुए वर्तमान जीवन-बिन्दु पर उभरने वाले रागात्मक स्तरों की पहचान कराई है।[3] राग-सम्बन्धों की तरलता बिछुड़ने के समय स्फुट होते जाने का आभास देने लगती है। इसमें प्रभाव की जो सघनता है वह अलग होने की नियति से बँधी हुई है। सूक्ष्म मानव-सम्बन्धों की यह रागात्मक तरलता कहानी में प्रत्यक्षतः इस कथन से टूटती दिखाई गई है : "फिजूल की भावुकता में कुछ नहीं रखा है। बच्चे-अच्चे तो होते ही रहते हैं। सम्बंध-विच्छेद करके फिर से ब्याह कर लिया जाये तो घर में और बच्चे आ जायेंगे। मन में इतना ही सोच लेना होगा कि इस बच्चे के

---

1. डॉ० श्यामसुन्दर मिश्र : अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य, पृ 283
2. मोहन राकेश : वारिस एक और जिन्दगी कहानी, पृष्ठ 16
3. डॉ० रामदरश मिश्र : आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि, पृष्ठ 1833

साथ कोई दुर्घटना हो गई।"[1] इसी स्थल पर भावुकता को मसलकर यथार्थ से काम यों सोचकर भी लिया गया है : "कितने इन्सान हैं जिनकी जिन्दगी कहीं न कहीं, किसी न किसी दोराहे से गलत दिशा की तरफ भटक जाती है। क्या यह उचित नहीं कि इन्सान उस रास्ते को बदलकर अपने को सही रास्ते पर ले जाए। आखिर आदमी के पास एक ही तो जिन्दगी होती है–प्रयोग के लिए भी और जीने के लिए भी। तो क्यों आदमी एक प्रयोग की असफलता को जिन्दगी की असफलता मानले।"[2] कहने की आवश्यकता नहीं कि यह कहानी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की कटुता, जटिलता और उससे आई अकेलेपन की स्थितियों की प्रतिरूपित करने वाली सशक्त कहानी है।

सुहागिनें कहानी भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को व्यक्त करने वाली कहानी है। इसके पति-पत्नी भी पढ़े लिखे हैं। अलग-अलग रहकर नौकरी करते हैं। उनमें न कोई मनमुटाव है न एक दूसरे से कोई शिकायत फिर भी उनके प्यार का नशा उतरता जाता है। जिस सुशील के साथ 'हनीमून' के समय दुनियाँ बहुत रंगीन लगती थी, रोमाँस सामने दुनियाँ की हर चीज हेय थी' उसी के पत्रों में मधुर आलिंगन और चुंबन पढ़कर उसे मधुर आलिंगन और चुंबन का कुछ भी स्पर्श अनुभव नहीं होता है। उसे ऐसा लगा था जैसे वह एक चश्मे से पानी पीने के लिए झुकी हो और उसके ओंठ गीली रेत से छूकर रह गये हों।" वह चिठ्ठी का जवाब लिखती है तो वह भी उसके दफ्तर की चिट्ठियों से अलग नहीं होता। वह भी खत का अंत मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुंबनों से करती है। सुशील उससे अपनी बहिन के विवाह के लिए अधिकाधिक बचत करने को लिखता रहता है। वह स्वयं को सबसे अकेला तथा अपने जीवन को बहुत नीरस पाती है। उसके ज़ीवन के अभाव नौकरानी काशी की कथा से और अधिक स्पष्ट और बड़े हो जाते हैं। काशी परित्यक्ता स्त्री है और बहुत मुश्किल से अपने पाँच बच्चों के साथ रूखा-सूखा खाकर रहती है। प्रवासी पति कोई आर्थिक सहायता मिलती है न संवेदनापूर्ण खत। उसमें जीने की लालसा अभी मरी नहीं है। पति के आने के दिन वह अपनी मालकिन की प्रसाधन-सामग्री से अपना श्रृंगार करती है। पति मारमीट करता है, किन्तु वह उसकी कामेच्छा भी पूर्ण करती है तथा पुनः गर्भवती हो जाती है। इस सूचना से मनोरमा का हृदय कहीं से छिल जाता है। उसके मन में भी बच्चे की कामना थी, लेकिन सुशील अभी बच्चा नहीं चाहता। सुशील का अपने परिवार को आर्थिक सहायता देने के

1. राकेश : वारिस, पृष्ठ 17
2. राकेश : वारिस एक और जिन्दगी कहानी, पृष्ठ 18

लिए मनोरमा से नौकरी कराना, बचत का आग्रह उसे धीरे-धीरे पति से अलग करता जाता है। यह अलगाव एवं ऊब बहुत स्वाभाविक है। अतः सुहागिनें कहानी दाम्पत्य सम्बन्धों की पीठिका पर लिखी गई जटिल सम्बन्धों की कहानी है। इसके नर नारी मानव सम्बन्धों की यन्त्रणा को भोगते हुए पात्र हैं। यहाँ सम्बंधिक जटिलता एक साथ ही दो स्तरों पर घटित होती है : एक तो यह है कि इसमें चित्रित नारियाँ पति निपीड़िताएँ हैं। एक को यह निपीड़न ग्रंथिग्रस्त कर देता है और दूसरी को भावी आशंका से भर देता है। मनोरमा के मानस के अँतल गह्वरों में छिपी मातृत्व कामना लावा बनकर फूटती दिखाई देती है। उसे हर पल, हर संदर्भ और अकेली स्थिति मातृत्व कामना की अतृप्ति से भरती जाती है। काशी के बच्चों के प्रति उसका अनुराग, उनके प्रति सुखैषणा और उनकी हितचिन्तना मातृत्व कामना को ही संकेतित करते हैं। मनोरमा की ऊब, अकेलापन, खालीपन और नीरस जीवन इसी कारण है। वह सुशील को पाने, उसके साथ रहने की जो साध लिये जी रही है वह सन्तान सुख की चटुल कामना मात्र है। अकेलेपन में कुन्ती को अपने पास बुलाना, सूखे के टीके लगवाने के लिये 20 रुपये का दान, घर की पुताई की कामना, अगुफा को घर से निकालने का विचार, मैले कपड़ों में सजी कुन्ती को अपने से सटा लेना-परसू की बीमारी की चिन्ता, उसके गालों का सहलाना, काशी के घी खाने पर उसे मातृत्व का बोध कराना, और काशी के 'खाना कब खायेंगी ?" प्रश्न के उत्तर में अपना प्रश्न कर देना-"डाक्टर ने कहा था कि दस टीके लगवाने से बच्चा ठीक हो जायेगा"[1] व सब के ऊपर 'बालों की लट' के प्रतीक संकेत मनोरमा की उक्त कामना को ही संकेतित करते हैं। कहानी का अंत भी इसी स्थिति और मनोग्रंथि का प्रतीक मात्र है।

विगत प्रेमिल संदर्भों की स्मृति के बीच-बीच में आये वाक्य भी इसी मूल भावना के संकेत हैं—"मगर जब भी सुशील के हाथ उसके शरीर को सहला रहे होते तो एक अज्ञात शिशु उसकी बाँहों में आने के लिये मचलने लगता। वह जैसे उसकी किलकारियाँ सुनती और उसके कोमल शरीर के स्पर्श का अनुभव करती।'[1] सुशील का जो संपर्क कभी मन में ऊष्मा भरता था वही अब तपिश भरता है। फलतः अनेकानेक मधुर चुम्बनों का स्पर्श भी मनोरमा के मन में रिक्तता ही उत्पन्न करता है, कारण दाम्पत्यजीवन की जटिल सम्बन्ध भावना ने सारे रोमाँस को स्नेह-ग्रन्थि में परिणत कर दिया है। यह ग्रन्थि ही उसकी ऊब, एकरसता और अकेलेपन का कारण है।' काशी पति निपीड़िता है। उसकी पीड़ा बाहरी है, किन्तु मनोरमा की भीतरी है। एक पीड़ा सहकर भी प्रवंचक पति की कामेच्छा को पूर्ण करती है

1· मोहन राकेश : पहचान : सुहागिने, पृष्ठ 45

ग्रौर दूसरी शरीर-सुख के क्षणों में निरन्तर शिशु की किलकारियाँ सुनती रहती है मनोरमा मातृत्व की प्यासी है--सागर की लहरों से खेलती हुई भी उसके मोतियों से वंचित है तो काशी लहरों से खेलती है, मोती भी पाती है, किन्तु ग्रभावों की सलाखों में बंद जीवन के कारण उपलब्ध मोतियों की सुरक्षा से चिन्तित है। एक में पाने का भाव है दूसरी में पाये हुए को बचाये रखने की सुरक्षा-भावना ग्रथवा चिन्ता है। दोनों सुहागिनें हैं, किन्तु वरदानों से वंचित। यह वंचनामय पीड़ा ही उनके व्यक्तित्व की ऐसी नामहीन ट्रेजेडी है जो उन्हें भीतर-बाहर से तोड़ रही है।'[1]

ग्रपरिचित राकेश की दाम्पत्य सम्बन्धों की जटिलता को निरूपित करने वाली कहानी है। इसमें गलत चुनाव ग्रौर रुचि वैभिन्य के कारण ग्राई त्रासद स्थितियों का निश्छल ग्रभिव्यंजन है। राकेश ने ग्रजनबीपन, बेगानापन, ऊब ग्रौर दाम्पत्यिक सम्बन्धों के बीच ग्राये खालीपन को लेकर ग्रनेक कहानियाँ लिखी हैं, किन्तु बात चाहे सामाजिक ग्रकेलेपन की हो, चाहे व्यक्ति के ग्रकेलेपन की, राकेश हारे कहीं नहीं। यों उनके पात्र टूटकर भी जुड़ नहीं पाते हैं ग्रौर बिछड़कर भी पूरी तरह बिछुड़ नहीं पाते हैं। वे बाहर से तने हुए भीतर से छिले हुए ग्रौर मन से एक दूसरे के लिये झुके हुए प्रतीत होते हैं। "एक ग्रौर जिन्दगी' तो इसका सशक्त उदाहरण है। यही बह बिन्दु है जो राकेश को नयी संचेतना, नयी जीवन दृष्टि ग्रौर नये, किन्तु गहरे यथार्थ का रचनाकार सिद्ध करता है।

'ग्रपरिचित' को ही लें तो इसमें ग्रपरिचय में परिचय की तलाश साफ झलकती है। सहयात्रिणी स्त्री ग्रपने पूरे भोलेपन से दाम्पत्य सम्बन्धों के बीच ग्राई कटुता, तिक्तता ग्रौर रिक्तता का बोध कराती है। वह गलत निर्णय ग्रौर रुचियों के ग्रन्तराल के बोझ को ढो रही है। वह 'मिसफिट' है, किन्तु उसमें निर्भरता ज्यादा है तभी तो गहने बेचकर भी पति की कोई एक साध ग्रपने से पूरी होते देख संतोष करना चाहती है। यह एक ऐसी स्त्री है जो बहुत से परिचित लोगों के बीच ग्रपने को ग्रपरिचित, बेगाना ग्रौर ग्रनमेल ग्रनुभव करती है, किन्तु यही स्त्री कथानायक से खुलकर बातें करती है। कारण दोनों के बीच एकसी रूचियों का ग्राभास सा है। वह पहाड़ी लोगों के बच्चों में ग्रपनापन खोजती है तो कथानायक भी ग्रादिम संकार वाले व्यक्तियों के बीच ग्रच्छा महसूस करता है।

यहीं पर दो ग्रपरिचित समानधर्मी रूचियों की पीठिका पाकर कुछ ग्रौर खुलते हैं। यद्यपि यह खुलावट स्त्री की ग्रोर से है। वह ग्रपनी जैसी रुचि का सहयात्री पाकर भीतर ही भीतर कहीं दूषित है। ग्रतः उससे पानी मँगाती है।

1. डॉ० हरिचरण शर्मा की डायरी से प्राप्त मत

चलती गाड़ी पर जब कथानायक पानी का गिलास लेकर चढ़ता है तो उसकी साँस फूल जाती है। वह आप को धिक्कारती है कि "क्यों भेजा पानी के लिये कुछ हो जाता तो···· आप न चढ़ पाते तो··········"[1]

यहाँ पर जो संवाद हैं वे अपरिचय में आकस्मिक रूप से उगे परिचय और कहीं भीतर ही द्रवित मनोभावों के संकेतक हैं। फिर स्त्री का कथानायक को बत्ती बुझाकर सुला देना और रजाई उढा देना अपरिचय में परिचय की तलाश को अंतिम रूप दे देते हैं। दाम्पत्य जीवन की कटुता और नीरसता को यहाँ नया परिचय भुला देता है, किन्तु पारिस्थितिक विचित्रता दोनों को अलग कर देती है। यही विकर्षण कहानी की जान है, यथार्थ का धरातल है जो जिस रूप में है का सही गवाह है। कथानायक भी दूषित है तभी तो उसके अचानक किसी स्टेशन पर उतर जाने से रिक्त का अनुभव करता है। 'इसी स्टेशन पर न उतरी हो यह सोचकर मैंने खिड़की का शीशा उठा दिया और बाहर देखा।········ बिस्तर में नीचे को सरकते हुए मैंने देखा कि कम्बल के अलावा रजाई भी लिये हूँ जिसे अच्छी तरह कम्बल के साथ मिला दिया गया है। गरमी की कई एक सिहरने एक साथ शरीर में भर गयीं।"[2]

असल में यह कहानी बेमेल रुचियों के कारण जीवन में आई रिक्तता, कटुता और बासीपन की कहानी है। रुचि-वैभिन्य स्त्री-पुरुष को किस सीमा तक और किस तरह अलगाव के बिन्दुओं की ओर ले जाता है तथा उसमें नारी अपने को कितनी रिक्त, विवश और टूटा हुआ अनुभव करती है, पुरुष किस तरह किसी भी बहाने उससे अलग होकर नयी मूल्यवत्ता खोजता है व स्थिति की जटिलता किस तरह अपरिचय और अजनबीपन के बीच एक नये परिचय की अगबत्ती जलाकर बुझा देती है आदि सब कुछ इस कहानी का कथ्य है। एक और मानव-सम्बन्धों की सूक्ष्मता पूरी जटिलता के साथ यहाँ हैं और दूसरी ओर मानवीय वृत्ति क सहज निश्छलता से प्रेरित अपरिचय में परिचय की तलाश। यह स्थिति इसे बदलते मूल्यों के साये में विकसित नये मानव-सम्बन्धों की कहानी प्रमाणित करती है। न कुछ से बहुत कुछ देने वाली यह राकेश की उलेख्य कहानी है।

"चौगान' 'चौगान' राकेश की अनमेल एवं असमान वैवाहिक जीवन में आई यंत्रणा और कसक को व्यक्त करने वाली कहानी है। इसमें पुरुष की टूटन भी है और नारी जीवन का बिखराव भी; किन्तु पुरुष की ऊब व टूटन को 'सन्तो'

---

1. क्वार्टर : अपरिचित, पृष्ठ 251
2. क्वार्टर : अपरिचित, पृष्ठ 153

के साहचर्य से भरने का प्रयास किया गया है । 'सन्तो' की वृत्तियों की आदिम स्थिति पुरुष की टूटन को अधिकाधिक उभारती गई है । दोनों मूल्यों का संघर्ष भी कहानी में किसी नये सत्य की प्रतिष्ठा नहीं कर सका है । कुल मिलाकर कहानी पुरुष की विवशता, बिखराव और टूटन की कहानी है । यहाँ दाम्पत्य सम्बन्ध पुरुष की टूटन पीछे है । 'हैनरी विल्सन' जो भारत के कस्बे में आकर 'साहब जी' बनकर रह गया है, अकेलेपन की यंत्रणा का शिकार है । वह 'लिजी' को छोड़कर अकेला हो जाता है और अकेलेपन का बोझ जब उसे काटने लगता है तो संतों को घर में रख लेता है, किन्तु ट्रेजेडी तो यही है कि वह यहाँ भी अकेला ही बना रहता है । वस्तुतः यह अनुभव के अकेलेपन की कहानी है । यह अकेलापन ओढ़ा हुआ नहीं है, वरन् समाज और सामाजिकों के बीच रहते मनुष्य का अकेलापन है, जिसमें मानवीय सम्बन्धों की सूक्ष्मता जटिलता के स्तरों का स्पर्श करती हुई आदमी को भीतर से छीलती दिखाई देती है । 'हैरी विल्सन' मरता तो बाद में हैं, किन्तु उससे पहले अकेलेपन के क्षणों में वह कितनी ही मौतें अपने भीतर जी चुका होता हैं ।

'खाली' 'जुगल' और 'तोषी' के दाम्पत्य सम्बन्धों की कहानी इसमें पति-पत्नी दोनों के जीवन में आई रिक्तता और ऊब का वर्णन किया गय हैं । दोनों के सम्बन्धों में जो कटुता और बेगानेपन का बोध है उसका कारण स्वभाव का अन्तर है । 'जुगल' की 'बकझक' 'तोषी' को पसंद नहीं है और जुगल को तोषी का रहन-सहन । यही कारण है कि तोषी जुगल की बातों से अपना मन हटाये रखना चाहती है और 'जुगल को' जिन्दगी की हर चीज़ किसी वजह से गलत लगती थी—और वह अकेला हर गलत चीज को ठीक करने के लिये क्या कर सकता था ।[1] फिर भी दोनों साथ-साथ रहते, किन्तु निरन्तर खाली होती जाती जिन्दगी राकेश ने इस कहानी में दाम्पतम-सम्बन्धों की ऊब; नीरसता और अकेलेपन को सफलता के साथ अंकित किया है ।

'फौलाद का आकाश' के रवि और मीरा ने स्वेच्छा से एक दूसरे को चुना है, किन्तु उनका चुनाव विवाह के कुछ ही वर्षों बाद गलत सिद्ध होने लगता है । वे एक औपचारिक और कृतिम जिन्दगी जीते हैं । रवि मीरा से अपना प्रत्येक काम तकल्लुफ से कराता है : "वह उसे बाहों में भरने का प्रयत्न करता हुआ पूछने लगता है "मेरे साथ अपनी जिन्दगी तुम्हें बहुत रूखी लगती है न ? कहकर किसी भी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह कुछ भी बोलने से पहले उसके होठों को अपने होठों से भींच देता । फिर फुसफुसा कर कहता "मैं बहुत बुरा हूँ

1. क्वार्टर : खाली पृष्ठ 44

न । हूँ न ।' इस पर भी उसे किसी उत्तर की आशा नहीं रहती । वह अपने आप सवाल पर सवाल किये जाता :" तुम्हें मैं बहुत दुखी करता हूँ, नहीं, नहीं ? पर अब तो तुम्हें सहने की आदत हो गई है, नहीं । साथ ही उसके हाथ उसके शरीर की गोलाइयाँ को मसलने लगते, उसके दाँत जगह-जगह उसके माँस को काटने लगते हैं "साथ ही यह भी तो तुम जानती हो कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ, नहीं ? और मंजिल दर मंजिल शारीरिक निकटता की हदें पार होती जातीं हैं । आखिर जब पसीना पसीना होकर वह उससे अलग होता तो भी मीरा को यही लगता जैसे अब भी लिखते-लिखते हाथ थक जाने से उसने कागज पर से हाथ हटालिए हों और अब पानी का गिलास माँगने जा रहा हो ।"[1] यह अंश उनके जीवन की झाँकी देने में समर्थ है । रवि अपनी फैक्ट्री के कार्य में बहुत व्यस्त रहता है । फैक्ट्री में हड़ताल होने पर जो व्यक्ति मध्यस्थता करने के लिए बाहर से आता है, वह उसके खाने के भीनू में संशोधन करता है, किन्तु घर में सामने प्लेट में पड़ी चीज की ओर देखता भी नहीं । उसे मीरा की भावुकता पूर्ण बातें पसंद नहीं । रवि की बातें उसे रवि से बहुत दूर कर देती ? "उस फासले को भरने की कोशिश उसे एक ऐसा झूठ लगता था जो वह दस साल से लगातार अपने से बोल रही थी । रात दिन साथ रहकर भी फासला कम नहीं होता । जितना ही वह उसके नजदीक आती, फासले का अहसास उतना ही ज्यादा होता था ।"[2] वह अपने तथा रवि के साथ पढ़ने वाले राजकृष्ण से मिलती है तो वह उससे बहुत आत्मीयता से मिलता है । राजकृष्ण को देखा है कि उसने मीरा से विवाह क्यों नहीं किया । वह अपनी तनाव भरी जिन्दगी के कुछ क्षण मीरा के सान्निध्य में 'रिलेक्स' करना चाहता है, पर मीरा शीघ्र ही वहाँ से घर लौट आती है और लेट जाती है । उनका मन स्वस्थ नहीं पर रवि के व्यवहार में पूर्व परिचित उदासीनता है । इन दोनों की जिन्दगी ऊपरी स्तर पर तो बिल्कुल ठीक है, किन्तु उनके जीवन में जो अलगाव हैं वही इस कहानी की मूल संवेदना है ।

,फौलाद का आकाश' की मीरा में तनाव है, असमंजस है । वह सही-गलत का निर्णय नहीं कर पाती है । कभी उसे लगता है कि वह इस जीवन के लिये जिम्मेदार है और कभी ऐसा लगता है कि सारा दोष रवि का है । इस युगल के मध्य जो तनाव है, एक दूसरे को निरंतर झेलते जाने की मजबूरी है, इसका कारण रवि के व्यवहार की औपचारिकता और मीरा के व्यक्तित्व की व्यक्तिनिष्ठता व भावुकता है । रवि आकड़ा बाज है । उसके इस व्यवहार से मीरा को बराबर यह लगता रहता

---

1. क्वार्टर : फौलाद का आकाश, पृष्ठ 182
2. वही वही, पृष्ठ 187

है कि "उसकी बात में शब्द कम आँकड़े ज्यादे होते । आँकड़े-आँकड़े आँकड़े । बिना आँकड़ों के रवि कोई बात नहीं सोच सकता था ? मीरा को लगता कि उससे प्यार करते वक्त भी वह मन ही मन चुम्बनों की गिनती करता रहा होगा " तभी तो न उसका आवेश एक चरम पर पहुँच कर रुक जाता ।[1] "मीरा का राजकृष्ण को न भूल पाना, उससे मिलने जाना और मन ही मन रवि की औपचारिकताओं व बेरुखियों को सहते जाने में जो भाव है वह दाम्पत्य जीवन की पीड़ा को ही व्यक्त करता है । लगता है मीरा का मन रवि के कारण भीतर ही भीतर इतना छिल गया है कि उसे उसकी साधारण सी बात में भी बेगानेपन, उपेक्षा और कृत्रिमता की गंध आती है । यों उसका ऐसी गंध पाना गलत भी नहीं है–गलत है तो दोनों का चुनाव । 'मीरा में बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल अपने को बदलने और गर्म-गर्म झोंकों को को सहने की शक्ति कम दिखाई गई है । "फलतः कहानी बदलते हुए समाज की जीवित समस्या को छूती तो है, पर उससे टकराती नहीं । "[2] मीरा का रवि के अनुकूल ढलपाना और को अपने अनुसार न ढाल पाना ही वह कारण है जिससे दाम्पत्य सम्बन्धों के बीच खड़ी दीवार अंत तक बनी रहती है ।

मानव–संबंधों की भूमिका पर लिखी गई कहानियों में राकेश ने कुछ ऐसी कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें न केवल सम्बन्धों में आई कटुता और उदासी का चित्रण है, अपितु परिवर्तित मानवीय सम्बन्धों की भूमिका के साथ मर्यादाओं के ह्रास का भी चित्रण किया गया है । मर्यादाओं के ह्रास का चित्रण सूक्ष्म स्तर पर करने वाली कहानियों में 'वासना की छाया में, रोजगार, आखिरी सामान, हक हलाल, गुनाह बेलज्जत, मिट्टी के साये आदि कहानियों को लिया जा सकता है । मर्यादाओं का ह्रास और मूल्यों का विघटन इन सभी कहानियों में मिलता है । राकेश ने मानवीय संबंधों के अंकन में अपरिचय, ऊब, बेगानापन और अनमेल स्वभाव और रुचियों का चित्रण तो दिया है, किन्तु कहीं भी वे आस्था का सम्बल अपने हाथ से छोड़ नहीं पाये हैं । लगता है वे यह प्रमाणित करना चाहते थे कि मानवीय सम्बन्धों की नियति उनके टूटने और बिखरने में नहीं है, अपितु नये मूल्यों की खोज और प्रस्थापना में है । 'जंगला' कहानी में रूढ़ियों पर मूल्यों की विजय चित्रित की गई है । कहानी का संदेश या कहें कि कथ्य ही यह है कि या तो पुराने को मिट जाना है या बदल लेना है । ध्यान से देखें तो यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राकेश की कहानियों में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की तमाम कटुता के बावजूद एक दूसरे पर निर्भर बने रहने

---

1. क्वार्टर : फौलाद का आकाश, पृष्ठ 186
2. शिवप्रसाद सिंह : माध्यम जनवरी, 1968 पृष्ठ 64

की मजबूरी ही अधिक अंकित हुई है । यह वह मजबूरी है जो सारी ऊब, वेदना और उदासीजनित अकेलेपन के बावजूद उन्हें एक दूसरे से बाँधे रहती है । यही निर्भरता चाहते सम्बन्धों की मजबूरी 'सुहागिनें' में है, किन्तु यह मजबूरी यदि कहीं टूटी भी है तो दोनों के मन में भीतर ही भीतर फिर से एक नया राग पैदा होता रहा है ।

उपरिविवेचित कहानियों में दाम्पत्य जीवन की ऊब, नीरसता, असफलता को अभिव्यक्ति दी गई है । कुछ कहानियों में मानवीय सम्बन्धों व प्रेम का मूल्यांकन आर्थिक आधार पर भी किया गया है । 'बनिया बनाम इश्क', 'गुनाह बेलज्जत', 'वासना की छाया' में, 'हक हलाल' ऐसी हीं कहानियां हैं । बनिया बनाम इश्क' का इन्द्र नाचने वाली से प्रेम करता है व उसे अपनी रखैल बनाकर रखना चाहता है, किन्तु जब वह खर्च के लिए हजार रुपया महीना माँगती है तो वह कहता है— "दो सौ चार सौ पाँच सौ तक हो तो इन्सान खर्च कर सकता है मगर हजार रुपया ·······मानता हूँ खूबसूरत है । वह बोला मगर इतनी खूबसूरत नहीं है ।"[1] 'हक हलाल' में पंडित ने रुपया देकर लड़की से विवाह किया है जिससे वह उस पर पूरा अधिकार समझता है । एक दिन लड़की के भागने पर वह बदले में उसकी बहिन को ले आता । जब भागी हुई लड़की पकड़कर ले आयी जाती है, तो वह छोटी बहन को भी दया करके रख लेता है । कोई उसे पत्नी के लौट आने पर मुबारकबाद देता है तो वह कहता है । "आपकी परवस्ती थी हुजूर, परमात्मा का इन्साफ था और मेरा हक हलाल का पैसा था ।"[2] 'वासना की छाया में' के विधुर चौधरी को जब पत्नी के रूप में कोई स्त्री नहीं मिलती तो वह अपनी 14 वर्षीय लड़की के बदले में ही दूसरे चौधरी की लड़की से व्याह करने का निश्चय करता है । चौधरी और उसकी वासना की हविश के माध्यम से राकेश ने पिता-पुत्री के सम्बन्धों का ह्रास चित्रित किया है । कहानी का चौधरी एक ऐसा पात्र हैं जो 'वासना की छाया तले' बाकी बची उम्र गुजरने के लिये अपनी भोली और चौदह वर्षीया लड़की तक की बलि चढ़ाने को तैयार है । इतना ही नहीं वह रुपया भी खर्च कर सकता है । वासना तृप्ति के लिये लालायित चौधरी का यह वाक्य देखिये : "हमारे में यह रिवाज है, बाबूजी ! बराबर का रिश्ता हो तो दो घर आपस में लड़कियाँ बदल लेते हैं । मै जाकर अपने जैसा ही कोई घर देखूँगा ।"[3] कहानी में एक ओर तो

---

1. बनिया बनाम इश्क : सारिका मार्च, 1973 पृष्ठ 16
2. वारिस : हक हलाल कहानी, पृष्ठ 154
3. पहचान : वासना की छाया में, पृष्ठ 146

धन-दौलत के सहारे औरत के गर्म मांस की आवश्यकता का अनुभव करने वाला चौधरी है जो यौन-संदर्भों को ही जीवन की सारी जमा पूँजी समझता है और दूसरी ओर कहानीकार का यह संकेत है कि परिस्थितियों की विवशता व लोलुपता के कारण मानवीय-सम्बन्धों की मर्यादा गर्त में जा रही है।

'गुनाह बेलज्जत' का सरदार सुन्दरसिंह पैसा देकर सुन्दरी के साथ कुछ समय व्यतीत करता है और स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है। यों कहानी में पति-पत्नी के सम्बन्धों के बीच एक हल्की सी उदासी की छाया का आभास भी होता है। मूलतः यह यौन सम्बन्धों की कहानी है। 'मिट्टी के रंग' में मानव सम्बन्धों का एक और रूप भी है। मिश्र स्थित भारतीय सेना के दो सैनिक मैथिलोन और सदानन्द अपने मनोरंजन के लिए साथ-साथ घूमने जाते हैं। सदानन्द बहुत भावुक है उसे पत्नी और घर की याद आती है। एक दिन बाद उन्हें फ्रन्ट पर जाना है। मैथिलोन अपना समय बिताने के लिए एक 'सोसाइटी गर्ल' के पास जाता है। युद्ध में सदानन्द मरते हुए मैथिलोन की जेब से एक पत्र और डिबिया निकालता है। वह पत्र और डिबिये अँगूठियाँ उसकी बहन के लिए हैं। सदानन्द भी युद्ध में मारा जाता है और सिपाही महानन्द उस डिबिया और पत्र को पाकर उन्हें सही जगह भेजना चाहता है, किन्तु अपनी एक रात की प्रेमिका को दोनों अँगूठियाँ उपहार-स्वरूप दे देता है। महायुद्धों की विभीषिका ने मानव-प्रेम-सम्बन्धों को किस सीमा तक प्रभावित किया है, यही इस कहानी का प्रतिपाद्य है।

'सेफ्टीपिन' में आधुनिक उच्च वर्गीय स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों पर यथार्थवादी शैली में प्रकाश डाला गया है। इनके अतिरिक्त प्रेम का छायावायी स्वरूप भी 'चाँदनी के स्याह दाग' जैसी कहानी में मिलता है। यह एक भावना प्रधान आदर्शवादी प्रेम कहानी है। भिक्षु भी इसी शैली की कहानी है। इसमें बौद्धविहार के युवक के प्रति प्रेम का स्फुरण होता है, किन्तु वह उसके लिए ग्लानि का अनुभव करता हुआ चला जाता है। इस प्रकार की कहानियों का क्षेत्र राकेश का असली क्षेत्र नहीं है।

स्त्री पुरुष की टूटन और अकेलेपन का बोध :

मानव-सम्बन्धों का सूक्ष्म द्रष्टा राकेश अपनी कहानियों में सम्बन्धों की कटुता और विषमता को व्यक्त करते-करते तब तनाव के चरम क्षणों तक पहुँचा तो उसमें अकेलेपन का बोध जगा। उसके पात्र टूटे हुए व्यक्तित्व को लेकर अजनवियत और ऊब से भर उठे। यह सब अचानक घटित नहीं हुआ। न इसके पीछे सम्बन्धों की विषमता थी जिसने इन्हें यहाँ तक का रास्ता दिखाया। राकेश की कुछेक कहानियों में आज के सन्दर्भों में अकेले पड़ते मानव-मन और उसके व्यक्तित्व को

रूपायित किया गया है। अकेलेपन का बोध इतना बढ़ता गया कि पात्रों की टूटन और विखंडित स्थितियाँ भी सामने आईं। व्यक्ति का यह अकेलापन केवल वैयक्तिक नहीं है। वह तो सामाजिक जीवन के बीच संघर्षों से लुटते-पिटते और टूटते-बिखरते पात्रों का अकेलापन है। यह टूटन स्त्री और पुरुष दोनों के जीवन में दिखाई देती हैं। दुनियाँ के झमेले में पड़ी हुई, मजबूरियों की वैसाखियों के सहारे चलने वाली और अपनी नियति में जीवन से जुड़े रहने की विवशता को पोसती हुई नारी जहाँ भीतर से टूटी-बिखरी है वहीं उसके मन पर अकेलेपन का मनों बोझ भी आ पड़ा है। यही स्थिति पुरुष की है। वह भी जिन्दगी की दौड़ में हार गया है। फलतः टूट गया है और टूटकर एक अवश व्यर्थता बोध से भर गया है। राकेश की अनेक कहानियाँ ऐसे ही टूटे हुए पुरुषों और बिखरी हुई नारियों के अकेलेपन, व्यर्थता बोध और यंत्रणा बोध को उजागर करती हैं। ऐसी कहानियों में 'आखिरी सामान', सुहागिनें, जख्म, आदमी और दीवार, मिस्टर भाटिया, वारिस, शिकार, जीनियस, फटाहुआ जूता, दोराहा, धुन्धलादीप, मिसपाल, पाँचवे माले का फ्लैट और उर्मिल जीवन व कटी हुई पतंगें आदि की गणना की जा सकती है। ये वे कहानियाँ हैं जिनमें निरूपित स्त्री-पुरुष परिवेश का दबाव सहते-सहते और लुटते-पिटते जिस बिन्दु पर आ खड़े होते हैं वहाँ उनके पास अकेलेपन की पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है। इनमें आये पात्रों का संघर्ष ऊपर कम भीतरी अधिक है। यही कारण है कि इनके जख्म गहरे हैं। इनकी पीड़ा इन्हें छीलती है और ये भटकते-अटकते अपने अकेलेपन में आकर ठहर गये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन कहानियों में व्यक्ति का मन बाहरी परिस्थितियों के दवाव के समक्ष विवश होकर टूट गया है। उसमें एक फ्रस्ट्रेशन आ गया है, वह टूट गया है और उसका अपनी टूटन को बाहरी दुनियाँ में भरने का प्रयास भी निरर्थक होता गया है। उदाहरण के लिये कुछ कहानियाँ लीजिये। पहले 'मिस्टर भाटिया' को लें।

'मिस्टर भाटिया' के भाटिया की भद्रता का परिचय केवल 'मिस्टर' या एस्क्वायर द्वारा ही दिया जा सकता है। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, किन्तु लड़कियों में उसकी रुचि बहुत है। वह खाने से अधिक लैटर पैड को महत्व देता है। वह बी. एस. सी. तथा लॉ में दो बार फेल हो चुका है और अक्सर वेरोजगार रहता है। वेरोजगारी में भी उसे 'रेस' का बहुत शौक है। यद्यपि न उसने पाँच साल से कमरे का किराया दिया है न होटल वाले का बिल। रेसकोर्स में वह लीना के साथ रोमांस के चक्कर में अपनी सब पूँजी हार आता है। फिर भी उसके भाई के निमंत्रण पर उनके यहाँ खाना खाने जाता है। लौटकर वह बहुत से हवाई किले बनाता है। उसका ख्याल है कि कुछ ही वर्षों में वह बहुत बड़ा आदमी बन जाएगा, किन्तु केप्टन केशव के तबादला हो जाने पर उसका ताश का महल

ढह जाता है । बेरोजगारी की हालत में उसे अपनी किताबें तक बहुत सस्ते दामों पर बेचनी पड़ती हैं । अपने फ्लैट की पगड़ी पाँच हजार लेकर उसे भी फूँक देता है । वह एक साधारण सी लड़की से विवाह करने को तैयार हो जाता है क्योंकि वह दहेज में तीन हजार रुपये लायेगी जिन्हें वह रेस में लगा सकेगा । पूरी कहानी को पढ़कर जिस बेकार भटके हुए नौजवान की तस्वीर उभरती है वह उन लोगों से परिचय कराती है जो अपने परिवेश एवं समाज से कटकर जीने का प्रयास कर रहे हैं । 'भाटिया' एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने अकेलेपन में भी जिजीविषा लिये लिये हुए है । हाँ यह बात अलग है कि उसकी यह जिजीविषा काल्पनिक, हवाई, व्यर्थता बोध से पीड़ित और गलत-फहमियों से अपनी पीड़ा को ढकने वाली है । यही कारण है कि वह भीतर टूट गया है, किन्तु टूटन का अस्वीकार सारे सन्दर्भ को यथार्थ से जोड़ देता है ।

'फटा हुआ जूता' के राय की समस्या भी आर्थिक अभाव से जुड़ी हुई है । समाज में वह सर्वत्र उपेक्षित सा रहता है । उसे नौकरी नहीं मिलती और पहेलियाँ भरकर और कहानी लिखकर जीवन यापन का निश्चय करता है । जैसे इनके द्वारा जीवन सरल कार्य हो । उसे एक पहेली षर तीस रुपये का पुरस्कार मिलता है । वह उन रुपयों से कभी जूते खरीदना चाहता है कभी पैंट-बुशर्ट और कभी किसी रमणी के साथ कुछ समय अच्छी प्रकार गुजारना चाहता है । पैसों के पास होते ही उसे बहुत सी ज़रूरतों का ध्यान आता है । वह सब दूकानों पर जाकर भी कुछ नहीं खरीदता, रेस्ट्राँ में एक नवयुवती का साथ पाकर भी उसे छोड़कर बाहर आ जाता है । इस कहानी में राकेश ने आर्थिक अभावों से पीड़ित युवक के मनोविज्ञान का वर्णन बहुत सफलतापूर्वक किया है । राय में भी व्यर्थताबोध और अकेलेपन का बोध गहरा है । जहाँ 'राय' की यह स्थिति है वहाँ शिकार "का पटवर्द्धन आर्थिक अभाव के कारण जेबें काटता है, किन्तु उसमें मानवीयता की भावना अभी मरी नहीं है । वह काम की तलाश में आए एक नवयुयक की जेब से उषका बटुआ उड़ा लेता है, किन्तु उसे परेशान देखकर उसका मन चाह रहा था कि जिन्दगी लौटकर कुछ मिनट पहले के उस मुकाम पर चली जाए जब उसके चारों तरफ भीड़ का दबाव बढ़ रहा था, पर उसका हाथ अभी नवागंतुक की जेब तक नहीं पहुँचा था ।"[1] किन्तु वह दौड़कर गाड़ी में चढ़ जाता है ।"मगर अब उसका मन चाह रहा था कि जिन्दगी लौटकर उस मुकाम पर चली जाए जब गाड़ी का आखिरी डब्बा निकल रहा था और वह अभी प्लेटफार्म पर ही था ।"[2] कहानी का यही मोड़ उसे आदर्शवाद

---

1. वारिस : शिकार कहानी, पृष्ठ 129
2. वही : वही, पृष्ठ 129

से बचाकर यथार्थ की भूमिका पर प्रतिष्ठित करता है। मनुष्य की अधिकाँश बुराइयों की उत्तरदायी उनकी परिस्थितियाँ ही हैं। भूख की आग सारे मानव आदर्शों को निगल जाती है।

'जीनियस' उस व्यक्ति की कहानी है जो हर दृष्टि से साधारण है, लेकिन स्वयं को असाधारण समझता है । वह शेक्सपियर, टालस्टाय तथा गोर्की टैगौर को हेय समझता है। वह प्रगट में स्वयं को अदना इन्सान कहता है और उसकी दृष्टि में—"आप जानते हैं-या शायद नहीं जानते–कि जीनियस एक व्यक्ति नहीं होता। वह एक 'फिनोमिना' होता है, एक परिस्थिति जिसे केवल महसूस किया जा सकता है उसका एक रेडिएशन एक प्रकाश होता है। उस 'रेडिएशन' का अनुमान उसके चेहरे की लकीरों से, उसके हाव-भाव से या उसकी आँखों से नहीं होता।"[1] उस व्यक्ति का कहना है कि वह एक ऐसे फिनोमिना से परिचित है। "उसमें सचमुच वह चीज है जो दूसरे को ऊँचा उठा सकती है। मैं तब उसका रेडिएशन देख सकता हूँ। उसके अन्दर की हलचल महसूस कर सकता हूँ। जिस तरह अभी-अभी वह कबूतर पंख फड़फड़ा रहा था, उसी तरह उसकी आत्मा में हर समय एक फड़फड़ाहट एक छटपटाहट भरी रहती है।··· भूख इसने भी देखी है और मुझसे कहीं ज्यादा भूख उसने भी देखी ह, परन्तु मैंने उसे जरा भी विचलित और व्याकुल होते नहीं देखा।"[2] इस प्रकार जीनियस अपने परिचित का विस्तृत वर्णन करके यह कहकर कि वह मेरा इनरसेल्फ है। "वहाँ से चला जाता है। यह कहानी भूख से पीड़ित, परिस्थितिथों से हार न मानने वाले व्यक्ति की जिन्दगी को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करती है। यह उन कहानियों में से जिनमें भीतर की टूटन और जकड़न को व्यक्ति बाहरी दिखावे से भरना चाहता है।

'जख्म' राकेश की प्रसिद्ध कहानी है। इसमें एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जिसका अहं बहुत प्रबल है। यह झुकना नहीं जानता धीरेधीरे टूटता जाता है। इस टूटन की खनक भी कोई सुने, यह उसे गवारा नहीं है। वह पीकर परेशानी की हालत में मित्र के साथ कहीं जाना चाहता है। वह अधिक पीकर बहुत खुश होता है। वह कहीं जाकर दोस्त को सिर्फ यह बताना चाहता है कि वे दोनों अब दोस्त नहीं हैं। दोस्त उसे अच्छी तरह जानता है और उसकी बातों को गंभीरतापूर्वक नहीं लेता है। वह दोस्त से भी इस तरह की बातें करता है जैसे उससे उसकी पुरानी दुश्मनी है''''

---

1. वारिस : जीनियस, पृष्ठ 222

2. वारिस : जीनियस, पृष्ठ 223

"तुम्हारी बुशर्ट पर ये दाग कैसे है ? मैंने पूछा। उसने भी एक नजर इन दागों पर डाली- ऐसे जैसे उन्हें पहली बार देख रहा हो। कैसे हैं ? उसने ऐसे कहा जैसे मैंने उस पर कोई इल्जाम लगाया हो। " हाथ कट गया था, उसी के दाग होंगे। "हाथ कैसे कट गया ? 'उसका चेहरा कस गया। 'कैसे कट गया ? 'वह बोला कैसे भी कटा हो, तुम्हें इससे क्या है ?

वह अनेक बार अच्छी सी लड़की देखकर शादी करने का निश्चय करता है क्योंकि अपना अकेलापन उसके लिए असह्य हो गया है। उसका अनेक बार अनेक लोगों से छोटी-छोटी सी बातों पर झगड़ा हुआ है। वह बिना किसी लाग लपेट के सब बातें कहने की क्षमता रखता था। उसका अधिकतर प्रेम विवाहित स्त्रियों के साथ ही होता था। वह जिन्दगी के विषय में बड़े बड़े मनसूबे बाँधता था। वह कभी नौकरी लगी होने पर कहता 'नहीं, मैं तुम लोगों की तरह नहीं जी सकता.... मैं अपने वक्त का हिस्सा नहीं, उसका निगाहबान हूँ।"[1] लम्बी बेकारी के दौरान वह कहता, मुझे समझ आता है कि मैं बिल्कुल कट गया हूँ... हर चीज से बहुत दूर हो गया हूँ।"[2] इस तरह उसका बेकारी के दौरान सबसे कट जाना बहुत स्वाभाविक है राकेश को मालूम था कि बेरोजगारी मनुष्य को क्या से क्या बना देती है। अतः अपने अनुभूत सत्य को उन्होंने इस कहानी में सशक्तता के साथ अभिव्यक्ति दी है। नौकरी छूटने पर व्यक्ति अपने को अशक्त मानते हुए भी स्वीकार करना नहीं चाहता। उसका अहं उसे झुकने नहीं देता है।

'जख्म' कहानी का नायक अपने ढंग से जीने का कायल है 'किन्तु परिवेश में अकेलेपन के बोझ से दबा हुआ है। कभी वह नौकरी करता है तो कभी बेकारी भोगता है। जीवन में आये अकेलेपन को वह शादी से भरना भी चाहता है। वह बार बार अपने इस निर्णय को दोहराता हुआ भी विवाह नहीं करता है। उसकी भटकन व अकेली स्थिति जीवन की व्यवस्था के कारण है। वह टूटा हुआ और बिखरा हुआ तो है किन्तु इस सबके लिये व्यवस्था जिम्मेदार है। कहानी में चित्रित परिवेश इसे उजागर करता है। जख्म के नायक का चिन्तन साधारण न होकर असाधारण है। सामाजिक व्यवस्था से टूटा हुआ और अकेला यह नायक वक्त का निगहवान है क्योंकि वह जीता नहीं है, देखता है : "क्योंकि जीना अपने में घटिया चीज हैं। जीने के नाम पर तो पेड़-पौधे भी जीते हैं–पशु पक्षी भी जीते हैं।[3] जख्म

---

1. वारिस : जख्म, पृष्ठ 230
2. वही, पृष्ठ 233
3. वही, पृष्ठ 233

के नायक का व्यक्तित्व ग्रास्तित्विक संदर्भों में भी देखा-परखा जा सकता है। भयावह परिवेश में घिरकर और अकेलेपन से दबकर टूटता हुआ वह जिजीविषा से युक्त है। उसका यह चाहना और कहना कि "पर तुम्हें इतना बता दूँ कि मुझे कम से कम बीस साल और जीना है। मैं तुम्हारे या दूसरे लोगों के बारे में नहीं कह सकता—पर अपने बारे में कह सकता हूँ कि मुझे जरूर जीना है।"[1] यह कथन उसकी आस्तित्विक दौड़ को स्पष्ट करता है। ऐसा लगता है कि जख्म यहाँ हाथ में नहीं है अपितु उसके मूल अस्तित्व-रूप में भी है जिससे कचोट और पीड़ा बाहरी 'जख्म' को महसूस ही नहीं होने देती। असल में बाहरी 'जख्म' तो उतना नहीं है जितना कि भीतरी। यही कारण है कि बड़े शहरों की भीड़ में इस व्यक्ति का चेहरा यह इशारा करता है कि आज जीवन कितना जड़-निष्क्रिय, अर्थहीन और अकेलेपन से भर गया है। परिवेश से कटकर इन्सान कैसा बेकार हो गया है, इस बोध को यह कहानी और भी गहरा उतार सकती थी यदि राकेश ने थोड़ा विवरणों और एक जैसे कथनों की आवृत्ति से बचने का प्रयास किया होता। यही कहानी की वह कमजोरी है जो डॉ० नामवरसिंह को यह कहने को विवश करती है कि "इसमें दर्शक का सत्य है द्रष्टा का नहीं"[2] और डॉ० मदान को यह कहने को प्रेरित करती है कि "यदि कहानी में मित कथनों से काम लिया जाता तो यह अधिक सशक्त हो सकती थी"[3] इस कहानी में संकेतित संदर्भों में बुनावट कम दिखावटी विवरण अधिक हैं फिर भी यह सच है कि यह टूटे और बिखरे हुए उस व्यक्ति की कहानी है जो अकेलापन तो झेल रहा है पर, अपने अस्तित्व के प्रति इतना जागरुक है कि यह भी कह देता है : मेरी मौजूदगी में वह मेरे सिवा किसी और के बारे में सोचे, या मुझसे उसका जिक्र करे, मुझे बर्दाश्त नहीं है।"[4]

'वारिस' अँग्रेजी के एक ऐसे मास्टर की कहानी है जो आर्थिक अभावों की चक्की में पिसकर न केवल जर्जर हो गया है : अपितु, बेकार और बेमानी भी हो गया है। अपनी जमापूँजी या प्रतिभा के गवाह कुछ कागज उसके पास हैं जो उसकी पूंजी है, लेकिन उसे कद्रदान नहीं मिलता है। वह बहुत लगन के साथ मैट्रिक के दो बच्चों को अँग्रेजी पढ़ाता है। वह एक वेतन भोगी मास्टर नहीं अपितु एक कर्मठ, स्नेहशील,

---

1. वारिस : जख्म, पृष्ठ 237
2. डॉ० नामवरसिंह : नयी कहानी सफलता और सार्थकता नामक निबंध नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति में संकलित पृष्ठ 71
3. डॉ० मदान : हिन्दी कहानी, पृ. 118
4. वारिस : जख्म, पृष्ठ 233

साहित्यिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भी है । वह निश्चित समय से अधिक बच्चों को पढ़ाता है । उसका निवास स्थान दरिद्रता का गवाह था । अपनी जिन्दगी की पूँजी जो कुछ लेखों के रूप में थी उसे उन्होंने उन शिष्यों को समर्पित कर दिया जो उसका महत्व नहीं जान सके । कैसा क्रूर व्यंग्य है ? प्रकृति का कि साहित्य की अमूल्य रचनाओं की बच्चे नाव बनाकर खेलते रहे और वह साहित्यकार संसार में उपेक्षित और अनजान ही रह गया । विवश, पीड़ित, टूटे हुए और अकेलेपन के बोध को गहराने वाली यह राकेश की अच्छी कहानियों में एक से है ।

दोराहा का केसरी निश्चय नहीं कर पाता कि उसे कौन से रास्ते पर चलना चाहिए । उसके अंदर की जलन भी कभी नहीं बुझती है । नये वर्ष के दिन श्यामा का हस्तलिखित पत्र उसे पुराने वर्ष की स्मृतियों में ले जाता है । उसे लगता है कि स्त्री का रूप बहुत जल्दी बदल जाता है । श्यामा के साथ उसकी सहानुभूति को पूर्णिमा ने गलत समझा । यह बात उसे कुरेदती रही । वह पूर्णिमा के व्यंग्य की अवहेलना करके श्यामा के बुलाने पर उसके यहाँ गया । कुछ ही दिन में उसे समझ भी गया। वह श्यामा के साथ सहानुभूति होने के कारण सबके व्यंग्यबाणों का निशाना बना रहा; लेकिन श्यामा उसे बिना बताए शील के साथ चली गयी और उसने भी इस संबंध को झटके से काटकर फेंक दिया । यहाँ स्त्री पुरुष संबंधों को यथार्थ के ठोस धरातल पर रखा गया है । इसमें केसरी की व्यथा पुंजीभूत हो उठी है ।

'धुंधला दीप' का केशरी अपनी उदासी दूर करने रेस्ट्राँ में जाता है । उसकी जेब में राधा और नरेन्द्र के विवाह का चित्र है । उनके विवाह की प्रतिक्रिया इस रूप में होती है–"मन झुंझलाया । हो गया है विवाह तो हुआ करे । रोज ही होते हैं । विवाह । रद्दी लिपियों को ढकने के लिए चमकीले मोहरबन्द लिफाफे । "[1] वह इतनी पीता है कि नशा बहुत तीव्र हो जाता है । वह घूमने जाता है तो उसे लगता है कि सबके बीच घिरकर भी वह अकेला है । वह सोचता है कि उसका संसार से अलग अस्तित्व है और उसे केवल अपना जीवन जीना है। ऐसी मनःस्थितियों में वह दोस्तों के साथ बैठकर और पीता है । वह राधा और नरेन्द्र एक ऐसा त्रिकोण था जिसमें सभी अपने अपने व्यक्तित्व से दूसरे को प्रभावित करना चाहते थे । केसरी को अपनेपन का मान है । राधा अपनी इच्छानुकूल उसे चलाना चाहती है । उसके अनुसार स्वयं को बहलाना नहीं चाहता । राधा उसके और श्यामा के संबंधों को लेकर शंका करती है और वह सीधा सपाट उत्तर देता है । राधा उस सच्चाई को नहीं सहन कर पाती । केसरी फिर अकेली आवारा जिन्दगी बिताने को विवश हो हो जाता है । वस्तुतः केसरी के जीवन में न केवल ऊब है वरन् अकेलापन भी है जो

---

1. क्वार्टर : धुंधलादीप, पृष्ठ 117

कहानी के प्रारंभ में ही स्पष्ट हो जाता है । अपनी उदासी को वह हर तरह दूर करना चाहता है, किन्तु वह बढ़ती जाती है और जीवन निरुद्देश्य होता है ।

'लक्ष्यहीन' के केसरी की जिन्दगी भी आवारा, अकेले, टूटे-छूटे व्यक्ति की जिन्दगी है । उसके दोस्तों का खयाल है कि वह किसी भद्र लड़की से परिचय का भी अधिकारी नहीं है । वह अपनी सहपाठिनी के यहाँ रात्रिभोज के लिए जाता है । वह उससे आत्मीयता से मिलती है तथा उसे समझने का दावा करती है । वहाँ मिसेजवर्मा से उसका परिचय होता है वह स्पष्ट रूप से कह देता है कि वह उनके विचारों का समर्थक नहीं है । वहीं मंजुला भी उसे मिलती है । मंजुला उससे प्रभावित दिखती है तथा अपनी गाड़ी में उसको घर छोड़देती है । जब वह बताता है कि वह चंद्रहास में रहता है, मंजुला कहती है कि वहीं कोई केसरी भी रहता है । उसके विषय में उसने सुना है कि वह काफी सनकी, बददिमाग और व्यवहार शून्य व्यक्ति है । वह नहीं जानती कि उसका साथी ही वह व्यक्ति है । यह कहानी इस तथ्य को व्यंजित करती हैं कि किसी व्यक्ति का सही मूल्यांकन पूर्वाग्रहों से युक्त होकर नहीं किया जा सकता हैं । 'धुंधला दीप' का केसरी यदि अकेलेपन से पीड़ित है तो लक्ष्यहीन का केसरी निरर्थकता बोध से । एक अजीब ईत्तफाक है कि राकेश की इन तीनों कहानियों के पात्र केशरी नाम के व्यक्ति हैं । मुझे तो ऐसा लगता हैं कि तीनों केशरी एक ही व्यक्ति का विकसित रूप हैं । 'दोराहा' का केशरी जीवन में मिली असफलता से पीड़ा बटोरता हुआ 'धुंधलादीप' में अधिक उदास और बेगाना हो जाता हैं और हलकी सी किरण पाकर फिर पराजित होता हुआ टूट जाता है । पीड़ा, उदासी, बेगानापन और अन्ततः वह निरर्थकता बोध से भर जाता है । ये सभी पात्र जीवन में हारे-असफल, टूटे और ऊबे हुए हैं । इन सभी में कहीं न कहीं अपने लिए एक निष्प्रयोज्यता का भाव है जो उन्हें अकेलेपन से जोड़ देता है । शीर्षक के अन्तर्गत अब तक विवेचित पुरुष परिवेश से कटकर यंत्रणा भोगते हुए अकेलेपन का बोध जगाने वाले पात्र हैं ।

राकेश की कहानियों में आये पात्रों में नारी पात्र भी अकेलेपन के बोझ से पीड़ित है । इनमें वे नारियाँ आती हैं जो अतृप्ति में जी रही हैं, प्रणयाकांक्षिणी हैं और इस क्षेत्र में मिली असफलता ने उन्हें न केवल निराश, उदास और अकेला छोड़ दिया है, अपितु भीतर ही भीतर तोड़ भी दिया है—बिखरने पर विवश भी कर दिया है । इन नारियों में एक वर्ग तो उन नारियों का है जो अपनी कुरूपता व भद्दी शक्ल के कारण उपेक्षिताओं का जीवन बिताती हुई कुंठित हैं । इनमें जीवन का कोई भी चिह्न शेष नहीं दिखाई देता है । इनका व्यवहार इनके भीतर की रिक्तता को स्पष्ट कर देता है । 'मिस पाल' और 'सीमाएँ' कहानियों की नारियाँ ऐसो ही इसके अतिरिक्त दूसरा वर्ग उन स्त्रियों का है जो समय के थपेड़े सहते-सहते टूट चुकी

हैं, विरक्ति और रिक्तता का अहसास लिये जैसे-तैसे जी रही हैं । आकांक्षाओं की प्रतिपूर्ति का अभाव और परिवेश से जुड़े रहने की विवशता ने इन नारियों की टूटन को और अधिक बढ़ा दिया है । 'आखिरी सामान' की मिसेज भण्डारी सीमाएँ की उमा और 'उर्मिल जीवन' की नारी ऐसी ही विवश और टूटी व बिखरी हुई नारियाँ हैं । सुहागिनें की 'मनोरमा' को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है ।

'मिस पाल' : मिसपाल राकेश की प्रतिनिधि कहानियों में से एक है । यह एक ऐसी नारी की कहानी हैं जिसे समाज में दूसरों के उपहास का पात्र बनना पड़ा । उसके मोटापे और कुरूपता के कारण जो ग्रन्थि उसके मन में बन गयी उसने उसे कभी भी सहज जीवन नहीं बिताने दिया । वह अपने दफ्तर के साथियों से परेशान हैं । उसकी दृष्टि में वे लोग ओछे और बेईमान हैं । वह उनके स्वार्थी स्वभाव की निंदा करती थी । लेकिन उसकी परेशानी का वास्तविक कारण आफिस के कर्मचारियों द्वारा उसके रंग रूप पर टिप्पणी करना था । वह यथासंभव अपना मोटापा कम दिखाने एवं रंग रूप निखारने का प्रयत्न करती है, लेकिन जब कोई कहता—" मिसपाल इस नयी कमीज का डिजाइन बहुत अच्छा है । आज तो गजब ढा रही हो तुम !···· बुखारिया कहता" आजकल मिसपान पहले से स्लिम भी तो हो रही हैं "[1] तब उसका मन बहुत दुखी हो जाता । इस प्रकार वह दफ्तर के अन्य लोगों के बीच रहते हुए भी बहुत अकेलापन महसूस करती हैं । इसी कारण वह आफिस से बाहर भी किसी से किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखती है । आफिस के एक कर्मचारी रणजीत के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के कारण वह उससे यदाकदा मिलकर अपने मन की बात कह पाती थी । ऐसी ही मनःस्थिति में 'मिसपाल' अपनी नौकरी छोड़कर बिना किसी को बताये मनाली के पास एक छोटे से गाँव में अकेली जिन्दगी बिताने चली जाती है, किन्तु जिसके हिस्से में मात्र ऊब और अकेलापन हो वह सुखी कैसे रह सकता है ? 'मनाली' की जिंदगी-स्वतंत्र जिंदगी भी उसकी उदासी को दूर नहीं कर सकी ? वहाँ अचानक जब रणजीत से मुलाकात होती है तो वह पुनः दिल्ली की बातें करने लगती है । उसके मन की यह ग्रन्थि अभी तक दूर नहीं हो सकी कि उसके साथी उसके साथ सहज प्रेममय व्यवहार नहीं करते थे तथा उसके मोटापे और रूप-रंग का मजाक उड़ाते थे । प्रगट में वह उनके इस व्यवहार को महत्व नहीं देना चाहती, किन्तु उसके मन में इसका गहरा क्षोभ भी है । यही उसके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है ।

राकेश ने 'मिस पाल' कहानी में एक भद्दी और मोटी स्त्री के संवेदनशीलता और तत्सम्बन्धित विडम्बना को सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है ।

---

1. क्वार्टर : मिस पाल, पृष्ठ 14

परिवेश के दबाव, बहशीपन और अहवानियत भरे स्वभाव से व्यथित व संत्रस्त 'मिसपाल' सब कहीं से कटकर अकेलेपन को जीती नहीं, बल्कि झेलती है । कारण न तो उसके पास रूप है, न मुहब्बत है और दौलत व शौहरत ही है । ये ही तो किसी भी स्त्री की कुल जमा-पूँजी होती है । जाहिर है कि 'मिसपाल' को ये सब तो क्या इसमें से एक भी प्राप्त नहीं है । वह नौकरी पेशा औरत है पर अपने दफ्तरी परिवेश को न झेलपाने के कारण वह नौकरी छोड़कर पहाड़ पर चली जाती है। देह की सीमाहीन विस्तृति और चेहरे की रंगहीन छवि उसके लिये अभिशाप है । अभिशाप ग्रस्त 'मिसपाल' अपने खालीपन को भरने के लिये संगीतकला व चित्रकला में कुछ सार्थकता पाने का श्रम उठाती है किन्तु वहाँ भी असफल रहती है । बिखरे मन और फैले तन को लेकर वह जीवन की विडम्बनाओं का भार ढोती रहती है। सारी कहानी में मिसपाल की अभिशप्त नियति, ऊब, उदासी, आत्मकेन्द्रित स्थिति और अकेलेपन का गहरा बोध उनके पीड़ित–आत्मपीड़ित और संत्रस्त जीवन को ही प्रमाणित करता है । उनके जीवन और सृजन में तनाव का बिन्दु उभरा है और उसी बिन्दु पर कहानी गहरी हो गई है। 'मिस पाल' का एकान्त में लौट जाना. अतिथि से कटजाने की कोशिश करना, दो लड़कियों की खुसुर-पुसुर से उसके आदमी या औरत होने में संदेह का संकेत, उनको निकट आकर देखने की दावत, पहाड़ी बालकों की सुन्दरता को आँखें झपका कर देखना आदि इस तनाव को कसते हैं और गहराते हैं ।[1] मिस पाल' के जीवन की नीरसता उनके अस्त-व्यस्त स्वभाव व जीवन से मिलकर और गहरी हो गई है। वे लापरवाही से खाती-पीती हैं । उनके ये वाक्य 'यह सब्जी मैंने परसों बनाई थी ·····रोज बनाने का उत्साह भी तो नहीं है । कई बार तो सप्ताह भर का खाना एक साथ ही बना लेती हूँ ·········· सन्दूक में 25–30 खुश्क चपातियाँ पड़ी थी । सूखकर कई उनके कई तरह की आकृतियाँ धारण करली थी ।[2] उनके नीरस, रिक्त और निरर्थक जीवन का बोध कराते हैं । यों वे अपने अस्त-व्यस्त और निरर्थक जीवन को पहचानती है तथा यह बोध उन्हें और खाली करता जाता है । इस खालीपन को उनके ये वाक्य भी गहरा देते हैं : 'मैं बहुत बदकिस्मत हूँ रणजीत ! हर लिहाज से············मैं सोचती हूँ रणजीत ! कि मेरे जीने का कोई अर्थ नहीं है ।'[3] कहने की आवश्यकता नहीं कि 'मिस पाल' की कुंठा और ट्रेजडी को राकेश ने बड़े कलापूर्ण और सूक्ष्म

1. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी कहानी, पृष्ठ 117

2. क्वार्टर : मिसपाल पृष्ठ 24-25

3. क्वार्टर : वही, पृष्ठ 30

ब्यौरों से उजागर किया है। यह बड़ी सुन्दर कहानी है। नजाकत और नफासत से राकेश ने, मंटो की कहानी 'बू' की तरह इसे लिखा है।[4]

सीमाएँ—'हीन भावना से ग्रस्त एक लड़की की कहानी है। उसे दुख हैं सुन्दर से सुन्दर वस्त्र अच्छे से अच्छा गहना भी उस पर नहीं फबता। अच्छे वस्त्र पहनकर, बनाव शृंगार करके उसे अपनी कुरूपता और दुखी करती है। वह अपनी सखी के साथ एक विवाहोत्सव में जाती है। वहाँ उसकी हीन-भावना अत्यन्त प्रबल हो जाती है और वह अत्यन्त निराश वहाँ से लौटती है। मंदिर में जब एक युवक निरन्तर उसकी ओर देखता है तो उसे लगता है कि उसमें भी नारीत्व है। उसकी ओर भी कोई प्रेम से निहार सकता है। भीड़ में वही युवक जब उसका स्पर्श करता है तो उसे अपूर्व आह्लाद का अनुभव होता है, लेकिन नियति की क्रूरता देखिए कि उस युवक का स्पर्श उसके कौमार्य के कारण नहीं, अपितु गले में पहनी जंजीर को उड़ा लेने के लिए था। हीन भावना से ग्रस्त, प्यार की भूखी लड़की का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस कहानी की विशेषता है। वस्तुतः 'उमा' खाने-पीने की हर सुविधा को पाकर भी जीवन में अभावग्रस्त थी। उसके अभाव को किसी चीज़ से नहीं भरा जा सकता था। रही सही खालीपन की मनस्थिति उसकी कुरूपता जनित हीन भावना को और भी खाली कर देते हैं। कहानी में उमा का अस्त-व्यस्त जीवन और उससे निष्पन्न व्यर्थताबोध की गहरा कहानी को नारी जाती के अकेलेपन से भर देती है।

'भूखे' उस सुन्दर और आकर्षक युवती 'एवलीना' की कथा है जिसे परिस्थितियों के क्रूर थपेड़ों ने निरन्तर प्रहार करके जर्जरित कर दिया है। सड़क चलते नवयुवक, होटल का मैनेजेर, ढाबेवाला सभी उसकी विवशता से लाभ उठाना चाहते हैं। वह आर्थिक अभाव में भी अपना स्वाभिमान बनाए रखती है तथा अपने और अपने बच्चे के लिए किसी की दया नहीं चाहती। उसने अँग्रेज होते हुए सत्यपाल नामक पंजाबी युवक से विवाह किया। सत्यपाल अच्छा चित्रकार होते हुए भी धन कमाने में सफल नहीं हो सका। चिन्ता ओर संघर्ष के कारण जब उसे टी. बी. हो गई तो एवलीना उसे शिमला ले आई और तन मन से उसकी देखभाल करने लगी। वह उसके चित्र बेचना चाहती है, पर उनका खरीदार नहीं मिलता। पति की मृत्यु आर्थिक संकट और बच्चे का दायित्व उसे बिल्कुल ही तोड़कर रख देते हैं—वह अपने बच्चे की छोटी-छोटी इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाती। जहाँ कहीं वह जाती है लोग उसके यौवन और सौन्दर्य पर छींटाकशी करते हैं। उसके यौवन का सौदा करना चाहते हैं, किन्तु वह कभी परिस्थिति से समझौता

---

4. अश्क : हिन्दी कहानी एक अन्तरंग, परिचय, पृष्ठ 97

नहीं करती । उसकी आशा और उसका विश्वास उसे हर संघर्ष का सामना करने की शक्ति देते हैं ।

'आखिरी सामान' एक ऐसी आकर्षक युवती की कथा है जिसे समाज में पर्याप्त प्रशंसा और सम्मान मिलता है । वह (मिसेज भण्डारी) जहाँ भी जाती हैं लोग उसके रूप-गुण पर मुग्ध हो जाते हैं । उसके पति को उस पर गर्व है, लेकिन वह अपने पति की महत्वाकांक्षा-पूर्ति के लिये उसके अधिकारी की वासना-पूर्ति का साधन बनने को तैयार नहीं है । परिणामतः अधिकारी के रूष्ट होने पर जब पति जेल चले जाते हैं तो घर की हर वस्तु नीलाम हो जाती है । आखिर में उसे नीचे बुलाया जाता है तो वह अनुभव करती है : सीढ़ियाँ उतरते हुए उन्हें लगा, जैसे वे आप नहीं उतर रहीं, घर का आखिरी सामान नीचे पहुँचाया जा रहा है ।'[1] वास्तव में मिसेज बेला भण्डारी का यह रूप एक बिखरी हुई नारी का रूप है जो अपने परिवेश के वहशीपन से संत्रस्त तो है किन्तु अपने अस्तित्व-रक्षण के लिये प्रयत्नशील भी बनी रहती है । वह अपने इस प्रयत्न में अकेला अनुभव करती है। क्यों न करे ? जब उसका परिवेश ही ऐसा है और तो और उसका पति भी । वह अकेले क्षणो मै कुलबुलाती है, व्यथित रहती है, किन्तु गिरती नहीं है । उनका अकेलापन बढ़ता जाता है : 'सुबह नाश्ते के समय भी उनमें बातचीत नहीं होती है । किसी चायपार्टी में साथ जाना पड़ता है तो सारा समय खिचाव बना रहता है । मिस्टर भण्डारी बारह सौ की नौकरी पाने का मंसूबा पूरा नहीं हुआ था । वे सोचती थीं कि क्या इसकी वजह वह ही हैं[2] मिसेज भण्डारी का पीड़ा बोध और अकेलापन पति की गिरफ्तारी, एक-एक सामान की नीलामी और आड़े वक्त में उनके सहपाठी सुधीर की अपेक्षा से और गहरा जाता है । राकेश ने उनके अकेलेपन को बड़ी ईमानदारीं से अभिव्यक्ति दी है ।

'उर्मिल जीवन' की नीरा का विवाह उसकी जीजी की मौत के एक महीने बाद उसके जीजा से हो जाता है । कभी जीजा के बलपूर्वक घूमने पर उसने थप्पड़ मार दिया था ,लेकिन अब उनकी पत्नी है । दो हाथों द्वारा जकड़े जाने पर उसने आँखे मूँदली और "दो मोटे मोटे होंठ, नाक के लम्बे बाल और विचित्र सी गंध । निकट और निकट । आँखों के दो गहरे गड्ढे । नीरा हिचकिचाई । चाहा बाहें झटक दे और जोर से तमाचा लगाये, जिससे सारा वातावरण झन्ना उठे । ' मगर हाथ नहीं उठ सका । आज वह नासमझ बालिका नहीं, समझदार नवयुवती है ।" अपनी

---

1. पहचान : आखिरी सामान, पृष्ठ 73
2. पहचान : आखिरी सामान, पृष्ठ 71

विवशताओं को पी जाने वाली नारी की यह कहानी बहुत मर्मस्पर्शी है तथा पाठक को सोचने के लिए विवश करती है। नीरा की मनस्थिति का चित्रण अत्यंत मनोवैज्ञानिक तथा स्वाभाविक है ।

'नन्हीं' एक भावना प्रधान कहानी है जिसमें एक नवयोवना की भावनाओं का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। वह व्याहकर पहली बार ससुराल आती है तो उसके पति का दूसरा व्याह होने कारण उसका स्वागत सत्कार नहीं किया जाता और उसके पति की लड़की उसे माँ कहकर संबोधित करती है । जिसे अभी तक बेटी सुनने का अभ्यास था वह अब एकाएक इस संबोधन को नहीं स्वीकार पाती और और तीव्र ज्वर से ग्रस्त हो जाती है। 'एक घटना' एक विदुषी एवं प्रतिमा सम्पन्न युवती की कथा है। आर्थिक अभाव एवं निरन्तर संघर्ष उसे जीवन में आगे बढ़ने की सुविधा नहीं देते हैं। उसकी सारी प्रतिमा गरीबी के आवरण में छिप जाती है। वह अपने पिता के अमूल्य ग्रन्थों को कोड़ियों के मोल बेचने को विवश होती है। यह एक अत्यंत प्रभावशाली एवं मार्मिक कहानी है तथा मानव के विकास में परिस्थितियों के महत्व को रेखांकित करती है। 'कटी हुई पतगे' की राजकरनी की आँखों से घायल इतिहास झाँकता है। जो बिल्ली बाधन रीछनी जैसी उपाधियों से विभूषित होती थी वक्त की मार सहकर गालियाँ भी चुपचाप खाने को विवश हो जाती है।

'लेकिन इस तरह' कहानी की राजकरनी सामाजिक व्यंग्य बाणों का निशाना बनकर आत्महत्या करने पर विवश होती है। अन्य परिवार उसके प्रेम प्रसंगों में रस लेते हैं तथा दिखावटी सहानुभूति भी व्यक्त करते जातेहैं। स्कूल में उसको लड़कियों में धुलमिल कर रहने पर भी टीका टिप्पणी की जांती थी साथ ही सब उसके गुणों की भी चर्चा करते थे कि वह काम में बहुत अच्छी थी, मेहनत से पढ़ाती थी, सफाई की देखभाल भी ठीक से कर लेती थी। उसे अनेक बार अकारण तिरस्कार और अपमान सहना पड़ता था । इन्हीं कारणों से उसने विवश होकर आत्म हत्या की।

महानगरीय संत्रास और भयावहता :

राकेश के जीवन का काफी भाग शहरों में बीता था। दिल्ली और बम्बई की विरूपताओं को उन्होंने बहुत निकट से देखा था, भोगा था। इन नगरों में एक साधारण व्यक्ति के लिए अपना अस्तित्व बनाये रखना कितना दुष्कर है उसकी झाँकी हमें राकेश की 'ठहरा हुआ चाकू, 'जख्म', 'पाँचवे माले का फ्लैट' जैसी कहानियों में मिलती है ।

'ठहरा हुआ चाकू' में दादा लोगों के आंतक का रोमांचकारी चित्रण हैं। एक बेरोजगार युवक अपनी प्रेयसी से मिलकर घर लौटते समय रास्ते में बर्फ खरीदने के

लिए स्कूटर रोककर उतरता है तो एक नत्थासिंह नामक गुण्डा उसमें वैठ जाता है। युवक के स्कूटर अभी खाली नहीं है कहने पर वह उससे लड़ने पर अमादा हो जाता है। तथा उसके एक झापड़ मार देता है। युवक द्वारा विरोध किये जाने पर वह चाकू निकाल लेता है। खुले चाकू को देखकर युवक की जवान और छाती जकड़ गई और वह वहाँ से बदहवास सा भागता गया। वह अपने साथीं महेन्द्र को इस घटना की सूचना देता है तो पुलिस में रिपोर्ट लिखाता है तथा हर प्रकार से उस गुण्डे के विरुद्ध कार्यवाही करने को तत्पर होता है उसका एक रिपोर्टर मित्र भी उसके साथ होता है। घटना स्थल का कोई व्यक्ति सरकार के खिलाफ गवाही देने को तैयार नहीं। सभी गुण्डों से डरते हैं क्योंकि उनसे पुलिस, मंत्री, अधिकारी कोई उनकी रक्षा नहीं करते। जिस समय सरदार को शनाख्त के लिए लाया जाता है उस समय युवक की मनःस्थिति अच्छी नहीं रहती है। वह बहुत बुझा-बुझा रहता है। मित्र के आश्वासन से भी उसमें किसी प्रकार के उत्साह का संचार नहीं होता। उसकी मनःस्थिति का एक चित्र देखिये:—

'उसने पेंसिल हाथ से रखदी और हथेली पर बने शब्दों को अँगूठे से मल दिया।तब तक न जाने कितने शब्द और वहाँ लिखे गये थे जो पढ़े भी नहीं जाते थे। सब मिलाकर आड़ी-तिरछी लकीरों का एक गुंझल था जो मल दिए जाने पर भी पूरी तरह मिटा नहीं था। हथेली सामने किए वह कुछ देर उस अधबुझे गुंझल को देखता रहा। हर लकीर का नोक-नुक्ता कहीं से बाकी था। उसने सोचा वहां कहीं एक वाश बेसिन होता तो वह दोनों हाथों को अच्छी तरह मलमल कर धो लेता।"[1] यह मनः- स्थिति युवक के अकेलेपन और महानगरीय जीवन में व्याप्त संत्रास, भयावहता और असुरक्षा को भी स्पष्ट कर देती है। बड़े शहरों की जिन्दगी जितनी तनाव भरी और दहशत भरी होती जा रही है इसका जीवन्त उदाहरण यह कहानी है। कहानी मै आये संदर्भ और विवरण महानगरीय संत्रास और भयवहता को प्रमाणित करते हैं : "खुले चाकू की चमक से उसकी जबान और छाती सहसा जकड़ गई। उसके हाथों से पैसे वहीं गिर गये और वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ...."[2] गुण्डों के खिलाफ गवाही देने वाला इन महानगरों में कोई नहीं होता है। सारा परिवेश और जीवन इनसे आतंकित रहता है। मेडीकल स्टोर के इंचार्ज का यह कथन महानयरीय भयावहता और संत्रासमय जीवन को संकेतित करता है : "नत्थासिंह को यहाँ कौन नहीं जानता ? अभी कुछ ही दिन पहले उसके आदमियों ने पिछली गली में

1. पहचान ; ठहरा हुआ चाकू, पृष्ठ 17

2. वही : पृष्ठ 16

एक पान वाले का कत्ल किया है ···खैरियत समझिये कि आपकी जान बच गई वरना हमें तो किसी को इसकी उम्मीद नहीं रही थी। अब बेहतरी इसी में है कि आप चुपचाप मामले को पी जायें। यहाँ आपको एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलेगा जो उसके खिलाप गवाही देने को तैयार हो।'[1]

युवक निरन्तर एक भय और असुरक्षा का अनुभव करता है। लगता है कि उसने रिपोर्ट लिखा कर अच्छा नहीं किया। गुण्डे समय आने पर उससे अवश्य बदला लेंगे और यह भय उसे सोने भी नहीं देता—"महेन्द्र के सो जाने के बाद वह काफी देर तक साथ के कमरे से आती साँसों की आवाज सुनता रहा था–उस आवाज में उतनी सुरक्षा का अहसास उसे पहले कभी नहीं हुआ था। वह आवाज–एक जीवित आवाज–उसके बहुत पास थी और लगातार चल रही थी। जितनी जीवित वह आवाज थी, उतना ही जीवित था उसे सुन सकना–चुपचाप लेटे हुए, बिना किसी कोशिश के। अपने कानों से सुन सकना।····खिड़की से कभी-कभी हवा का झौंका आता जिससे रोंगटे सिहर जाते····शायद रोंगटों में अपने अस्तित्व की अनुभूति।"[2] स्पष्ट ही इस कहानी में महानगरीय जीवन की भयवहता और तज्जनित संत्रास पूरी सफाई के साथ अभिव्यंजित हुआ है। गुण्डों द्वारा आतंकित और संत्रस्त परिवेश का जीवन्त चित्र यहाँ है। सुरक्षा और अस्तित्व का संकट आज के मानव की सबसे बड़ी समस्या है। राकेश ने इसे गहराई से संकेतित कर दिया है।

'पांचवे माले का फ्लैट' : यह बम्बई महानगर के जीवन की गुत्थियों पर प्रकाश डालती है। वहाँ लोग एक दूसरे को पूरा नाम नहीं जानते यथा ए० कपूर के 'ए' को कोई गिनती में ही नहीं लाता। 'ए' का मतलब 'अविनाश' है या 'अशोक' यह भी जानने की जरूरत किसी को नहीं। कामकाजी जिन्दगी के सब काम कपूर से चले जाते है। जो अधूरापन रहता हैं वह मिस्टर या साहब से पूरा हो जाता है। बम्बई में दिन और में ज्यादा फर्क नहीं होता–सिवाय अँधेरे और रोशनी के। जहाँ दिन में अँधेरा रहता है, वहाँ रात को रोशनी हो जाती है, जहाँ दिन में रोशनी रहती है, वहाँ रात को अँधेरा हो जाता है। खाना न इस मौसम में पचता है न उस मौसम में।"[3]

बम्बई जैसे महानगरों में लोग औपचारिकता में जीते हैं। मन में कुछ सोचते हैं और कहते कुछ और हैं। इस प्रकार के औपचारिक व्यवहार आदमी की जिन्दगी का

1. पहचान : ठहरा हुआ चाकू, पृष्ठ 20
2. पहचान : ठहरा हुआ चाकू, पृष्ठ 22
3. पहचान : पाँचवे माले का फ्लैट, पृष्ठ 206

रस धीरे-धीरे सोखते जाते हैं । अविनाश 'पाँचवे माले के फ्लैट' में रहता है । उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं कि वह कहीं मकान लेकर रह सके । एक बार जब वह सरला और प्रमिला दो बहनों को अपने घर ले जाता है तो वे बहुत नाक भौं सिकोडती हैं । उसके पाँचवे माले पर पहुँचने के लिए अँधेरे जीने से आना पड़ता था । एक के बाद एक--पाँच माले । पहले माले पर सारी बिल्डिग की संडाध, दूसरे पर खोपड़े की बास, तीसरे पर अनारदाने की बू, चौथे पर आयुर्वेदिक औषधियों की गंध ।"[1] प्रमिला, सरला, अविनाश के घर उसके पलंग उसके सामान का उपहास करती हैं । गुसलखाने से आयी सरला का यह कथन, "यह गुसलखाना तो अच्छा खासा अजायबघर है । मै तो समझती हूँ कि अन्दर जाने वालों से एक एक आना टिकट वसूल किया जा सकता है । यह उस घर में रहने वालों की आर्थिक स्थिति एवं विवशताओं का मजाक ही तो है । महानगरों में कितने ही लोग ऐसी जिंदगी जीते हैं और अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाते हैं ।

राकेश का नगर बोध उनकी उन सभी कहानियों में मिलता है जहाँ एक टूटे-हारे हुए वेरोजगार युवक का चित्रण है। उन कहानियों की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं । अतएव यहाँ उनकी पुनरावृत्ति नहीं करेंगे ।

विभाजन और पारिवारिक विघटन की कहानियाँ :

देश को एक साथ ही आजादी भी मिली और विभाजन का ताप और दाह भी । कितने ही लोग घर से बेघर हो गये और कितनों को अपने भरे-पूरे परिवार में न केवल साजो सामान से हाथ धोना पड़ा वरन् अपनी संतति को भीछोड़कर इस ओर से उस ओर आना जाना पड़ा । विभाजन तो देश का हुआ पर साथ ही घर भी विभाजित हो गये और मनों के बीच भी एक विभाजक रेखा खिंच गई । यह बड़ी दारुण और त्रासद स्थिति थी जिसे भोगने के लिये हम विवश थे । हमने सब सहा और सहने से ज्यादा झेला । देश में एक नया परिवेश बना--एक नई लहर दौड़ी और इसे गहरे तक अनुभव किया कलाकारों ने--कथाकारों ने । परिणामतः तत्प्रभावी साहित्य की सर्जना हुई । राकेश इसके एक खास अंग बने और इस सच्चाई को अपने कथा साहित्य के माध्यम से चित्रित करने में भी अग्रणी रहे । इस विभाजन ने अपने प्रभाव तो अनेक रूपों में छोड़े किन्तु सशक्त प्रभाव दो रूपों में ही सामने आये । मानव-सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ और व्यक्ति को अपेक्षित सहायता और सहयोग नहीं मिलने के कारण वे विकृत, विघटित व 'फ्रस्ट्रेटेड' होकर रह गये । यह प्रभाव राकेश की 'कम्बल', 'मलवे का मालिक' और 'क्लेम' जैसी कहानियों में देखा जा सकता है ।

---

1. पहचान : पाँचवे माले का फ्लैट, पृष्ठ 215

'क्लेम' कहानी में शरणार्थियों को दी जाने वाली सरकारी सहायता के स्वरूप और प्रभाव का मनोभावाभिव्यंजक अंकन किया गया है । राकेश क्योंकि इस स्थिति के भोक्ता और सूक्ष्म पर्यवक्षक रहे हैं । अतः उनकी कहानियों में इसका चित्रण जिस रूप और शैली में किया गया है वह बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है । जिन्होंने अपनी वास्तविक जायदाद से अधिक क्लेम माँगे उन्हें तो एक लम्बी चौड़ी रकम मंजूर हो गयी और जिन्होंने सत्य का आश्रय लिया वे घाटे में रहे। एक स्त्री का 18 हजार का 'क्लेम' मंजूर होता है क्योंकि वह विधवा है । इस पर भी वह संतुष्ट नहीं कि यदि वह अपनी जायदाद थोड़ी बहुत लिखाती सो उसे अधिक रुपया मिल सकता था। एक और व्यक्ति है जिसकी आँखों की रोशनी कम हो गयी है तथा जो जीता हुआ मुर्दे के समान शक्तिहीन है, वह केवल हजार रुपये चाहता है जिससे छोटी-मोटी दुकान ही लगा सके। लेकिन उसे कुछ नहीं मिलता । एक अन्य व्यक्ति अपनी जायदाद का कई गुना 'क्लेम' भरता है और उसे आठ हजार रुपया मंजूर हो जाता है। इस पर उस स्त्री को जो प्रतिक्रिया हुई वह देखिये- "मैं कहती रही कि जितना छोड़ आये हो उससे ज्यादा का क्लेम भरो। मगर ये ऐसे मूर्ख थे कि हठ पकड़े रहे कि जितना था उतने का ही क्लेम भरेंगे–पहले ही इतने दुख उठाये हैं, अब और बेईमानी क्यों करें ? आज ये मेरे सामने होते तो मैं पूछती कि बताओ बेईमानी करने वाले सुखी हैं या हम लोग सुखी हैं। लोगों ने जितना छोड़ा था उसका दुगुना-तिगुना वसूल कर लिया और मैं बैठी हूँ छह हजार लेकर।"[1] लेकिन साधुसिंह जैसे न जाने कितने लोग हैं जिन्होंने कुछ भी 'क्लेम' नहीं किया, किन्तु जो अपने परिवेश से उठ कर बेगानी जिन्दगी जी रहे हैं। परिवेश से उखड़ाव ही इस कथा की मूल संवेदना है। इसमें 'क्लेम' को आधार बनाकर न केवल तत्कालीन स्थिति को उभारा गया है, बल्कि यह भी संकेतित है कि विभाजन के कारण व्यक्ति टूटा है, परिवार विघटित हुए हैं और जीवन विडम्बना बन कर रह गया है। मानव-मूल्यों में परिवर्तन हुआ है। परिणामतः मानव-सम्बन्ध भी अप्रभावित नहीं रहे हैं।

'मलबे का मालिक' : यह एक ऐसे व्यक्ति की भावनाओं को अभिव्यक्त करती है जिसका घर परिवार हिन्दू मुस्लिम दंगों की की भेंट चढ़ चुका है । विभाजन के समय बहुत से लोग मजबूर होकर पाकिस्तान चले गये थे । विभाजन के साढ़े सात साल बाद मुसलमानों की एक टोली अमृतसर आती है और प्रत्येक स्थान का उत्सुकता से निरीक्षण करती है। बहुत से लोग उनसे बहुत से सवाल पूछ रहे थे। इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता लाहौर एक शहर ही नहीं है,

1. क्वार्टर : क्लेम : पृष्ठ 176–177

हजारों लोगों की सगा संबंधी है जिसके हाल जानने के लिए सभी अमृतसर के लोग उत्सुक हैं। आने वालों में बूढ़ा मुसलमान भी है जो पहले अमृतसर में अपने पुत्र और पुत्रवधू के साथ रहता था। उसका पुत्र और परिवार तो एक हिन्दू पहलवान द्वारा पहले ही मारा जाता है। वह एक नजर अपने मकान को देखना चाहता है तो पता चलता है कि वह मकान एक मलवे का ढ़ेर बन कर रह गया है। रक्खा, पहलवान ने इस मकान के लालच में ही उसके मकान के रहने वाले परिवार को मारा था, किन्तु किसी ने उसे जलाकर खाक कर दिया। बूढ़ा यह सब नहीं जानता। वह मकान के अवशेष को देखकर बहुत दुखी होता है और दरवाजे की टूटी चौखट से लगकर विलाप करने लगता है। तब से 'रक्खा' पहलवान उस मलवे को ही अपनी जायदाद समझता था। बूढ़ा 'गनी' 'रक्खे' पहलवान को बाहें फैलाकर आवाज देता है। अपराधी 'रक्खा' किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा रह जाता है। गनी उससे पूछता है–"तू बता रक्खे यह सब हुआ किस तरह ? तुम लोग उसके पास थे। सब में भाई-भाई की सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता तो तुममें से किसीं के घर नहीं छिप सकता था ? उसमें इतनी भी समझदारी नहीं थी"[1] तो 'रक्खा' 'केवल' ऐसी ही है कहकर रह जाता है। गनी की बातों से उसकी नसों में एक तनाव आ जाता है। कहानीकार ने उसकी नाजुक स्थिति का बहुत प्रभावशाली चित्रण किया है—"रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जाँघों के जोड़ पर उसे सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास से जैसे कोई चीज उसकी साँस को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुओं में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली फुलझड़ियाँ सी ऊपर से उतरती और तैरती हुई उसकी आँखों के सामने से निकल जातीं। उसे अपनी जबान और होठों के बीच एक फासला सा महसूस हो रहा था।[2] कहने की आवश्यकता नहीं कि 'मलवे का मालिक' विभाजन के परिणामस्वरूप विघटित परिवारों की ही कहानी नहीं है, इसमें बदलते परिप्रेक्ष्य में मूल्यों की टूटन भी व्यक्त हुई है। मूल्यों के ध्वंस और निर्माण के बीच की यह कहानी संकेत देती है कि कुछ इमारतें तो नई बन गई हैं, किन्तु पुराने मकानों के मलवे का ढेर अभी भी जहाँ-तहाँ पड़ा दिखाई देता है 'यह मलवा ही टूटते और टूटे मूल्यों की सारी कहानी सुना देता है। रक्खे पहलवान की तरह हमारा एक वर्ग आज भी इन टूटे मूल्यों के मलवे पर, उसे ही अपनी जागीर समझे हुए बैठा है जबकि यह मलबा न तो उसका है, न गनी का, वह तो इतिहास हो चुका है, अब तो उसे हटना ही चाहिये क्योंकि यही

---

1. पहचान : मलवे का मालिक, पृष्ठ 155
2. वही पृष्ठ 157

इतिहास और युगजीवन की प्रतिक्रिया है ।"[1] कुछ समीक्षकों को शिकायत रही है कि राकेश नी कहानियों में जीवन की पीड़ा तो है, दर्द का गहरा अहसास तो है, किन्तु उपलब्धि और विद्रोह नहीं है । मेरी विनम्र सम्म •है कि उन्हें यह कहानी फिर से पढ़नी चाहिये तभी वे अपना अपेक्षित आशय ग्रहण कर सकेंगे ।

'कंबल' : यह एक शरणार्थी कैंप में रहने वाले एक परिवार की कहानी है। विभाजन ने पारिवारिक संबंधों को किस सीमा तक प्रभावित किया है यह कहानी उसकी सही तसवीर उपस्थित करती है । परिवार में पति-पत्नी, लड़की तथा एक छोटा लड़का है । रात की ठंडक में कुछ लोग बनारसी पर कंबल डाल जाते हैं । नींद के अभिनय में उसने जाँघ और छतियों पर कंबल डालने वालों के स्पर्श की भी उपेक्षा करदी । उसने कल्पना की कि सर्दी में ठिठुरते- काँपते-खाँसते उसके पिता पर भी किसी ने कंबल डाला होगा । लेकिन पिता के ऊपर कंबल न डाले जाने की स्थिति में भी वह अपना कंबल देने को तैयार नहीं थी । इसलिए उसने सत्य को आँखों से देखने की अपेक्षा अँधियारी ओट में छिपे रहना उचित समझा । माँ बच्चे को ओढ़ाने की बात करते हुए उस पर से कंबल छीनकर ओढ़ लेती है तथा स्वयं और पुत्र को ढक लेती है । माँ पुत्र को ढककर मातृत्व निभाती है, किन्तु कहीं और से उसका मातृत्व छिल जाता हैं । वह पति की सर्दी की बात सोचती है, लेकिन उस पर कंबल डालने का त्याग नहीं कर पाती । पति रात में ठंड से सिकुड़कर मर जाता है और असहाय माँ बेटी लिपट कर रोती जाती हैं । अभाव जीवन मूल्यों को किस तरह प्रभावित करते हैं यह तथ्य इस कहानी में बखूबी चित्रित है । कहानीकार की संवेदना यथार्थ से मिलकर यहाँ हृदय-द्रावक हो उठी है ।

बाल मनोविज्ञान संबंधी कहानियाँ :

यों राकेश ने स्त्री और पुरुष के मनोविज्ञान का भी चित्रण किया है पर उसका विश्लेषण हम बिखरा हुआ पुरुष एवं बिखरी हुई स्त्री सम्बन्धों के अकेलेपन के अन्तर्गत कर चुके हैं । अतएव यहाँ केवल बाल मनोविज्ञान की चर्चा करेंगे ।

'पहचान' : यह एक सशक्त कहानी है जिसमें बताया गया है कि असफल दाम्पत्य संबंधों एवं मां के पुनर्विवाह का प्रभाव बच्चे के मस्तिष्क को किस सीमा तक प्रभावित करता है । शिवजीत की माँ अपने पति 'सचदेव' से तलाक लेकर अबरोल से विवाह कर लेती है । शिवजीत सचदेव का नाम अब शिवजीत अबराल हो गया है । वह इस नई परिस्थिति नए परिवेश में 'स्वयं को 'एडजस्ट' नहीं कर पाता है । जब क्लास में उसकी हाजिरी शिवजीत अबरोल कहकर ली जाती है तो उसे ऐसा लगा जैसे भरी क्लास में उसे उसकी नेकर उतारकर नंगा खड़ा कर दिया गया हो ।

---

1. डा० धनंजय वर्मा : नयी पीढ़ी की उपलब्धियाँ आलोचना पृष्ठ 104

उसका अस्तित्व शिवजीत सचदेव से जाना जाता है । अबरोल उसे बेगाना लगता है । तलाक समय पिता उसे साथ रखना चाहते हैं पर ममी उसे अबरोल अंकल के घर ले आती है। उसे ममी का अबरोल अंकल के साथ रहना अच्छा नहीं लबता। उनके बच्चों के बीच वह बहुत बेगाना अनुभव करता है । पापा के साथ जाने की बात सुनने पर वह आण्टी की बात सोचता है । क्लास में भी वह अत्यंत अस्त व्यस्त रहता है । अपने हर्निया की पेटी की बात वह सगसे छिपाना चाहता है । माता-पिता के संबंधों के कारण बच्चों पर पड़े प्रभाव की यह बहुत प्रभावशाली कहानी है।

इसी प्रकार माँ तथा पिता के व्यवसाय का बच्चे की मनःस्थिति पर जो प्रभाव पड़ता है, मरूस्थल उसे अभिव्यक्त करने वाली बेजोड़ कहानी है। सात वर्षीया इन्दु की माँ नसीमा जो कभी वैश्या थी बाद में अभिनेत्री बन जाती है । इन्दु का पिता धनपतराय जो कभी थियेटर के पर्दे खींचता था, बाद में फिल्म कारपोरेशन का मैनेजिग डाइरेक्टर बन जाता है। माँ और पिता दोनों ही पुत्री को व्यवसायिक दृष्टिकोण से देखते हैं । इस छोटी उम्र में भी वह इतनी समझदार है कि देखने वाले की बुरी दृष्टि को पहचान लेती है । उसे गोपाल इसी कारण अच्छा नहीं लगता । जब वह गोपाल को माँ से यह कहते हुए सुनती है–"अच्छा तू इन्दु को मेरे हवाले कर दे, उसका जो तू चाहे ले ले ।[1] तो वह कहती है–"में तो ऐसी बात पर इसके थप्पड़ मारती, मगर अम्मी चुपचाप सुनकर हँसती रही ।"[2] अपने अल्पानुभव के आधार पर ही वह कहती है–"अम्मी वैसे तो हमको पीटती है, पर उसके सामने ऐसे तारीफ करती थी गैसे सचमुच हमको बेचना ही हो ।"[3] उसे मम्मी का गोपाल के साथ भागने की योजना वनाना भी अच्छा नहीं लगता वह बड़ी होकर डाक्टरी पढ़ना चाहती है । उसकी माँ मुसलमान है और पिता हिन्दू । उसके मन में प्रश्न उठता है कि वह हिन्दू है अथवा मुसलमान ? धनपतराय कम्पनी में पैसा लगाने वाले सेठों को इन्दु की मार्केट वैल्यू समझता है । वह उन्हें इन्दु की कला दिखाना चाहता है । प्रदर्शन से पूर्व इन्दु बहुत उदास हो जाती है । वह सबको छोड़कर अपनी सहेली के घर भाग जाना चाहती है क्योंकि यह परिवेश उसे रास नहीं आता है । जब उसे रंडी की औलाद कहा जाता है तो उसकी आँखें भर आती हैं और हृदय भारी हो जाता है । ऐसी ही मनस्थिति में वह सेठों के सामने नाचते-नाचते बेहोश हो जाती है । उसका बुखार उतरने में नहीं आता, किन्तु उसके माता-पिता अपने में ही व्यस्त हैं । एक बालिका की यह दर्दीली तसवीर पाठक के हृदय-पटल पर बहुत गहराई से अंकित

---

1. क्वार्टर : मरूस्थल, पृष्ठ 156
2. वही : वही, पृष्ठ156
3. वही : वही, पृष्ठ 156

हो जाती है 'छोटी सी चीज' में नन्हें यशवीर की कथा है जो पहली बार कान्वेन्ट में पढ़ने के लिए गया है। वह न वहाँ के तौर-तरीकों से परिचित है न उसे छुरी काँटे से खाने का अभ्यास है। प्रयत्न करके भी वह वहाँ के परिवेश में अपने को खपा नहीं पाता। उसका यह बेगापन, यह विवशता अत्यंत स्वभाविक है तथा कहानीकार ने उसे किस शैली में उतारा है वह कहानी को मनोवैज्ञानिकता प्रदान करता है।

राकेश की कहानियों में कुछ कहानी ऐसी हैं जो पारिवारिक संदर्भों में लिखी गई हैं। यद्यपि विभाजन ने परिवारों को आहत किया और वे विघटित होते चले गये। इसी तरह विघटित परिवारों की कथा में उसका विवेचन किया जा चुका है, किन्तु कुछ कहानियाँ फिर भी ऐसी हैं जो शुद्ध पारिवारिक समस्याओं को लेकर लिखी गई हैं। ऐसी कहानियों में क्वार्टर, पारिवारिक कहानियों में संयुक्त परिवार समस्या पर प्रकाश डालने वाली कहानियों को लिया जा सकता है। क्वार्टर एक ऐसी ही कहानी है। संयुक्त परिवार की जिम्मेदारियाँ किस प्रकार एक व्यक्ति को अकेला और बेचारा बना देती हैं, यह कहानी इसका जीवन्त प्रमाण है। शंकर को देहली जैसे शहर में पाँच कमरे का क्वार्टर मिला हुआ है। उसके पिता उसके साथ ही रहते हैं और हर आने-जाने वाले से बात करने को उत्सुक रहते हैं। उनकी घर के सदस्यों के जीवन में दखलन्दाजी किसी को पसन्द नहीं। उनकी दिन भर की बड़बड़ तथा आगन्तुकों से बातचीत से शंकर को बहुत कोफ्त होती है। पिता के घर में रहने से उनके मेलझोल में फर्क पड़ता है, पर यह विवशता है जिसे चुपचाप सहने के सिवा चारा नहीं। उसके भतीजे गुन्नू पुन्नू भी नौकरी की खोज में उसके पास ही आकर रहते हैं। अपने भाई नाथ और मुकुंद की जिम्मेदारी उसी पर है। उसके यहाँ क्वार्टर बड़ा होने से बहनें भी छुट्टी बिताने के लिए वहीं आकर रहती हैं और किसी न किसी बात पर टीका-टिप्पणी करती रहती हैं। हर वक्त की चिकचिक से तंग आकर उसकी पत्नी भी अपने घर चली जाती है। कि उसके शब्दों में "कितने कितने लोग आकर पड़े रहते हैं, उससे मुसाफिरखाने से कुछ कम भी नहीं लगता मुझे।" परिवार के बहुत लोगों के साथ एक क्वार्टर में रहते हुए जैसे शंकर की अपनी कोई जिन्दगी ही नहीं रह गयी है।

'ग्लास टैंक' एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसका प्रत्येक सदस्य जीवन के प्रति अपनी मान्यताताएँ रखता है। वह दूसरे के साथ सहमत न होते हुए भी उसकी भावना की कद्र करता चलता है। घर की स्त्री का सुभाष नामक युवक से उसके बचपन से ही लगाव है, बल्कि कहना चाहिए, लगाव नहीं, सहानुभूति है। उसके बच्चे उसकी भावुकता को महत्व नहीं देते। पति का दृष्टिकोण भी उससे अलग है। 'सुभाष' और 'नीरू' अपने ही ढंग के पात्र हैं उनके भीतर कोई ऐसी

चीज़ है जो उन्हें खाये जा रही है । 'नीरू' स्वभावतः गंभीर है और अपनी मम्मी की बातों का कुछ-कुछ अर्थ समझती है । प्रारम्भ से अंत तक कहानी में एक तनाव, एक दुःख की अनाम छाया सी दिखाई देती है ।

प्रयोग की भूमिका पर लिखी गई कहानियाँ

राकेश बीच की पीढ़ी के कहानीकारों में एक ऐसे कहानीकार हैं जो नये और पुराने दोनों के लिये नये और पुराने हैं । राकेश ने निश्चय ही ऐसी कहानियाँ लिखी हैं जो सदैव याद की जायेंगी । उनकी कहानियाँ उन्हें एक परिष्कृत और गहरी अन्तर्दृष्टि का रचनाकार सिद्ध करती हैं । इधर अपने लेखन के उत्तरांश में उन्होंने कुछ प्रयोग भी किये हैं । यद्यपि इन कहानियों का कथ्य परिवेश-प्रतिबद्ध है । ये रचनाकार की अनुभूतिगत ईमानदारी की प्रतीक हैं, किन्तु फिर भी 'फौलाद का आकाश' की कहानियाँ प्रयोगधर्मिता का आभास देती है । 'ग्लास टैंक,, 'सोया हुआ शहर' और 'फौलाद का आकाश' ऐसी ही कहानियाँ है । कुछ समीक्षकों ने इन कहानियों को उद्देश्यहीन माना है । राकेश जिस यथार्थ के उद्घाटन और नये सामाजिक संदर्भों के अन्वेषण के लिये जितने प्रख्यात हैं उस लिहाज से इन कहानियों पर सहसा विश्वास नहीं होता है । इनमें 'मैनरिज्म' अधिक लगता है और 'सिम्बोलिज्म, अर्थाभिव्यक्ति, सांकेतिकता तथा अमूर्त प्रतीक विधान के बावजूद ये कहानियाँ कोई प्रभाव डालने में असमर्थ रहती हैं ।'[1] पहले 'ग्लास 'टैंक' कहानी को लीजिये । इसमें बड़ी सूक्ष्मता के साथ एक पारिवारिक ट्रेजेडी को अभिव्यक्ति मिली है । इस कहानी में निरंतर कृत्रिम होती जा रही जिन्दगी और उसमें समाती जाती ऊब व उदासी को निरूपित किया गया है । 'मछली' व 'ग्लास टैंक' प्रतीकार्थ रखते हैं । इनका प्रतीकार्थ पूरी तरह हृदय-ग्राह्य प्रतीत नहीं होता है । 'मछली' का प्रतीक तो फिर भी संवेद्य प्रतीत होता है, किन्तु 'ग्लास टैंक' का प्रतीक आरोपित लगता है । अश्कजी ने ठीक ही लिखा है कि 'ग्लास टैंक' का प्रतीक आरोपित लगता है । यदि 'ग्लास टैंक के बारे में कही गयी सभी बातें कहानी से काट दी जायें यानी कहानी के पहले चार पृष्ठ चौथे पृष्ठ की केवल अंतिम चार पंक्तियों को छोड़कर काट दिये जायें और कहानी दूसरे परिच्छेद से शुरु की जाय तो प्रभाव में कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा ।'[2] मछलियाँ आत्मकेन्द्रित और अपने में ही डूबी जिन्दगी की ऊब और नीरसता को व्यक्त करती हैं । कहानी की नीरू का यह सोचना भी इसी से सम्बद्ध है कि बिल्लोरी पानी में तैरती सुनहरी मछलियाँ अच्छी लगती थी, मगर हर बार देख कर मन में उदासी भर जाती थी । सोचती, कैसे रह पाती हैं

1. डॉ० सुरेश सिन्हा : नयी कहानी की मूल संवेदना, पृ० 103
2. अश्क : हिन्दी कहानी एक अंतरंग परिचय, पृष्ठ 253

ये ? खुले पानी के लिये कभी इनका जी नहीं तरसता ? कभी इन्हें महसूस नहीं होता कि ये सब एक-एक और अकेली हैं ? एक दूसरे से कुछ कहना चाहती हैं ? कभी शीशे से इसलिये टकराती हैं कि शीशा टूट जाये ? शीशे के और आपस के बंधन से ये मुक्त हो जाय ?'[1]

'नीरू' और मम्मी के अतिरिक्त परिवार में डैडी और 'बीरे' का ही महत्व अधिक है, किन्तु इस परिवार पर छायी उदासी की परतों का निरंतर घनीभूत होते जाना एक तीसरे व्यक्ति सुभाष के कारण है। नीरू और मम्मी दोनों उनकी ओर झुकी हुई हैं। 'मम्मी' के झुकने में सहानुभूति और करुणा का गहरा दर्द भरा भाव है, तो नीरू के झुकने में दर्द भरे प्यार का। नीरू का मछलियों की 'इमोशनल लाइफ के बारे में जिज्ञासा होना भी उसकी भावात्मक मनःस्थिति को ही रेखाँकित करता है। 'ग्लास टैंक' परिवेश की सीमितता और उसकी हदों को व्यक्त करता है। 'ग्लास टैंक' में मछलियों का इधर से उधर घूमना और अपनी हदबंदी पर शीशे से उनकी टकराहट में उनकी मुक्ति का प्रयास झलकता है वैसे ही नीरू व मम्मी भी अपनी सीमाओं में रहकर भी उनसे ही टकराती रहती हैं। बाहर आना वे भी चाहती हैं, किन्तु वे अपनी विवशता और उदासी पर दुखी तो हो सकती हैं, उसे काटकर मन-मुताबिक जी नहीं सकती हैं। यही प्रतीकार्थ कहानी देती है, किन्तु यह सर्वसंवेद्य नहीं बन पाया है। यहाँ विशेषीकरण का आग्रह है। यदि यह न होता तो कहानी अपनी प्रयोगधर्मी भूमिका पर और सफल होती। हाँ प्रारभिक पृष्ठों में लगता है कहानीकार पाठक को भरमा रहा है और कहानी वहीं से शुरू होती है या होना चाहिये थी जहाँ का संकेत अश्क जी ने किया है। 'ममा' की करुणा पूर्ण प्रेमिल दृष्टि का आभास इन पंक्तियों में है : "नाता रिस्ता नहीं है, फिर भी मैं सोचती थी कि....[2] वे सुभाष की चिट्ठी के लिये व्यग्र रहती थी—भीतर से छिली सी रहती थी। उसके आगमन पर उनका बराबर देखते जाता नीरू की दृष्टि में ऐसा है : "मैं देख रही थी कि ममा एक टक उसे ताक रही है, जैसे आँखों से ही उसके माथे के जख्म को सहला देना चाहती हों।[3]

नीरू के मन में उसके (सुभाष) लिए जो दर्द मिश्रित प्रेमिल भाव है उसका आभास तो कई वाक्यों में मिलता है : "बीच-बीच में उसकी आँखें मुझसे मिल जाती मुझे अपना आप भी अपने से दूर वियावान में खोया सा लगता। यह भी लगता कि मैं आँखों से कह रही हूँ कि जिसे तुम सहला रहे हो, वह 'ब्राउन कैट' नहीं है।'ब्राउन

---

1. क्वार्टर : ग्लास टैंक, पृष्ठ 82
2. क्वार्टर : ग्लास टैंक, पृष्ठ 86
3. वही : वही, पृष्ठ 86

कैंट' में हूँ। मैं यहाँ से दूर अँधेरे में खड़ी हूँ। चाह रही हूँ कि कोई आकर मुझे देखले और गोद में उठाले।"[1] इसी प्रकार सुभाष के जाने की बात पर वह यदि यह अनुभव करती है कि "जैसे कपड़े उतारकर किसी ने मुझे ठंडे पानी में धकेल दिया हो[2] तो चले जाने पर यह सोचती है : "मैं कमरे में पहुंची तो लगा जैसे अब तक घर के अंदर थी अब घर से बाहर चली आई हूँ।[3] सचमुच कहानी में विवेचित परिवार की ये दो मछलियाँ–नीरू और उसकी ममी 'ग्लास टैंक' की मछलियाँ ही हैं जो निरंतर बाहर आने को छटपटाती हैं, किन्तु उस छटपटाहट को सार्थक बनाने के लिए कोई कदम नहीं उठाती हैं। कहानी उनकी नियति भी उन मछलियों की सी ही है जो अपनी 'इमोशनल लाइफ- की कीमत पर सिर्फ शीशे से टकराती रहती हैं। कहानी से संकेतिक कथ्य वर्तमान जीवन की ऊब, उदासी और पीड़ा व अकेलेपन को तो व्यक्त करता ही है, लेखकीय दृष्टि की गहनता को भी संकेतित करता है। कहानी में सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता से अधिक काम लिया गया है। यह बात अलग है कि इसकी शैली और प्रतीकात्मकता में साग्रह प्रयोग की प्रवृत्ति का आभास भी मिलता है। हाँ 'ग्लास टैंक' की एक विशिष्टता यह भी उभरती है कि तीसरा व्यक्ति (सुभाष) अपनी उम्र के कारण ममी और नीरू दोनों के आकर्षण और लगाव का कारण है।....क्या इसका अभिप्राय यह निकाला जाय कि पुत्रों के भीतर इस तरह की स्थितियाँ किसी व्यापक सामाजिक प्रश्न से जुड़ी हुई हैं। पुत्र विद्रोह कर सकता है पर पुत्रियाँ आर्थिक और सामाजिक कारणों से सभी जनों के साथ इस तरह बंधी हुई हैं कि वे उन्हें अपना प्रतिस्पर्धी भी मानती है और आदर्श भी।[4] कहानी की शैली में एक खिचाव है। वह 'टूद पाइण्ट' है। एक-एक वाक्य को रुक-रुक कर पढ़ने से ही कहानी की मूल संवेदना को पाया जा सकता है।

'खोया हुआ शहर' कहानी भी राकेश की प्रयोगधर्मिता को स्पष्ट करती है। इसमें महानगरों की रात की जिन्दगी का वर्णन किया गया है। सारा शहर तो सोया हुआ है, किन्तु एक दूसरी जिन्दगी रात को भी चलती दिखाई गई है। इस कहानी की प्रयोगशीलता उसके कथ्य में नहीं शिल्प में है। बीच-बीच में आये अनेक नये प्रतीकार्थ रखने वाले शब्दों से स्थिति और कहानीगत परिवेश को सांकेतित शैली में उजागर किया है। कहानी में परिवेश का अंकन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है। उसका पहला पृष्ठ ही परिवेश का काव्यात्मक अभिव्यंजन है। दुम हिलाता कुत्ता, सिगरेट की डिब्बी का फटा टुकड़ा, मकान की छतों पर लगे एरियल का काँप जाना, कबूतर

1. वही : वही, पृष्ठ 95
2. क्वार्टर : ग्लास टैंक, पृष्ठ 97
3. वही : वही, पृष्ठ 98
4. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : माध्यम वर्ष 4 अंक 9, पृष्ठ 62

का पंख फड़फड़ाना, काँच लगे बरामदे में कीड़े का तड़फड़ाना, औंधी रखी चारपाइयों के पाये से बना चौखटा, फ्लश के हत्थे का जोर जोर से हिलाया जाना, पेड़ के तने के पास से गिलहरी का सिर निकलना और गत्ते की डिबियाँ व चमकते हुए गोल सुनहरे पत्ते आदि प्रयोग प्रतीकार्थ रखते हैं। ये सभी महानगरीय जीवन की विचित्रताओं और बिडम्बनाओं को सार्थक अभिव्यक्ति देते हैं। राकेश ने बड़ी सफाई से सांकेतिक शैली में कहानी के कथ्य को अभिव्यक्ति दी है। कहानी में आये ये वाक्य परिवेश का स्पष्ट परिचय देने के लिये काफी हैं : "कर क्या रहा था। वही कर रहा था जो मसें फूटते ही आज के लड़कों को करना आ जाता है।"[1]....लगता है सब्जी मंडी वालों की कोई लड़की थी।....वे कुत्ते के बीज अब इस इलाके में भी मार मारने लगे हैं....सबेरे सब्जीमंडी से सीतलदास को बुलाना। वे हरामी हमारे इलाके में मार करेंगे तो हम उनका बोरिया सब्जीमंडी से उठवा देंगे।"[2]

"फौलाद का आकाश" कहानी का प्रत्यक्ष संकेत तो यह है कि पति-पत्नी के सम्बन्धों के बीच एक तीसरा व्यक्ति है जो व्यवधान बन कर घुल आया है। मीरा का यह अनुभव करना कि रवि प्यार करते वक्त भी चुम्बनों की गिनती करता रहता है, न केवल उसकी जीवन विषयक ऊब और उदासी को व्यक्त करता है, अपितु कहानी की शैल्पिक सज्जा को प्रयोगशील कहानियों की पंक्ति में भी खड़ा कर देता है। कहानी में चित्रित परिवेश और रवि से सम्बन्धित सभी स्थितियों आरोपित सी प्रतीत होती हैं। यों ये कहानियाँ बहुत अच्छी हैं, किन्तु इन्हें राकेश ने प्रयोग की धुन में अतिरेकी संदर्भों से भी जोड़ दिया है। 'सेफ्टी पिन' कहानी का परिवेश भी इससे बहुत अलग नहीं है। उसमें गहराई कम है, आरोपित स्थितियाँ ही अधिक हैं। 'जख्म' कहानी के नायक की घायल मनःस्थिति परिवेश से प्रतिबद्ध तो है, किन्तु राकेश की 'प्रयोगवृत्ति' के कारण वह उसे बार-बार दूसरों को दिखाता-फिरता है। यही आरोपित स्थिति है। इसमें आये आवश्यकता से अधिक कथनों का प्रभाव कहानी के प्रभाव को कुछ अंशों में कम ही करता है। कथानायक की मुखरा वृत्ति और शब्दों की फिजूलखर्ची ने भी कहानी के रचाव को ठेस पहुँचाई है। स्पष्ट है कि राकेश की इन कहानियों में कथ्यगत ईमानदारी तो है, किन्तु शैल्पिक प्रयोगशीलता भी है। यही कारण है कि कहानियाँ जहाँ कथ्य के धरातल पर मन को बाँधती हैं वहीं शिल्प के धरातल पर मन में कुढ़न पैदा करती हैं। ये कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें सूक्ष्म सांकेतिकता, व्यंजनात्मक प्रतिभा, और संश्लिष्ट चरित्रों को उभारने के लिये प्रतीकों की अवतारणा ने इन कहानियों में प्रयोगशीलता के आयाम खोल दिये हैं।

---

1. वारिस : सोया हुआ शहर, पृष्ठ 70
2. वही : वही, पृष्ठ 73

7

'रचना-शिल्प'

प्रत्येक रचनाकार अपने ढंग से अपनी अनुभूति को सजाता-सँवारता है। कला की सृष्टि और प्रेरणा दोनों में अनुभूति और लक्ष्य का स्थान ही सर्वोपरि है। अनुभूति को अभिव्यक्त करना ही कलाकार का लक्ष्य होता है। इसके लिये वह कुछ ऐसे माध्यमों, विधानों और तंत्रों के अन्वेषण में लगा रहता है जो एक और नये भी हों, मौलिक भी हों और दूसरी और उनमें इतनी क्षमता हो कि वे कहानी कला के क्षेत्र में नये प्रतिमान स्थापित कर सकें। ध्यान देने की बात यह है कि कहानीकार के रचना-शिल्प में मात्र उसका शैली पक्ष ही अन्तर्भुक्त नहीं है, वरन् उसकी अनुभूति भी उतना ही महत्व रखती है। मान लीजिये किसी रचनाकार को अकाल पीड़ित समाज की अनुभूति को चित्रात्मक अभिव्यक्ति देनी है तो उसके लिये वह जो जो कदम उठायेगा वे ये हो सकते हैं: पहले वह अपनी संवेदना के अभि-व्यंजन के लिये एक पीठिका तैयार करेगा। इस तैयारी में कथावस्तु की निर्मिति अपेक्षित होती है। तदुपरान्त दूसरे सोपान पर वह अपनी मनोगत भावनाओं को आधार देने के लिये कुछ चरित्रों की अवतारणा करता है। तीसरे चरित्रों को यथास्थान बिठाने और उनके संयोजन में वह जो भी व्यंजित करेगा वह उसकी शैली होगी। अपने मनोभावों को गाढ़ा और सान्द्र बनाने के लिए वह एक परिवेश चुनेगा। उसका यह सारा चुनाव और बंधान ही उसके रचना-शिल्प का निर्माण करता है। इस प्रकार रचना-शिल्प में कहानीकार द्वारा गृहीत कथानक, चरित्र, परिवेश और शैली सभी का समाहार होता है। 'कहानी की शिल्पविधि में लक्ष्य और अनुभूति सबसे मुख्य तत्व हैं। इन्हीं के प्रकाश से कहानी के विधान में कथा-वस्तु की योजना, चरित्र की अवतारणा और शैली का निर्माण होता है।'[1]

कथानक : राकेश की कहानियों के संदर्भ से यदि उनके रचना-शिल्प का अध्ययन करें तो उनका कहानी-साहित्य अनेक विशेषताओं के साथ सामने आता है। उसमें नयी कहानी की वह समस्त पद्धति और रचना-प्रक्रिया शामिल है जो स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित हुई है। कहानियों के रचना-शिल्प के विवेचन में

---

1. डा. लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृष्ठ 4

पहली बात जो हमारा ध्यान आकर्षित करती है वह है कथानक का ह्रास। कथानक का ह्रास कई रूपों में हुआ है। फलतः कभी तो कहानीकार मात्र व्यंजना के माध्यम से पूरी कहानी कहता दिखाई देता है तो कभी कतिपय आवश्यक कथा-सूत्रों को बिना संयोजित किये ही। आज कहानीकार अपनी कहानी को प्रारंभ ही वहाँ से करता है जहाँ पहले वह समाप्त होती थी। कथानक के सूत्र कई बार चरमसीमा पर पहुँचकर स्पष्ट होते हैं और कभी विचारोत्तेजक प्रलाप या चिन्तनशील सूत्रों को लेकर भी कथानक के ह्रास की प्रवृत्ति लक्षित होती है।[1] कथानक के प्रति यह परिवर्तित दृष्टि राकेश की कहानियों में भी मिलती है। इस दृष्टि से यदि राकेश की कहानियों की समीक्षा करें तो निम्नांकित तथ्य सामने आते हैं :

1. राकेश की कतिपय कहानियाँ ऐसी हैं जहाँ मात्र व्यंजना या सांकेतिकता का आश्रय लेकर पूरी कहानी कह दी गई है। ऐसी कहानियों में कथानक नहीं है जो है सो व्यंजना का कौशल है। 'जख्म' और 'सोया हुआ शहर' ऐसी ही कहानियाँ हैं।
2. कथानक के नाम पर आवश्यक कथा-सूत्रों का चयन करके बिना संयोजन के ही अपने पात्रों के मन का विश्लेषण करने की प्रवृत्ति भी राकेश में मिलती है। ऐसी कहानियों में आये विविध कथा-सूत्र किसी ठोस कथानक के अभाव में भी रचना को प्रभावी बना देते हैं। राकेश की 'कई एक अकेले', 'जीनियस' और 'बस स्टैण्ड की रात' और 'ग्लास टैंक' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।
3. राकेश की कुछेक कहानियों के कथानक ऐसे हैं कि कहानी वहाँ से प्रारंभ होती है जहाँ पहले समाप्त होती थी। यह प्रवृत्ति आज की कहानियों में बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित की जा रही है। आज की कहानी जहाँ लाकर छोड़ती है वहाँ कुछ अस्पष्ट संकेत और प्रभावी व्यंजनायें रहती हैं जिनके सहारे पाठक की कल्पना को अपना निष्कर्ष खुद पाना होता है। कथानक के बिना लिखी गई ऐसी कहानियों में जटिलता का आ जाना स्वाभाविक है। राकेश ने भी ऐसी कहानियाँ लिखी हैं। उदाहरणार्थ 'सेफ्टी पिन' और 'जख्म' आदि।
4. राकेश की कुछ कहानियों में कथानक के सूत्र चरम-सीमा पर जाकर स्पष्ट होते हैं। ऐसी कहानियों में प्रारंभ में कोई कथानक स्पष्ट नहीं

---

1. डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 168

होता है और वह विशृंखलित ढंग से चलने लगती है किन्तु अन्त तक पहुँचने-पहुँचते सारे रहस्य उद्घाटित होने लगते हैं। ऐसी कहानियों की संख्या न केवल राकेश के यहाँ वरन् सभी नये कहानीकारों के यहां उपलब्ध हैं। राकेश की 'मन्दी', 'पांचवे माले का फ्लैट', 'सौदा', 'सीमाएँ', 'खाली', 'जानवर और जानवर', हक हलाल और ऐसी ही कुछ अन्य कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

5. राकेश जिस पीढ़ी के कथाकार हैं उसमें वे सर्वाधिक संतुलित, परिष्कृत और आधुनिक बोध के समीप हैं। उनकी लगभग पचास प्रतिशत कहानियाँ ऐसी हैं वहाँ वे कथातत्व की दृष्टि से प्रेमचन्द की परम्परा में खड़े दिखाई देते हैं। ऐसी अन्वितियुक्त कथानक वाली कहानियों में 'मलवे का मालिक', परमात्मा का कुत्ता', 'उसकी रोटी', 'गुनाह वेलज्जत', 'सुहागिनें', 'एक और जिन्दगी' 'अपरिचित' और 'आर्द्रा' व 'सौदा' आदि कितनी ही कहानियाँ हैं।

राकेश की कहानियों के कथानक सामान्यतः माध्यमवर्ग से सम्बन्धित हैं। अपवादस्वरूप कुछ कहानियाँ ऐसी अवश्य हैं जो उच्चवर्ग से सम्बन्धित हैं। यों कहानियों में परिवार, महानगरबोध, निम्न मध्य वर्ग, मजदूर वर्ग, शिक्षित वर्ग और ग्राम्य वर्ग आदि सभी से सम्बन्धित कथानकों को स्थान प्राप्त है। वस्तुतः कथानक प्रधान कहानियों में कथातत्व स्पष्ट, सपाट, सहज और स्वाभाविक गति से विकसित होता गया है। यह बात अलग है कि ऐसी कहानियाँ संख्या में कम और अपने शिल्प के कारण कथा की अपेक्षा चरित्र पर जोर देती दिखाई देती हैं। कारण यही है कि आज कहानी कथानक को पारंपरिक अर्थ ग्रहण नहीं करती है। अतः राकेश की कहानियों में कथानक सम्पूर्ण कहानी के अन्तर में व्याप्त वह सूत्र है जो कहानी के विविध प्रसंगों से सम्बन्ध जोड़ता है। ज्योंही कहानी समाप्त होती है त्योंही वह सम्बन्ध सूत्र पाठक के मस्तिष्क में कहानी का एक बाहरी खाका उपस्थित कर देता है। बस यही सब कुछ है। चाहे इसे कथानक कह लीजिये और चाहे कथा-सूत्र। अतः इस दृष्टि से देखें तो राकेश की कहानियों में कथानकगत सूक्ष्मता व तद्गत सार्थकता ही उपलब्ध होती है। एक वाक्य में कहानियों में आये संकेतगर्मी कथानक या सूक्ष्म संकेत-सूत्रों में वैचारिकता और अनुभूति की गहनता इस कदर अनुस्यूत रहती है कि उससे कथा-तत्व का अलग छाँट लेना संभव नहीं दीखता है। कथानक चाहे कतिपय सूत्रों के साथ बढ़ा हो, चाहे वह व्यंजित हो, आज पाठक को उसकी अपेक्षा भी नहीं रही है। साथ ही यह भी निर्विवाद है कि प्रेमचन्दीय कथानकों के अभाव में भी ये कहानियाँ पूरी तरह रोचक, पाठक को आद्यंत बाँधे रखने और कौतूहल जगाने में समर्थ एवं सफल हैं। प्रवाहशीलता, गति,

प्रभावोत्पादकता, आकर्षण, वैचारिकता और मौलिकता राकेश की कहानियों की कथानकगत विशेषताएँ हैं। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ से राकेश ने कथानक न उठाये हों। वे तो मानते भी यही थे कि हर पल, हर रोज हमारे आस-पास कथानक या सन्दर्भ आते रहते हैं जो हमें कहानी-लेखन की प्रेरणा देते हैं। यही कारण है कि समूचा मध्यवर्ग, उसकी स्थिति, मनः स्थिति, क्रियाकलाप और उससे संपृक्त परिवेश राकेश की कहानियों में समाविष्ट है।

चरित्र : चरित्र के सम्बन्ध से निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आज कहानी काल्पनिक पात्रों को छोड़ चुकी है। वे पात्र आज कहानियों में नहीं दिखाई देते हैं जो लेखक के हाथ की कठपुतली होते थे और कहानीकार जिन्हें मात्र अपने विचारों के वाहक बनाकर प्रस्तुत करते थे। ठीक भी है आज ऐसे पात्रों की अयथार्थता मूल्यहीन प्रमाणित हो चुकी है। समकालीन कहानीकार अपने पात्रों का चयन अपने आस-पास के परिवेश से करते हैं। वस्तुतः प्रेमचन्दोत्तर युग में न केवल कथानक के क्षेत्र में ही परिवर्तन हुआ, अपितु चरित्राँकन के क्षेत्र में भी नई पद्धतियों और प्रणालियों का विकास हुआ। व्यक्ति के अन्तर्मन में प्रवेश करके रचनाकारों ने उसके भीतर को प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया। इस कार्य में मनोविज्ञान और मनोविश्लेसण के सिद्धान्तों ने तो उसकी सहायता की ही, बदलते परिप्रेक्ष्य और नव विकसित जीवन-मूल्यों ने भी उसे प्रभावित किया। परिणामतः यथार्थ चरित्र सामने आये, उनकी चारित्रिक संगतियों और विसंगतियों को ईमानदारी के साथ अभिव्यक्ति मिली और तो और जीवन-संग्राम में मिली जय-पराजय, आशा-निराशा, ऊब, उदासी और नगरीकरण व औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप बढ़ते हुए अकेलेपन, आत्मनिर्वासन, उलझन ऊब त्रासद स्थितियों तक का अभिव्यंजन प्रभावी शैली में किया जाने लगा। आज जबकि व्यक्ति सामाजिक स्तर पर संकट से घिरा है, पारिवारिक स्तर पर टूटा हुआ है और निजी स्तर पर अपने से ही ऊबा हुआ व आत्म निर्वासित अनुभव करता है तो इस प्रभाव से युक्त होकर रचनाकार कैसे और किस सीमा तक अलग रह सकता है? नहीं रह सकता। इसलिये वह एक 'कांशस' आर्टिस्ट की तरह परिवेश में नित्य प्रति बदलते-बनते-बिगड़ते मानव-सम्बन्धों, मानव-मूल्यों और मानव-स्वभाव को गहराई से परखता हुआ अपने साहित्य में स्थान देता है। इस दिशा में कविता उतना बड़ा काम नहीं कर रही है जितना काम कथा-साहित्य कर रहा है।

'मोहन राकेश' परिवेश से कटकर न तो कभी जिये और न कुछ लिख ही सके। उनकी कथा-कृतियाँ निश्चय ही उनके परिवेश को प्रस्तुत करने वाले अनमोल सन्दर्भ ग्रन्थ हैं। नये कहानीकारों में मानव को पूरी तरह समझने और उसको

समग्रता में व्यक्त करने की क्षमता जिन कहानीकारों में रही है उनमें राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर को विशेष स्थान प्राप्त है। राकेश ने जीवन को जिया था, उसकी समस्त कटु-तिक्त स्थितियों को भोगा था बल्कि कहूँ कि झेला था। अतः उनके पात्र भी उस सबसे अप्रभावित नहीं हैं। नाटक, कहानी और उपन्यास सभी विधाओं में उनकी चरित्र सृष्टि आज के परिवेश में टूटते-खटते, लुटते-पिटते और थके-हारे पात्रों के व्यक्तित्व से अनुप्राणित है। कहानी में सफल चरित्र-चित्रण का अर्थ ही यह है कि उन्हें उनकी अच्छाइयों-बुराइयों के साथ एक सजीवन और विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत किया जाय। राकेश की दृष्टि में कहानी की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि कहानीकार चरित्रों और उनकी परिस्थितियों के विधान में कहाँ तक निःसंग, तटस्थ और अयुक्त रह पाता है।[1] उनके इस कथन के परिप्रेक्ष्य में न केवल उनकी कहानियों की समीक्षा-परीक्षा की जा सकती है, वरन् समूचे नये कहानी-साहित्य को परखा जा सकता है।

राकेश की कहानियों में आये चरित्र जीवन की हर स्थिति के भोक्ता-सह-भोक्ता, अच्छे बुरे के मिले-जुले रूप और परिवेश की जटिलता से प्रेरित, प्रभावित और निर्मित हुए हैं। वे जीवन से कटे हुए नहीं है। कभी-कभी ऐसा अवश्य लगता है कि पात्र की कोई खास मन.स्थिति सहज नहीं है—आरोपित है। पात्र-विशेष इस स्थिति का भोक्ता नहीं, द्रष्टा भी नहीं, है तो केवल कहानीकार की आरोपित मनः स्थिति का प्रतिरूप भर है, किन्तु ऐसा आपवादिक रूप से ही है। उदाहरण के लिये 'ग्लास टैंक' की 'ममा' का व्यक्तित्व उसके भीतर से बनाकर खड़ा किया गया नहीं लगता है। वह आरोपित प्रतीत होता है। उसकी 'सुभाष'—तीसरे व्यक्ति के प्रति सहानुभूति, दयार्द्रभावना और आसक्ति का कोई खास कारण न तो कहानी में संकेतित है और न उसे पूरे पढ़ जाने के बाद ही स्पष्ट होता है। यों उनके पात्र जीवन की मिट्टी से बने हैं, उन्हें परिस्थितियों ने बनाया-बिगाड़ा है। अतः वे अपने जिस रूप में हैं उसमें पूरे हैं—अपनी समस्त अच्छाइयों-बुराइयों और अन्तर्विरोधी स्थितियों के साथ। यदि कहानियों में चित्रित पात्रों का विभाजन करें तो स्पष्ट होता है कि कुछ पात्र तो अन्तर्मुखी वृत्ति के हैं तथा कुछ असामाजिक व अहंग्रस्त। कुछ स्वस्थ और समर्पित चरित्र हैं तो कुछ संघर्षजीवी और प्रगतिशील। कुछ में जिजीविषा है तो कुछ में कायरता और कुछ में स्वाभिमान और विद्रोह। कुछ पात्र वेफिक्र और स्वप्नजीवी हैं तो कुछ विवश, असहाय, टूटे हुए अकेले और भटके हुए। ऐसे पात्र अजनबीयत के पुंज हैं। एकाध पात्र ऐसे भी हैं जो पशु-वृत्तियों के

1, मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, पृष्ठ 33

शिकार होने के कारण भ्रष्ट और गुण्डा चरित्रों की श्रेणी में भी आते हैं। भ्रष्ट चरित्रों के दो रूप हैं—'सैक्स' के दीवाने और हत्या-बलात्कार व आक्रामक वृत्तियों से युक्त। ये सभी प्रकार के पात्र मध्यवर्गीय चेतना के वाहक हैं। इनका व्यक्तित्व समस्याकुल, प्रश्निल, संघर्षों के मध्य अन्वेषी और जीवन को पूरेपन में देखने वाला है। समस्याओं से जूझते, प्रश्नों से टकराते, संघर्षों के उतार-चढ़ाव से हारे-थके व लुटे-पिटे और यहाँ तक कि टूटते व खटते हुए ये पात्र राकेश की कहानियों की 'जान' हैं। इनके माध्यम से भारतीय परिवेश में रोजाना बनते-बिगड़ते इतिहास का मानचित्र भी प्रस्तुत हुआ है और उस परिवेश की तहों में कुलबुलाता भूगोल भी। इनके जीवन का व्याकरण किन्हीं निश्चित नियमों के आधार पर तैयार नहीं हुआ है, वह तो रोजमर्रा की जिन्दगी में घटित सन्दर्भों के सहारे बना है। यही कारण है कि परिस्थिति के बदलते ही पात्रों की मन:स्थिति तो बदली ही है, उनका आचरण व व्यवहार भी तदनुकूल होता गया है। ये पात्र जिन्दगी की सर्द-गर्म आहों में जीवन पाते हैं, संघर्षों से टूटते हैं तो अपने भीतर के 'स्व' के सहारे एक नया संकल्प लेकर आगे आते हैं। यह बात अलग है कि उनका संकल्प शाम होते न होते विकल्प में परिणत हो जाता हो। इसी से संभवत: डा० लक्ष्मी-सागर वार्ष्णेय ने कहा है कि "राकेश की समस्याकुल कहानियों के पात्र अपने प्रारंभिक रूप में विराट मानवीय चेतना का आभास देते हैं, किन्तु अन्त में वे अन्त-र्मुखी हो जाते हैं। वे अकेलेपन और अजनवीयत का बोझ ढ़ोते रहते हैं। उनकी आस्था और सामाजिक दृष्टि भी बहुत पुष्ट नहीं है। वे भटकते अधिक है। उनके पात्र एक-दूसरे के प्रति समर्पित नहीं हैं। वे असामाजिक हैं, वे अहं की परिधि से बाहर नहीं निकल पाते हैं। वे प्राय: अजनवी और बेचैन रहते हैं।"[1]

अन्तर्मुखी वृत्ति वाले चरित्रों में भावुक और सम्वेदनशील चरित्रों को लिया जा सकता है। ये वे चरित्र हैं जिनके मन में आद्रता बाकी है। भले ही ये किसी विशेष परिस्थिति में कुछ अनपेक्षित कर बैठे, किन्तु बाद में उस किये हुए की पुन-प्राप्ति के लिए व्यग्र और व्यथाकुल दिखाई देते हैं। 'एक और जिन्दगी' का प्रकाश इसी कोटि का चरित्र है। प्रकाश वीना को या उसके बच्चे को देखने-पाने और अधिकाधिक अपने पास रखने के लिए पूरी भावुकता से काम लेता है। उसकी सम्वेदना मरी नहीं है। वह भीतर ही भीतर बच्चे के प्रति द्रवित है : "उसका मन हुआ कि फिर नीचे जाकर बच्चे को ले आये, मगर कोई चीज उसकी पैरों को रोके रही और वह वहीं खड़ा उसे देखता रहा। शाम तक न जाने कितनी बार वह

---

1. डॉ० वार्ष्णेय : द्वितीय युद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 180

बालकनी पर आया और कितनी-कितनी देर वह वहाँ खड़ा रहा। आखिर उससे रहा नहीं गया तो उसने नीचे जाकर कुछ चेरी खरीदीं और बच्चे को देने के बहाने टूरिस्ट होटल की तरफ चल दिया।"[1] असामाजिक और अहं के शिकार पात्रों के रूप में 'जख्म' के नायक को लिया जा सकता है। वह पूरी तरह अह-ग्रस्त चरित्र है। उसकी अहँता यहाँ तक बढ़ी हुई कि वह यह सहन तक नहीं कर सकता कि उसकी उपस्थिति में कोई किसी दूसरे के बारे में सोचे भी। यद्यपि उसमें तनाव और असमन्जस का भाव है किन्तु अपने 'स्व' के प्रति इतना केन्द्रित है कि उसका अहं जगह-जगह सामने आ जाता है। नायक का यह कथन कि "मैं तुम लोगों की तरह नहीं जी सकता ...... मैं अपने वक्त का हिस्सा नहीं, उसका निगहबान हूँ। मैं जीता नहीं देखता हूँ क्योंकि जीना अपने आप में घटिया चीज है।"[2] उसकी अहंता, मौलिकता और भीतर के बिखराव को ही व्यक्त करता है। 'जीनियस' में भी यही रूप कुछ हल्के रूप में देखा जा सकता है।

राकेश के यहाँ ऐसे पात्रों की भी कमी नहीं है जो संघर्षजीवी हैं। ऐसे पात्रों में सुहागिनें की काशी को लिया जा सकता है। यों थोड़ा बहुत संघर्ष तो प्रायः सभी पात्रों में है। वे संघर्षों से गुजरते दिखाये गये हैं, भले हो उनकाबाह्य-संघर्ष अन्त तक पहुँचते-पहुँचते अन्तःसंघर्ष में परिणत हो गया हो। जहाँ तक प्रगतिशील चरित्रों का प्रश्न है वे अपने आप में स्वाभिमानी होने के साथ-साथ विद्रोही भी हैं। ऐसे पात्रों में 'जानवर और जानवर' कहानी का 'पाल', 'सेफ्टी पिन' की मिसेज सक्सेना और मिसेज सिंह को लिया जा सकता है। कुछ पात्रों की प्रगतिशीलता विद्रोह प्रेरित है तो कुछ की आधुनिकता से पुष्ट है। 'सेफ्टी पिन' और 'पाँचवे माले का फ्लैट' के पात्रों में जो प्रगतिशीलता है वह वैचारिक स्तर पर अधिक है। कहें कि वह आरोपित सी प्रतीत होती है क्योंकि वहाँ यह पात्रों के भीतर से फूटी हुई नहीं है। इसके विपरीत 'पाल' (जानवर और जानवर) की प्रगतिशीलता वैचारिक भी है और स्वभावज भी। उसमें विद्रोह है, स्वाभिमान है तभी तो वह पादरी से भिड़ जाता है। उसके द्वारा पादरी को पूछा गया प्रश्न कि "रात को तो हम गरीब जानवरों को गोली मारते हैं और सुबह गिरजे में उनकी रक्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—इसका कुछ मतलब निकलता है।"[3] उसके विद्रोही, स्वाभिमानी और प्रगतिशील चरित्र को ही पुष्ट करता है। यों इस कहानी के सभी पात्रों

---

1. वारिस : एक और जिन्दगी, पृष्ठ 32
2. वारिस : जख्म, पृष्ठ 233
3. वारिस : जानवर और जानवर, पृष्ठ 163

में पादरी के प्रति एक कुलबुलाहट मिलती है। अन्याय के चक्र में पिसते हुए कहानी के भीतर से जो आन्तरिक कसमसाहट व्यक्त हुई है और पात्रों में जॉन, मरिए, आंट सैली आदि में जो अव्यक्त आक्रोश है वह भी पात्रों के चारित्रिक पक्ष की प्रगतिशीलता को ही पुष्ट करता है। जिजीविषा' उन पात्रों में अधिक है जो जिन्दगी की विडम्बनाओं को स्वीकार करते हुए भी जीने की कामना लिये हुए हैं। ऐसे पात्रों में 'मलवे का मालिक' का 'गनी' और 'जख्म' का कथानायक बहुत कुछ सहकर भी जिजीविषा से युक्त है। उसकी सहन-शक्ति गजब की है और उसका स्नेहिल व्यक्तित्व इतना स्वस्थ और प्रभावी है कि 'रक्खा' पहलवान भी उसके समक्ष अपनी सारी हरकतें भूलकर चुप रह जाता है। 'जख्म' का कथानायक अन्दर-बाहर से छिलकर भी 20 वर्ष जीने की कामना लिये हुए है। वस्तुतः ये ऐसे पात्र हैं जिन्होंने जीवन की तपिश झेलकर आस्था और जिजीविषा ही हस्तगत की है। बेफिक्र और स्वप्नजीवी पात्रों में 'मिस्टर भाटिया' को लिया जा सकता है। उनके मंसूबे ऊँचे हैं। वे ऋण-ग्रस्त होकर भी बेफिक्र रहते हैं। लगता है दुनियाँ का गर्द-गुबार उन्हें छू तक नहीं गया है। किसी न किसी युक्ति से पैसे जुटाकर अपना शौक पूरा करना और भावी जीवन की रंगीनियों में खोते जाने वाला यह पात्र अपने ढंग का एक ही पात्र है।

भ्रष्ट और गुण्डा पात्रों में जिनकी प्रवृत्तियाँ पशुवत हैं, 'ठहरा हुआ चाकू' के नत्थासिंह को लिया जा सकता है। वह खूनी और बदमाश है। कत्ल करना उसके लिये मामूली सी बात है। यह बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती है। वह यहाँ से भी आगे जाता है। वह लड़कियों की दलाली करता है और वह भी ऊँचे तबके के लोगों के लिये। 'हक हलाल' का पण्डित और आखिरी सामान के मिस्टर भण्डारी व उनके मित्र, रोजगार का जमशेद तथा 'गुनाह बेलज्जत' का सुन्दरसिंह आदि ऐसे ही वासना के भूखे भ्रष्ट चरित्र हैं। राकेश ने इन चरित्रों को भी ईमानदारी से अंकित किया है। एक ओर ये भ्रष्ट चरित्र हैं तो दूसरी ओर स्वस्थ और समर्पित चरित्र भी राकेश की कहानियों में मिलते हैं। नारी पात्रों में 'उसकी रोटी' की 'बालो', 'वारिस' के मास्टरजी, 'मलवे का मालिक' का 'गनी' और 'आर्द्रा' की माँ स्वस्थ व समर्पित चरित्र हैं। 'बालो' का सुच्चा स्यों' के प्रति गहरा समर्पण है। वह बिना थके अपने पति की रोटी देने के लिये जाती है। वह पति निर्भरा है है, पर उस निर्भरता में विवशता नहीं प्यार का सच्चा समर्पण है। 'वारिस' के मास्टरजी भी शिक्षा के प्रति समर्पित हैं। वे थक-हार कर और पूरी तरह टूटकर भी अपने कर्म के प्रति निष्ठावान व स्नेहिल चरित्र के रूप में चित्रित किये गये हैं। 'मलवे का मालिक' का 'गनी मियाँ' जीवन के प्रति आस्थावान, ईश्वर का विश्वासी एक निष्कलंक चरित्र है। उसके मुँह से भले की भलाई के साथ-साथ बद की बदी के प्रति भी क्षमाभाव है। उसका व्यक्तित्व इतना प्रभावी एवं आस्थावान है कि

'रक्खा' पहलवान भी उसके सामने अपने कृत्य के लिये मन ही मन पश्चाताप करता चित्रित किया गया है।

इसके अतिरिक्त राकेश की कहानियों में सर्वाधिक संख्या इन पात्रों की है जो जीवनगत त्रासदियों को सहते-सहते हताशा-निराशा के बीच अकेले छूट गये हैं। इन पात्रों में ऊब, विवशता, भटकन, बेचैनी, अजनवियत और टूटन भरी पड़ी है। ये सबके बीच रहकर भी अकेले हैं, परिचितों के बीच अपरिचित व अजनवी हैं। फलतः बेचैनी और भटकन के शिकार हैं। इनमें स्त्री-पुरुष दोनों ही प्रकार के पात्र हैं। ऐसे पात्रों में 'ग्लास टैंक' की ममा, नीरू, 'सुहागिनें' की मनोरमा, एक और जिन्दगी का बीना-प्रकाश पुगल, मिसपाल, 'आखिरी सामान की मिसेज भण्डारी, 'फौलाद का आकाश' की मीरा, पाँचवे माले का फ्लैट के प्रायः सभी पात्र, 'जानबर और जानवर' के मास्टर और मैट्रनें, अपरिचित की नारी पात्र, पहचान का शिवजीत, 'फटा हुआ जूता' का राय और 'सेफ्टी पिन' के नारी चरित्र, खाली की तौषी, 'सीमाएँ' की उमा और 'उर्मिल जीवन- की नीरा आदि पात्र ऐसे ही हैं। ये सब के सब जिन्दगी से हारे-थके, ऊबे, निराश, अकेले और जीवन की विसंगतियों को झेलते हुए टूटते-बिखरते पात्र हैं। राकेश का कलाकार इन्हीं चरित्रों के बीच रहा है। ये सबके सब राकेश की निज़ी अनुभूतियों या कहें कि वैयक्तिक अनुभव का प्रतिफल हैं। सबके सब तनाव और अंतर्विरोधों में जीने वाले यथार्थ चरित्र हैं। लेखक ने इनकी प्रस्तुति और निर्मिति में अपने परिवेश को ही ग्रहण किया है। इनमें किसी की स्थिति आरोपित और कृत्रिम नहीं है। अकेला अनुभव करते हुये भी पात्र जीवन के साथ हैं। जीवन की जटिलता, ऊब और बेगानापन को राकेश ने इन पात्रों के सहारे प्रस्तुत करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। इन पात्रों के चरित्र विश्लेषण में कहीं अभिधा से, कहीं इतिवृत्त से, कहीं सांकेतिकता से और कहीं स्थितियों के संदर्भ से काम लिया गया है।

संवाद : संवादों को कहानी में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यद्यपि इसकी सर्वोपरि महत्ता नाटकों में होती है, किन्तु कहानी-कला के संदर्भ से भी इन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता। इनके प्रयोग से कहानी में आकर्षण, सजीवता और पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को प्रेरणा मिलती है। संवादों के सहारे कितने ही संदर्भ, कितने ही सूत्र स्वतः ही पाठक के सामने खुलते जाते हैं। यह वह तत्व है जो एक घटना या स्थिति से दूसरी को जोड़ता हुआ कथा को गति प्रदान करता है। इसके साथ ही संवादों के सहारे कहानी की मूल संवेदना और पात्रों के बीच सीधा संपर्क व आवागमन बना रहता है। वस्तुतः ये पाठक और कहानी और कहानी की संवेनना व पात्रों के बीच एक सेतु का काम करते हैं। सेतु जितना मजबूत और आकर्षक

होगा, उतना ही उससे आवागमन संभव होगा और पाठक उसकी ओर आकर्षित होता रहेगा। इस प्रकार कहानी के अन्तर्गत कथोपकथन की तीन दिशायें होती हैं—कथावस्तु का विकास, पात्रों का चरित्र-विश्लेषण और कहानी में कौतूहल के सहारे प्रवाह, प्रभाव और आकर्षण की सृष्टि। कथोपकथन का तारतम्य कहानी में ऐसा है जैसे नदी में लहरों की गति और उस पर थिरकता मचलता वायु का सहज संगीत। उनकी भाषा में सहजता के साथ-साथ लाक्षणिकता और व्यंजकता दोनों गुणों का समावेश होना चाहिये। आधुनिक कहानी-कला में संवाद आते तो हैं, किन्तु अपेक्षाकृत कम और परिवर्तित परिवेश में ही उनका विधान होता है।

राकेश जिस पीढ़ी के कथाकार थे उनमें नवीन प्रतिमानों के ग्रहण की प्रवृत्ति मिलती है। इन्होंने कहानी में संवादों को स्थान दिया है। उनकी अधिकांश कहानियों के संवाद न केवल पात्रों की बातचीत का मर्म समझाने के लिये प्रयुक्त हुए हैं, अपितु उनमें कहानी में आये कथा-सूत्रों, वर्ण्य-परिवेश और मनःस्थिति के निरूपण-विश्लेषण की भी पूरी क्षमता रहती है। राकेश के संवादों के लिये संवाद का प्रयोग कभी नहीं किया है। वे कहीं पर आये हैं जहाँ उनकी आवश्यकता है। साथ ही जैसी आवश्यकता, वैसे ही संवादों प्रयोग राकेश के संवाद शिल्प की विशेषता रही है। इस दृष्टि से यदि राकेश के संवादों का विवेचन करें तो स्पष्ट होता है कि वे संक्षिप्त हैं, पात्रों के चरित्र के विश्लेषण हैं और कथा को गत्वरता प्रदान करते हैं। उनमें प्रयुक्त भाषा न केवल सहज है, बल्कि आवश्यकतानुसार वह रंग-रूप और अपना व्यक्तित्व तक बदलती दिखाई देती है। इतना ही नहीं राकेश की कहानियों में अधिकांश संवाद ऐसे हैं जिनमें पात्रों मुद्राओं व स्थितियों की व्यंजना के साथ-साथ उनके कार्य-व्यापारों तक का संकेत मिल जाता है। संक्षिप्त कथोपकथनों की दृष्टि से रोजगार 'बस स्टैण्ड की एक रात' और 'मिट्टी के रंग' आदि कहानियों को लिया जा सकता है। इनमें या और भी कई कहानियों में जहाँ संवाद संक्षिप्त हैं वहाँ उनकी प्रभाव क्षमता तो बढ़ ही गई है, लेखक ने एक भी वाक्य यहाँ तक कि एक भी शब्द का अपव्यय नहीं किया है। कम से कम शब्दों के सहारे जो संवाद लिखे गये हैं, कई स्थलों पर तो वे मात्र एक दो या अधिक तीन शब्दों में ही पूरी बात कह देते हैं। स्पष्टीकरण के लिये यह संवाद देखिये जो अपनी संक्षिप्ति में अकेला है और सारे कहानी गत सूत्रों व संदर्भों का उद्घाटन भी करता चलता है :

ड्राइंग रूम में काना फूसी होने लगी।
'कौन है यह ?'
'उसकी बहन है।'
'उस हरामी की·······?'

'हाँ, उसकी बड़ी बहन है।'

'सगी बहन ?'

'सुना यही है कि सगी बहन है।'

कुछ होठों पर मुस्कराहटें फैल गई। आवाजें और धीमी हो गईं।

'यूँ तो काशी दुबली है।'

'पर कट अच्छा है।'

'वैसे उम्र भी ज्यादा नहीं है। बाईस तेईस साल की होगी।'[1]

इस संवाद में संक्षिप्ति है, घनता है, आकर्षण है और जिज्ञासा तत्व भी भरपूर है। जिस लड़की का परिचय अभी पाठकों को नहीं मिला था, वही इन तीन चार व्यक्तियों की बातचीत से मिल जाता है। साथ ही व्यक्तित्व विश्लेषण भी हो जाता है। इसी प्रकार के और भी बहुत से उदाहरण राकेश की कहानियों से दिये जा सकते हैं जहाँ संवाद संक्षिप्त, 'टुद पाइण्ट' और स्थिति को व्यंजित करते हैं। कथा को गतिशीलता प्रदान करने वाले संवादों तथा पात्र की मनःस्थिति को निरूपित करने वाले संवादों में 'उसकी रोटी,' 'मिस्टर भाटिया' और 'एक और जिन्दगी' व 'सुहागिनें' कहानियों के संवाद बड़े ही प्रभावी बन पड़े हैं। सुच्चासिंह को रोटी देने के लिये 'आलो' का समपर्ण भरा आग्रह व मिन्नत भरा स्वर तो दूसरी ओर सुच्चासिंह का क्रूर व्यवहार निम्नांकित संवादों से स्पष्ट हो सकता है। इनसे कथा जो गति प्राप्त करती है और चरित्रोद्घाटन भी होता चलता :

'सुच्चा स्याँ !' उसने हाथ ऊँचा उठाकर रोटी अन्दर पहुँचाने की चेष्टा करते हुए कहा, 'रोटी लेले।'

'हट जा,' सुच्चासिंह ने उसका हाथ झटक्कर पीछे हटा दिया।

'सुच्चा स्याँ,' एक मिनट नीचे उतर कर मेरी बात सुन ले। आज एक खास वजह हो गई थी। नहीं मैं.........।

'बक नहीं, हट जा यहाँ से,' कहकर सुच्चासिंह ने कण्डक्टर से पूछा कि वहाँ का सारा सामान उतर गया है या नहीं।[2]

राकेश की कहानियों में संवादों की जो शैलियाँ मिलती हैं उनमें अधिकांशतः उस नयी पद्धति का प्रयोग हुआ है जिसमें पात्रों की मुद्राओं, स्थितियों की व्यंजना

1. वारिस : रोजगार, पृष्ठ 46
2. पहचान : उसकी रोटी, पृष्ठ 166

ग्रौर साथ ही साथ कार्य-व्यापारों की विवेचना भी होती चलती है। इस दृष्टि से 'ग्राखिरी साम न', 'मि स्टर भाटिया', 'ग्रादमी ग्रौर दीवार', 'सेफ्टी पिन', 'सौदा' व 'ग्रार्द्रा' ग्रौर 'जानवर जानवर' को देखा-परखा जा सकता है। समकालीन कहानियों में संव दगत ये विशेषताएँ भरपूर मात्रा में मिलती है। 'ग्राखिरी सामान' कहानी के ये संवाद देखिये :

> "उन्होंने एलबम पर कुहनी रखे हुए, धीरे-धीरे ग्राँख मूँदली। फिर सहसा ग्राँखे खोल कर उन्होंने ग्रावाज दी चपरासी !"
>
> "हुजूर !" चपरासी मनोहर दरवाजे के पास ग्रा खड़ा हुग्रा। इतना धीरे वह कभी नहीं बोलता था। उसका यह स्वर उसकी ग्रकड़ी हुई मूछों, तुर्रेदार पगड़ी ग्रौर चमकती हुई बेल्ट के साथ मेल नहीं खाता था। उसकी बढ़ी हुई शिष्टता का जैसे ग्रर्थ था कि वह ग्राज चपरासी नहीं कुछ ग्रौर है, उसका ग्रदब, ग्रदव नहीं दया ग्रौर हमदर्दी है।
>
> "मुन्ना को थोड़ी देर के लिये नीचे ले जाग्रो, यहाँ गरमी है।"
>
> ग्रादेश पाकर भी कुछ क्षण मनोहर के पाँव नहीं हिले। वह दृष्टि से उन्हें देखता रहा—जैसे नौकर मालिक के रिश्ते की दहलीज लाँघकर एक कदम ग्रागे ग्राना चाहता हो, मगर संस्कारों की ग्रकड़ बढ़ने देती हो।"[1]

यहाँ राकेश का मंतव्य पात्रों की वार्ता प्रस्तुत करना उतना नहीं है जितना कि पात्र मिसेज भंडारी की मुख-मुद्राग्रों ग्रौर चेष्टाग्रों को उभारना है। कथोपकथन की यह प्रवृत्ति ग्रौर शैली राकेश की दर्जनों कहानियों में देखी जा सकती है। इस सन्दर्भ में 'जानवर ग्रौर जानवर' कहानी में ग्राया वह सम्वाद भी देखा जा सकता है जिसमें 'पाल' व 'पादरी मुख-मुद्रा व तत्सम्बन्धित स्थितियाँ भी व्यंजित हैं। राकेश ने 'पाल' के चेहरे की मुद्राग्रों ग्रौर उस पर क्रोधावेश में उभरती लाल रेखाग्रों व चेहरे के खिचाव को स्पष्ट कर दिया है। ऐसे कथोपकथनों का प्रयोग राकेश ने सर्वाधिक किया है जिनमें पात्रों की मुख-मुद्राग्रों व स्थितियों की व्यंजना के साथ-साथ उनके कार्य-व्यापारों की व्यंजना भी होती गई है :

> "मैं वजह जान सकता हूँ ?"
>
> "वह कुछ भी नहीं है।"

पादरी ने उत्तेजना के मारे बाइबिल को दोनों हाथों में भींच लिया ग्रौर त्यौरी डालकर कहा "तुम जानते हो कि जो ग्रच्छा-भला होकर भी सुबह-गिरजे में नहीं ग्राता उसे यहाँ रहने का ग्रधिकार नहीं है ?"

---

1. पहचान : ग्राखिरी सामान, पृष्ठ 64

गुस्से के मारे पाल के जबड़ों में माँस में खिचाव आ गया था। उसने मेगजीन मेज पर रखकर हाथ जेबों में डाल लिये और बिल्कुल सीधा खड़ा हो गया। बड़ी खिड़की के पास जॉन नजर झुकाए बैठा और आठ दस लोग नोटिस बोर्ड और चिट्ठियों वाले रैक के पास खड़े अपने को किसी न किसी तरह उदासीन जाहिर करने की कोशिश कर रहे थे। उनमें से किसी ने भी पाल के साथ आँख नहीं मिलाई। पाल का गला ऐसे काँप गया जैसे वह कोई बहुत सख्त बात कहने जा रहा हो।

"पादरी, हम गिरजे में जो प्रार्थना करते हैं, उसका कोई मतलब भी होता है?" एक लकीर दूर तक खिचती चली गई। पादरी का चेहरा गुस्से से स्याह हो गया। "तुम्हारा कहने का मतलब......" उसके दाँत भिच गये और वाक्य उससे पूरा नहीं हुआ। नोटिस बोर्ड के पास खड़े लोगों के चेहरे फक पड़ गये।"[1]

राकेश ने सम्वादों में अनेक स्थलों पर लाक्षणिक और व्यजक शब्दावली का प्रयोग किया है। यद्यपि ऐसे सम्वादों की भाषा भी सरल शब्दों से निर्मित है, किन्तु उसमें सांकेतिकता प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता का गुण पर्याप्त है। ऐसे सम्वाद 'सोया हुआ शहर', 'ग्लास टैंक', पाँचवे माले का 'फ्लैट', और फौलाद का आकाश में देखे जा सकते हैं। इन व्यंजक, लाक्षणिक और प्रतीकात्सक सम्वादों में स्थिति की व्यजना, पात्र की मनोदशा और परिवेश की सारी अर्थवत्ता समाहित है। ये न केवल पात्रों के मनोगत भावों के उद्घाटक हैं, बल्कि उससे सम्बद्ध परिवेश का भी बोध कराते हैं। उदाहरण के लिये निम्नांकित सम्वाद देखिये :

"पत्नी सुन्दर मिल गयी होगी", मैंने ममा से कहा, "तभी न आदमी सब नाते-रिश्ते भूल जाता है।"

ममा पल भर अवाक् सी मेरी तरफ देखती रहीं। जैसे अचानक उन्हें लगा कि मैं बड़ी हो गई हूँ। सयानी बात कर सकती हूँ। उन्होंने मेरे बालों को सहला दिया और कहा, नाता-रिश्ता नहीं है, फिर भी मैं सोचती थी कि "........" पत्नी उसकी सुन्दर है न? "मैंने फिर पूछ लिया।" ठीक से देखा नहीं, "ममा अन्तर्मुख-सी बोली, "दूर से लगा था सुन्दर है..........." "तभी ...." शब्द पर अपनी अठारह साल की परिपक्वता का इतना बोझ मैंने लाद दिया कि सीमा उस मनःस्थिति मैं भी मुसकरा उठीं।...... ममा छिली सी ही रहतीं। अकेले में मुझसे कहतीं "जाने उसे क्या हो गया है। यही मनाती हूँ खुश हो, खुश रहे। उस दिन ठीक से बात कर लेता, तो इतनी चिन्ता न होती .. ...."

---

1 वारिस : जानवर और जानवर, पृष्ठ 163

"मैं सिर हिलाती और तीलियाँ गिनती रहती । उन दिनों आदत सी हो गई थी । जब भी ममा के पास बैठती, माचिस खोल लेती और तीलियाँ गिनने लगती ।[1]

इसी प्रकार 'जख्म' कहानी का यह संवाद देखिये :

":पर मैं तुमसे बात करना चाहूँगा "मैंने कहा, "तुम कहो, तो यहीं कहीं बैठते हैं । नहीं तो कुछ देर के लिये मेरे घर चल सकते हैं ।"

"तुम्हारे घर ? "नियनलाइट्स के रंग उसकी आँखों में चमक कर बुझ गये । तुम्हारा घर कल से आज में कुछ और हो गया है ?"

बात मेरी समझ में नहीं आई । मैं चुपचाप उसकी तरफ देखता रहा । वह पहले से थोड़ा और मेरी तरफ को झुककर बोला, "तुम्हारा घर वही है न जहां तुम कल भी गये थे····अकेले ? बस के फुटबोर्ड पर लटके हुए ··· ? कल तुम्हें मेरे साथ ले जाने से डर लगता था··· आज नहीं लगता ? मैं जैसा बेकार कल था, वैसा आज भी हूँ··· बिल्कुल उतना ही बेकार और बदचलन ।"

··· ··· मेरे दोनों होंठ भी आपस में चिपक रहे थे । उन्हें कोशिश से अलग करके मैंने कहा "तुमने कल नहीं बताया कि तुमने यह नौकरी छोड़दी है"

"तुम्हारा खयाल' है मैं नौकरी छूटने की वजह से यह बात कर रहा हूं ?

वह अपनी आंखों को और पास ले आया ।" तुम समझते हो कि इसी वजह से कल मैं तुमसे चिपका रहना चाहता था ?··· पर खातिर जमा रखो, नौकरी न रहने पर भी मैं दस आदमियों को खिला सकता हूँ खाता मैं कभी किसी से नहीं।

उसने पास से गुजरते हुए एक टू सीटर को हाथ के इशारे से रोका, तो मैंने फिर कहा, 'चलो,घर चलते हैं । वहीं बैठकर बात करेंगे ।"

"तुम जाओ अपने घर', उसने मेरा हाथ अपने जख्मी हाथ में लेकर हिला दिया,····क्योंकि तुम्हारे लिये एक ही जगह है जहाँ तुम जा सकते हो । पर जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरे लिये एक ही जगह नहीं है····मैं कहीं भी जा सकता हूँ ।'[2] ऐसे और भी अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जहाँ संवाद लाक्षणिक और व्यंजक बन पड़े हैं । ऐसे संवादों से मित कथनों से अमित व्यंजनाएँ निकलती हैं । राकेश की कहानियों में आये संवादों की विशेषता यह भी है कि उनमें पात्रों के कथोपकथन से

---

1. फौलाद का आकाश : 'ग्लास टैंक', पृष्ठ 15
2. वारिस : जख्म कहानी, पृष्ठ 236-237

पहले और बाद में वक्ता की मनःस्थिति या घटना-संदर्भ भी जुड़े दिखाई देते हैं। एक स्थिति का परिचय देते-देते पात्र अपनी मूल बात कहता है । ऐसा करने से संवाद न केवल प्रभावी बन पड़े हैं. वरन् पात्र, परिस्थिति, संदर्भ और परिवेश के भीतर से निकले हुए प्रतीत होते हैं । 'ग्लास टैंक' की 'नीरू' जब 'सुभाष' को जाने से रोकना चाहती तो उसके कथनों में आये शब्द सीमित, बँधे हुए और नपे तुले है, किन्तु उनसे जो व्यंजना निकलती है वह उसके मनोभावों का बिम्ब प्रस्तुत कर देती है :

"आज आप चले जायेंगे ?"

उसने सिर हिलाया ।" एक दिन के लिए भी मुस्किल से आ पाया हूँ ।"

"वहाँ जरूरी काम है ?"

बहुत जरूरी नहीं, लेकिन काम है। पहली नौकरी छोड़दी हैं, दूसरी के लिए कोशिश करनी है ।"

"एक दिन बाद जाकर कोशिश नहीं की जा सकती ?" एकाएक मुझे लगा कि मैं यह सब क्यों कर रही हूँ । डैडी सुनेंगे, तो क्या सोचेंगे ?

',परसों एक जगह इण्टरव्यू हैं," उसने कहा ।

"वह तो परसों है न । कल तो नहीं""और मैं बाहर चली आई । उसकी आँखों में और देखने का साहस नहीं हुआ ।[1]

यद्यपि आज कहानी जिस स्थिति से गुजर रही है वह ऐसी है कि उसमें संवादों का प्रयोग कम से कम है । राकेश की 'जीनियस' भी ऐसी ही एक कहानी है जिसमें संवाद नहीं के बराबर हैं. किन्तु संवादहीन होते हुए भी कहानी में प्रवाह बराबर बना रहता है । संवादहीन कहानी होकर भी उसमें जो मन को बाँधने की क्षमता है वैसी अन्यत्र संभव नहीं लगती है । यों राकेश संवाद लिखने में माहिर हैं । उनके संवाद कहानीकार की कला-सजगता के प्रमाण हैं । वे संदर्भानुसार संक्षिप्त, विस्तृत, व्यंजनापूर्ण और काव्यात्मक होते चले गये हैं । राकेश जिस तरह जीते थे, जिस तरह के 'मूड़' के रचनाकार थे और जिस परिवेश में साँस लेते थे उसके गवाह उनके संवाद हैं । उनमें पूरा परिवेश, पूरा व्यक्ति और उसका व्यक्तित्व समाहित है ।

परिवेश : राकेश की कहानियों में चित्रित परिवेश कहानी की मूल संवेदना से सम्बद्ध,[पात्र की मनःस्थिति का प्रतिरूपक और समसामयिक जीवन का चितेरा है । चाहे महानगरीय परिवेश हो, या ग्रामीण परिवेश या फिर किसी यात्रा या संस्थान का परिवेश हो और चाहे वह उच्चवर्गीय हो, सबके चित्रण में राकेश ईमानदार रहे हैं । उनकी कहानियाँ समकालीन परिवेश की कहानियाँ हैं । फलतः

---

1. क्वार्टरे : ग्लास टैंक', पृष्ठ 94

उनमें चित्रित वातावरण भी अपने आप में किसी महत्वपूर्ण पात्र से कम अहमियत नहीं रखता है। राकेश की कहानियों का जो कथ्य है वह किसी अकेले व्यक्ति का नहीं है, वह हमारे समय का है और वह है आकुलता, गहरा असंतोष और विद्रोह का। इस सबको शब्द-बद्ध करने के लिये राकेश ने प्रायः हरेक कहानी में एक परिवेश दिया है। उसकी भूमिका पर कहानी का जो विकास हुआ है, उसे जो गति प्राप्त हुई है और जो रूप प्राप्त हुआ है, वह राकेश की परिवेश प्रतिबद्धता को तो प्रमाणित करता ही है, वह भी संकेत देता है कि कहानीकार के पास कैसी अर्न्तदृष्टि है? और उसकी सवेदना में जीवन का कितना अंश समाया हुआ है? राकेश की कहानियों में सेफ्टी पिन, मलवे का मालिक, पाँचवे माले का फ्लैट, जख्म, एक ठहरा हुआ चाकू, जानवर और जानवर, परमात्मा का कुत्ता, हक हलाल, फटा हुआ जूता, उसकी रोटी, बस स्टैण्ड की एक रात, आखिरी सामान, चौगान, सौदा और सोया हुआ शहर आदि परिवेश चित्रण की दृष्टि से विशेष प्रभावी बन पड़ी हैं। इनका परिवेश मध्यवर्गीय, उच्चवर्गीय, निम्न मध्यवर्गीय और सरकारी, गैर-सरकारी, शिक्षा-संस्थान और त्रासद जीवन का परिवेश है। 'जख्म' कहानी में नगरीय परिवेश को एक खास कोंण से चित्रित करते हुए राकेश लिखते हैं: "सड़क के उस तरफ पत्थर के खम्भों से डोलचों की तरह लटकते कुमकुमे एक-सी रोशनी नहीं दे रहे थे। रोशनी उनके अन्दर से लहरों में उतरती जान पड़ती थी जो कभी हल्की, कभी गहरी हो जाती थी। रोशन के साथ-साथ कोरिडार की दीवारों, आदमियों और पार्क की कई गाड़ियों के रंग हल्के-गहरे होने लगते। बिजली के ऊपर, आसमान से सटकर अन्धेरा हल्की धूल की तरह इधर से उधर मँडरा रहा था। कुछ अन्धेरा पास के कौने में बच्चे की तरह दुबका था। ठण्डी हवा पतलून के पाँवों से ऊपर को सरसरा रही थी।"[1]

इसी प्रकार 'सोया हुआ शहर' कहानी का प्रारंभ ही परिवेश के चित्रण से हुआ है। उसमें रात के घने अन्धेरे में निद्रालस शहर का वर्णन किया गया है। वहाँ खाली सड़क पर फैली हुई पतली चमकदार झिल्ली की तरह की रोशनी, दौड़ते कुत्ते व बस-स्टाप के शेड़ से सटा पेड़ और उसके पीछे के आस-पास का परिवेश बिम्बात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसमें पाठक के मन को बाँधने की पूरी क्षमता है: "खाली सड़क पर सिर्फ रोशनी नजर आती है—एक पतली चमकदार झिल्ली की तरह यहाँ से वहाँ तक फैली हुई। एक दुम हिलाता कुत्ता झिल्ली से ऊपर दौड़ता चला जाता है—जब तक कि वह मोड़ नहीं आ जाता जहाँ

---

1. वारिस : जख्म, पृष्ठ 226

जाकर उसकी दौड़ खत्म हो जाती है और वह चुपचाप कुछ देर हवा को सूँघकर एक कोने में दुबक जाता है। कौने के खम्भों की रोशनी और सब खम्भों से अलग और बहुत मद्धिम नजर आती है...... मद्धिम और अन्तर्मुख...... जैसे कि सुलगने का क्षण आने पर भी उससे सुलगा न जा सका हो। बस-स्टाप के शेड से सटा पेड़ काफी धुन्धला और घना नजर आता है—खिड़कियों की बत्तियाँ बुझी रहने पर यह पता नहीं चलता कि उसके पीछे कोई मकान भी है।"[1]

राकेश का व्मक्तित्व एक नाटककार का व्यक्तित्व था। अतः उनकी कहानियों में चित्रित परिवेश में पर्याप्त नाटकीय आभास है, नाटकोचित संस्पर्श है। यही कारण है कि राकेश किसी स्थान का, कमरे का और उसमें रखे साजो-सामान का वर्णन भी वैसे ही करते हैं जैसे किसी नाटकीय दृश्य का निर्देशन लिख रहे हों। 'एक ठहरा हुआ चाकू में चित्रित यह वर्णन देखिये : "कमरे में कुछ-एक कुरसियाँ थीं—लकड़ी की। वैसी ही, जैसी सब पुलिस स्टेशनों पर होती हैं। कुरसियों के बीचोबीच एक मेज नुमा तिपाई थी जो कि कुहनी ऊपर रखते ही झूलने लगती थी। आठ फुट और आठ फुट का वह कमरा इनसे पूरा घिरा था। टूटे पलस्तर की दीवारें कुरसियों से लगभग सटी हुई जान पड़ती थीं। शुक्र था कि कमरे में एक दरवाजे के अलावा एक खिड़की भी थी।"[2] स्पष्ट ही यह उद्धरण एक नाटककार का कहानीनुमा उद्धरण है। इसमें चित्रिन परिवेश उसकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का प्रमाण है। वस्तुतः राकेश ने परिवेश के चित्रिण में यथार्थ दृष्टि से काम लिया है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में आया परिवेश मन को बाँधता है। हमारे मन में एक गहरा बोध जागता है। जिस तरह उनकी कहानियों में जीवन संकेतित है उसी तरह चित्रित परिवेश की पीठिका पर समकालीन व्यक्ति अपनी पूरी तस्वीर के साथ उतरता चला गया है।

भाषा-शैली : भाषा वह माध्यम है जिसके सहारे एक व्यक्ति और परिवेश का सत्य दूसरे तक पहुँचता है। परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर घटित होती रहती है और उसी के कारण स्थिति, परिवेश और व्यक्ति की मनःस्थिति भी बदलती हुई नया रूपाकार ग्रहण करती रहती है। यहाँ तक कि स्वयं भाषा की प्रकृति भी गत्वर है। यदि वह ऐसी न हो तो परिवर्तित जीवन-दृष्टि को कैसे व्यंजित कर सकती है? उसकी समकालिकता कैसे बनी रह सकती है? फिर आज तो यह समस्या और भी उलझ गई है, किन्तु सन्तोष है कि समकालीन रचनाकार उसे अपने ढंग से

---

1. वारिस : सोया हुआ शहर, पृष्ठ 67
2. पहचान : एक ठहरा हुआ चाकू, पृष्ठ 11

सुलझाते हुए शब्दों में छिपे नये मौलिक अर्थों की खोज कर रहे हैं। इतना ही क्यों वे शब्दों का निर्माण भी कर रहे हैं। अपने अनुभूत सत्य की व्यंजना के लिए अन्य भाषाओं से शब्दों का ऋण भी ले रहे हैं, किन्तु यह शब्द-ऋण ऐसा है जिस पर कोई ब्याज नहीं लगता और न उसके बोझ से ऋणी ही दबता जा रहा है। कारण यह ऋण एक दूसरे को समझने-समझाने के लिये हैं, अपनी बात को गहराई से व्यक्त करने के लिये है और यथार्थ-स्थितियों से सीधे साक्षात्कार के लिये है। नयी कहानी की भाषा में भी यह स्थिति दिखाई देती है। परिवेश के प्रति प्रचेता प्रज्ञा रखने वाले राकेश की कहानियों में प्रयुक्त भाषा के तेवर बदले हुए हैं, उसका मिजाज सहजता का है--साधारणता का है। वह सीधी सपाट, अर्थवान और सार्थक भाषा है। राकेश भाषा को मात्र शब्दों का संयोजन नहीं मानते थे, वे तो उस संयोजन से प्राप्त होने वाले अर्थ को महत्व देते थे। यह अर्थ किसी शब्द-विशेष के आश्रित न होकर समूची सब्द-संरचना से निकली ध्वनि, स्वराघात और उसकी विन्यास पद्धति पर निर्भर है। कारण सब्द तो उपकरण भर है। उपकरण के रूप में उसकी सामर्थ्य या असामर्थ्य ही एक विशेष सन्दर्भ में उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति का कारण बन सकती है। अतः कहानीकार भाषा की व्यावहारिकता का पक्षपाती है। कहानी के सन्दर्भ से भाषा की बात को किसी भी कोण और धरातल से देखें वह जिन्दगी और यथार्थ पर जाकर ही टिक जाती है। कारण उसी से हम जिन्दगी को जीते, समझते और अभिव्यक्ति देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आज का कहानी-कार साहित्यिक अथवा फार्मूलाबद्ध भाषा से बचना चाहता है क्योंकि वह जनमानस को प्रभावित करने की क्षमता नहीं रहती है। राकेश की भाषा एक ऐसी ही रचना-कार की भाषा है जिसमें शब्द सीधे-सादे, किन्तु गहन अर्थोद्घाटक, व यथार्थ से संपृक्त और अनुभूति के ताप-संताप को बखूबी व्यंजित करने की क्षमता से युक्त हैं। उनकी भाषा अनुभूति और संवेदना के अनुरूप है। उसमें लेखक व पाठक के बीच मैत्री स्थापित करने का गुण है। हाँ वह गुण उसमें केवल शब्दों के सफल प्रयोग के कारण ही नहीं आया हैं, अपितु व्यंजकता, सांकेतिकता और सपाटता के कारण भी आया है।

भाषागत विशेषताएँ

1. राकेश की भाषा में प्रयुक्त शब्द तीन स्तरों पर दिखाई देते हैं—साहित्यिक स्तर जिसमें परिष्कृत शब्दावली आती है। जनभाषा का स्तर और देशी-विदेशी शब्दावली के योग से बनी भाषा का स्तर। परिष्कृत शब्दावली का प्रयोग राकेश ने वहाँ किया है जहाँ वे अधिक भावुक हो उठे हैं और उनकी कवित्व शक्ति मुखरित हो उठी है। यद्यपि ऐसा कम ही हुआ है, किन्तु जहाँ हुआ है वहाँ राकेश का संस्कृत ज्ञान भी प्रकट है। परिधि, वृत्त, केन्द्र, विचारधारा, भ्रान्त, शैशव, बिडम्बना,

विश्वमय, अन्तर्मुख, साक्षी, वाग्दान, अंकुर, शून्य आकाश, अव्यक्त, शैथिल्य, अवसन्न, निश्चेष्ट, मांसलता,[1] आलिंगन, अनेकानेक चुम्बन, अदृश्य सूत्र, जड़ता,[2] अवचेतन, नक्षत्र, सहसा, लोकाचार, पारदर्शिता, अन्तरिक्ष, अनिश्चित. रहस्यमय, अन्तर्वेदना,[3] विकास-खण्ड, आकाश-चित्र, शवदाह, पीड़ा, उग्रता, उपासना, महत्व-पूर्ण, सम्भ्रान्त, शिष्टता, प्रतिभा, तुकान्त, सम्मिश्रण, आहुति, महाविश्वमेघ,[4] आत्मा, मूढ़, उद्यान-विहार, तिरस्कृत, निरुद्देश्य, कृत्रिम, भ्रष्ट, तापमान, अभिवादन, कला-प्रदर्शनी, शिथिल-शक्तियाँ, अस्पष्ट, चित्रमय, शरीरमय, प्राणमय, 'उच्चारण में भ्रातृत्व की गंध', भक्ति-दर्शन, उत्तेजित, महत्वकांक्षी, अर्थपूर्ण दृष्टि, आत्मीयता, आत्मीयता का आवरण, सौजन्य, भंगिमा की उपेक्षा, 'भूमिका का वांछित परिणाम देखकर भी अनभिज्ञ सा बोला', 'चेष्टा करूँगा'[5] क्षितिज, दृश्यपट, निश्छलता, त्रुटियों की क्षतिपूर्ति, मानसिक विकृतियाँ, आदिम संस्कार, ममता, आर्द्रता, ग्लानि, मनोविद्[6] और कितने ही ऐसे शब्द है जो राकेश की कहानियों में प्रयुक्त हुए हैं। ध्यान देने की बात यह है कि यह परिष्कृत शब्दावली अनायास ही आ गयी है। हाँ कहीं-कहीं वैचारिकता के आग्रह से, कहीं व्यंग्य के लिये और कहीं कवित्व के आग्रह के कारण ऐसे शब्द स्वतः ही आते गये है।

2. भाषा का दूसरा रूप वह है जहाँ राकेश ने निहायत बोलचाल के शब्दों से अपने कथ्य को संप्रेषित किया है। उनकी भाषा का असली रूप बोलचाल के शब्दों के मेल से ही बना है। यही वह स्तर है जो उनकी भाषा को सीधी-सरल और व्यावहारिक बनाता है। इसके उदाहरण उनकी सभी कहानियों में देखे जा सकते हैं। स्पष्टीकरण के लिये ये प्रयोग देखिये :

(अ) "कभी यह सोचकर भी उसके शरीर में झुरझुरी भर जाती कि इतने सालों में वह हर रोज दोनों वक्त, दो आदमियों का, सिर्फ दो आदमियों का खाना बनाती आ रही है।"[7]

---

1. पहचान : उर्मिल जीवन कहानी में आये शब्द
2. पहचान : सुहागिनें कहानी में आये शब्द
3. वारिस : एक और जिन्दगी कहानी में आये शब्द
4. बारिस : एक आलोचना कहानी में प्रयुक्त शब्दावली
5. क्वार्टर : धुन्धला दीप कहानी में प्रयुक्त शब्दावली
6. क्वार्टर : अपरिचित कहानी में प्रयुक्त शब्दावली
7 क्वार्टर : फौलाद का आकाश कहानी, पृष्ठ 189

(ब) "उसका चौड़ा चौकोर चेहरा वैसे ही भयानक था—अपने ढीले-ढाले सूट में वह और भी भयानक लग रहा था। चेचक के दागों और झुर्रियों से भरा उसका चेहरा दीमक खाई लकड़ी की तरह जान पड़ता था। दूर से ही उस आदमी की आवाज सुनकर वचन का दिल धड़कने लगता और वह अपना दरवाजा बन्द कर लेती।"[1]

(स) 'घिसा हुआ जूता बम्बई की पटरियों पर बहुत सफाई के साथ फिसलता है—और राय का जूता तो फिसलते समय शब्द भी किया करता था............ मेज के नीचे रद्दी की टोकरी के पास उसका जूता पड़ा था जो उसने बाहर से आते ही खोलकर रख दिया था। जूते के मैले सिकड़े हुए तलुवे तिरछे होकर आधा-आधा इन्च ऊपर को सरक आये थे। पीछे की दोनों ओर की सींवने उघड़ रही थीं।[2]'

(द) 'वह बिना लाग-लिहाज के किसी के भी मुँह पर सच बात कह सकता था...... दस आदमियों के बीच अलफ-नंगा होकर नहा सकता था ......अपनी जेब का आखिरी पैसा तक किसी को भी दे सकता था।'[3]

(क) 'एक साइकिल मस्ती से चलती हुई गली की तरफ मुड़ जाती है। एक कार बिना हार्न दिये तेजी से निकल जाती है। कुत्ता मुश्किल से अपने को उसकी लपेट से बचाता है। उसका भौंकना गुर्राने में बदल जाता है......बीच-बीच में जैसे अपनी कमजोरी छिपाने के लिये वह एकाधबार भौंक भी लेता है। मकान की छत पर टहलती छाया सड़क की तरफ झुक जाती है। औंधी रखी चरपाइयों के पाये उसके आस-पास एक चौखटा सा बना देते हैं। सामने की चिमनी से दो टूटे पंख हवा में गोल-गोल तैरते हुए नीचे उतर आते हैं।'[4]

कहने की आवश्यकता नहीं राकेश की कहानियों से दिये गये ये उदाहरण प्रमाणित करते हैं कि उनकी भाषा का सही रूप यही है—सीधा-सपाट और सरल व व्यावहारिक। भाषा की यह सपाटता, व्यावहारिकता और सादगी उनकी प्रायः

---

1. क्वार्टर : आर्द्रा, पृष्ठ 63
2. वारिस : फटा हुआ जूता, पृष्ठ 132
3. वारिस : जख्म, पृष्ठ 232
4. वारिस : सोया हुआ शहर, पृष्ठ 68

सभी कहानियों में मिलती है। भाषा के इस रूप का निर्माण बोलचाल व जन-भाषा की शब्दावली से किया गया है। इसमें एक सहजता है, आत्मीयता है।

3. भाषा का तीसरा रूप यह है जिसमें राकेश ने धडल्ले से अँग्रेजी व उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है। फिर भी ये प्रयोग आरोपित नहीं लगते हैं। यही लगता है कि भीतर से उठी हुई अनुभूतियाँ खुद व खुद इन शब्दों के पास इस मंशा से चली गई हैं कि 'तुम हमें अभिव्यक्ति दो।' फिर शब्द की क्या मजाल कि वह अनुभूतियों की मंशा को पूरी न करें। अँग्रेजी और उर्दू फारसी के शब्द-प्रयोग से मिलकर बनी भाषा का यह रूप देखिये :

(क) "ड्राइंग रूम काफी खुला और बड़ा था, अकेले बैठने के लिये बहुत ही बड़ा। रात को वहाँ से गुजरकर पैन्ट्री में जाना पड़ता तो मीरा को अपने अन्दर एक डर सा महसूस होता। ड्राइंग रूम का खाली-पन एक तसबीर की तरह लगता, दीवारों के चौखटे में जड़ी तसवीर की तरह। बेडरूम के अलावा और सब कमरों की बत्तियाँ बुझाकर जब शंकर अपने क्वार्टर में सोने चला जाता तो किसी न किसी काम से रोज उसे उधर जाना पड़ता था।"[1]

(ख) "अखबारों के चीफ क्राइम रिपोर्टर ने तीस हजारी कैन्टीन की ठन्डी चाय के लिये छोकरे को डाँट-फटकार करते हुए सलाह दी, "आप पहला काम यही कीजिये कि जाकर अपनी रिपोर्ट वापस ले लीजिए। थानेदार मेरा वाकिफ है।"[2]

(ग) "मिस्टर भण्डारी के माथे पर हल्की-सी शिकन थी। सुधीर की उप-स्थिति में उनके माथे पर प्रायः यह शिकन पड़ जाती थी। सुधीर उनका कालेज के दिनों का दोस्त था, पर उसके पिता मिनिस्ट्री से सम्बद्ध थे, इसलिए वह बहुत शीघ्र उन्नति कर गया था……मिस्टर भण्डारी को एक्साइज और टैक्सेशन के महकमे में जगह भी सुधीर के रसूल से ही मिली थी। यूँ दोनों में खासी दोस्ती थी और रोज का साथ का उठना-बैठना था……"[3]

(घ) "मिसेज सिंह के चेहरे पर जो भाव आया, वह कुछ-कुछ फ्रांसीसी किस्म का था। कन्धे भी उन्होंने खास कान्टीनेटल अन्दाज से हिलाये।

---

1. क्वार्टर : फौलाद का आकाश, पृष्ठ 181
2. पहचान : एक ठहरा हुआ चाकू, पृष्ठ 21
3. पहचान आखिरी सामान, पृष्ठ 66

इससे बाहें सोफे से बाहर फैल गईं। उन्हें समेटती हुई वह खड़ी हुई उठकर एक जायजा लेती नजर उन्होंने नंगे फर्श पर डाली। दूसरी अपनी सैण्डिल पर और तीसरी चौखट की दहलीज पर।"[1]

4. इनके अतिरिक्त राकेश की कहानियों में कुछ ऐसे शब्द भी आये हैं जो ठेठ बोलचाल के हैं और ग्राम्य परिवेश की धरोहर हैं। इन पर प्रादेशिकता का रंग चढ़ा हुआ है। ऐसे शब्दों में मुंदी, विवाइयाँ, उचककर, झपकी, झुटपुटे, झन्झट, गमरू जवान, माहिया, एकाध, झौंटा झटपट, मुटियार, दीदे, निपूते, नुए, गूंधकर, सेंकना, खामखाह, तैश, दुबकना, गोडाई-निराई, लार, लम्बरदार और कुलिच्छिनी आदि को लिया जा सकता है। स्पष्ट है कि राकेश की भाषा के जो तीन स्तर हैं उनमें उनका असली व्यक्तित्व व्यवहारिक भाषा का है। इसमें हर भाषा के शब्दों को आने की छूट है, हर तरह का वाक्य उन शब्दों से बन जाता है। आज के आदमी की स्थिति और उसके परिवेश को स्पष्टतः मूर्तित करने के लिए यही भाषा जनप्रिय भी है और यही व्यवहारिक व उपयुक्त भी है। रही मुहावरेदानी की बात, उसको राकेश ने बहुत ज्यादा महत्व नहीं दिया है। केवल वे ही मुहावरे उनकी भाषा के प्रवाह में आये हैं जो रोजाना की जिन्दगी के अंग बने हुए हैं। उदाहरणार्थ आँख मिचौनी खेलना, गला छुड़ाना, गर्म माँस का चारा माँगना, सिर पर वारना, गुर्दे दुरुस्त करना, जलकर राख हो जाना, शहीद हो जाना, सिर पर हाथ फेरना, आग बबूला होना, चेमगोइयाँ शुरु होना, फटी-फटी आँखों से देखना, सिर पटकना, घर को आग लगा कर तमाशा देखना, गले में झाग उठना, नेकी की नेकी और बदी की बदी, कान झटकना और दाँत दिखाना व रोंगटे खड़े होना आदि। इन प्रयोगों को राकेश की कहानियों से छाँटना पड़ा है। इसका तात्पर्य यह है कि राकेश की भाषा में मुहावरेदानी कम है। केवल वे मुहावरे ही अपनाये गये हैं जो जीवन का अंग बनते-बनते आम भाषा के हो गये हैं।

5. राकेश की कहानियों में आई भाषा में रंगाई भी काफी है। वे प्रायः कवित्व मयी पंक्तियाँ लिखते हैं। रोमानी अन्दाज में लिखी गई सैकड़ों पंक्तियाँ राकेश की भाषा को काव्यात्मक, अलंकृतिपूर्ण और चित्रात्मक भी बनाती हैं। काव्यात्मक भाषा के कारण कहानियों के बीच-बीच में सूक्तियाँ भी आ गई हैं जिससे भाषा अनेक अर्थ-छवियों से दीपित हो उठी है, उसमें मन को बाँधने का गुण है। भले ही इसे डॉ० शिवप्रसाद सिंह भावुकता का परिणाम कहें, किन्तु मेरी दृष्टि में भावुकता क्या जीवन की अनिवार्यता नहीं है? क्या भावुक हुए बिना आज की

---

1. पहचान : सेपटी पिन कहानी, पृष्ठ 118

परिस्थितियों में भी मनुष्य अपनी जिन्दगी जी सकता है ? नहीं जी सकता है, इसलिए तो राकेश, जो जीवन के कहानीकार हैं, यदि भावुकतापूर्ण और काव्यात्मक व अलंकृत भाषा लिखते हैं तो उसे जीवन से कटी हुई भाषा नहीं माना जा सकता है। ऐसी काव्यात्मक भाषा का रूप उनकी अनेक कहानियों में मिलता है :

(क) "उसे लगा कि सितारा लान की घास पर उतर आया है, वहाँ से आँख झपकता हुआ उसे ताक रहा है। वह उठी और रबड़ की चप्पल वहाँ छोड़कर लान में उतर गयी। पास जाकर देखा कि शबनम की एक अकेली बूँद उस सितारे को अपने में समेटे है।"[1]

(ख) "अपने कटे हुए रेशमी बालों को गरदन पर फिसलना उन्हें सदा रोमांचित कर देता था। उन्हें लगता जैसे किसी खरगोश के जिस्म से गरदन सहला रही हों।"[2]

(ग) "वह उससे इस तरह लिपट गया जैसे डूबते आदमी के हाथ में किसी तैराक की बाँह आ गई हो और वह किसी भी तरह उसे छोड़ना न चाहता हो।"[3]

(घ) कितना विचित्र था वह क्षण—आकाश से टूटकर गिरे हुए नक्षत्र जैसा ! कोहरे के वक्ष में एक लकीर सी खींचकर वह क्षण सहसा व्यतीत हो गया।"[4]

(च) "किसी-किसी क्षण आसमान एकाएक सुलग उठता है फिर उसी तरह बुझा-बुझा हो जाता है। बहुत से तेज जर्रे रोशनी में काँप उठते हैं।"[5]

(छ) "खिड़की के किवाड़ की छाया वामन के चरण की तरह तिरछी ऊपर की ओर जा रही थी।"[6]

(ज) "उसने अपनी कमीज कुहानियों से और सलवार पिंडलियों से ऊपर उठा रखी थी। गोरे मांस के उन स्वस्थ युवा पिंडों में निर्माण का

---

1. क्वार्टर : फौलाद का आकाश कहानी, पृष्ठ 184
2. पहचान : आखिरी सामान, कहानी, पृष्ठ 63
3. पहचान : गुनाह बेलज्जत कहानी, पृष्ठ 194
4. वारिस : एक और जिन्दगी कहानी, पृष्ठ 11
5. वारिस : सोया हुआ शहर कहानी, पृष्ठ 69
6. वारिस : एक आलोचना कहानी, पृष्ठ 94

कुछ ऐसा कौशल था.......कि उसे पास से देखकर मुझे कुछ वैसा भरी हुई नदी के तट से उसके मंथर प्रवाह को देखकर होता है।"[1]

(झ) "कीमती से कीमती कपड़े उसके अंगों को छूकर जैसे मुरझा जाते थे।"[2]

(ङ) "उसने चलने की बात कही तो मुझे लगा जैसे कपड़े उतारकर किसी ने मुझे ठंडे पानी में धकेल दिया हो।"[3]

(ट) "पूरब में अन्धेरे की सतह पर एक हल्की लाल किरण तैरे आई थी।"[4]

(ठ) "नीम की टहनियों पर काँपती सुबह धीरे-धीरे कमरे में उतर आई। धूप की चकत्तियाँ रोज की परिचित जगहों पर छितरा गईं।"[5]

स्पष्ट है कि राकेश की भाषा में पर्याप्त कवित्व शक्ति है। उनकी काव्यात्मक भाषा के कारण ही उन्हें नाजुक उँगलियों के सशक्त हस्ताक्षर कहा गया है। भाषा का यह काव्यात्मक रूप कहीं लक्षणा के सहारे और कहीं व्यंजना के सहारे अनेक नये संकेतों से भरा हुआ है। इसमें एक कलाकार की चित्रात्मक रुझान है, रूमानी संवेदना की दीप्त अर्थ-छवियाँ हैं और है एक भावाकुल तन्मयता।

6. राकेश की भाषा में बिम्ब-निर्माण की अद्भुत क्षमता है। ऐसे-ऐसे शब्द बिम्ब अलंकृत और ऐन्द्रिय बिम्ब उनकी भाषा में स्थान-स्थान पर मिलते हैं कि पाठक मुग्ध भाव से उन सबको देखता रह जाता है। भाषा में बिम्बोद्भावन की यह क्षमता उन सभी स्थलों पर मिलती है जहाँ कहानीकार या तो नगरीय परिवेश को उभारता है या फिर प्रकृति की अछूती छवियों को या किसी पात्र की मानसिक स्थिति-परिस्थिति को। बिम्ब गुण से युक्त भाषा का यह स्वरूप अनेक कहानियों में उपलब्ध है। उदाहरण के लिये पंक्तियाँ देखिये : "जूते के मैले सिकुड़े हुए तलवे तिरछे होकर आधा-आधा इंच ऊपर को सरक आये थे। पीछे की दोनों ओर की सींबने उधड़ रही थीं। उसे याद नहीं था कि यह जूता उसने कब खरीदा था—उसे खरीदे हुए कम से कम अढ़ाई तीन साल हो चुके थे। जूते के दाँत बहुत पहले ही

---

1. वारिस : हक हलाल कहानी, पृष्ठ 146
2. क्वार्टर : सीमाएँ कहानी, पृष्ठ 53
3. क्वार्टर : ग्लास टैंक कहानी, पृष्ठ 97
4, क्वार्टर : फौलाद का आकाश कहानी, पृष्ठ 184
5. क्वार्टर : वही, पृष्ठ 185

निकलने लगे थे, पर राय उसे ठोंक-पीटकर लटकाता आ रहा था। कुछ महीने पहले सामने के जूते के होंठ भी खुल गये थे। पर राय ने मोची को चवन्नी देकर उन्हें बन्द करा दिया था। मगर इसके बाद जब जूते की बगलें शिकायत करने लगीं तो राय को बैठकर गम्भीरतापूर्वक सोचना पड़ा......"[1] फटे हुए जूते की स्थिति का इससे अधिक प्रभावी बिम्ब और क्या हो सकता है? यह निश्चय ही एक मुँह बोलता चित्र है जो अपनी कहानी का आप गवाह है। इसी प्रकार 'परमात्मा का कुत्ता' कहानी का प्रारंभ ही बिम्ब प्रधान भाषा-शैली में किया गया है। उसमें सरकारी दफ्तरों के बाहर के परिवेश और तत्संबंधित व्यक्तियों का यह बिम्ब देखिये:

"बहुत से लोग यहाँ-वहाँ सिर लटकाये बैठे थे जैसे किसी का मातम करने आये हों। कुछ लोग अपनी पोटलियाँ खोलकर सड़क के किनारे बिखर गये थे। छोले-कुलचे वाले का बाजार गर्म था और कमेटी के नल के पास एक छोटा-मोटा क्यू लगा था। नल के पास कुर्सी डालकर बैठा अर्जीनबीस धड़ा-धड़ अर्जियाँ टाइप कर रहा था, उसके माथे से बहकर पसीना उसके होठों पर आ रहा था, लेकिन उसे पोंछने की फुरसत उसे नहीं था। सफेद दाढ़ियों वाले दो-तीन लम्बे-ऊँचे जाट, अपनी लाठियों पर झुके हुए, उसके खाली होने का इन्तजार कर रहे थे।............ कमीजों के आधे बटन खोले और बगल में फाइलें दबाये कुछ बाबू एक दूसरे से छेड़खानी करते, रजिस्ट्रेशन ब्रांच से रिकार्ड ब्रांच की तरफ जा रहे थे।"[2] इसी प्रकार 'सोया हुआ शहर' कहानी में आये बिम्ब कहीं रात्रि की निस्तब्धता के, कहीं कार व साइकिल के तेजी से चले जाने के और कहीं मकान की छतों के दृश्यों के बिम्बों को उजागर करते चलते हैं। जब राकेश लिखते हैं कि "मकान की छत पर टहलती छाया सड़क की तरफ झुक जाती है। औंधी रखी चारपाइयों के पाये उसके आस-पास एक चौखटा-सा बना देते हैं।"[3] तो चाक्षुष बिम्ब पूरी प्रभावी शक्तियों के साथ पाठक के सामने आ जाता है। ध्वनि संवेद्य बिम्ब की दृष्टि से ये पंक्तियाँ देखिये: "किसी घर में फ्लश का हत्था जोर-जोर से हिलाया जाता है। छपाके साथ फ्लश का पानी बहने लगता है। फिर वह आवाज हल्की किलकारियों में बदल कर सू ऊँ की आवाज में गुम हो जाती है। लगता है जैसे कोई हवा को लगातार अन्दर खींच रहा हो।"[4] इसी प्रकार ये पंक्तियाँ भी देखिये जिनकी भाषा बिम्बोद्भावन

---

1. वारिस : फटा हुआ जूता, पृष्ठ 132
2. वारिस : परमात्मा का कुत्ता, पृष्ठ 85
3 वारिस : सोया हुआ शहर, पृष्ठ 68
4. वही वही, पृष्ठ 69

की क्षमता से युक्त हैं : "कुछ देर खाली सड़क पर वह आवारा घूमती है। बस स्टाप के पीछे मकान की छत पर एक छाया टहलती है। उस मकान और अगले मकान की छत पर लगे एरियल, उखड़े शामियाने के बाँसों की तरह नंगे और मनहूस, हवा से काँप जाते हैं। सामने बुझी चिमनी में एक कबूतर पंख फड़फड़ाने लगता है।.........ऊपर मकानों की तरफ से सीटी की आवाज सुनाई देती है—जैसे रात के सन्नाटे में अपने अकेलेपन को भुलाने के लिये आसमान सीटी बजा रहा हो।"[1]

राकेश की बिम्बमयी भाषा में कहीं-कहीं भाव इतने सघन और अनुभूतियाँ इतनी सान्द्र हो गई हैं कि उनके लिए वे छायावादी अलंकृति से काम लेने को विवश हो गये हैं। कौहरे भरे आकाश का यह बिम्ब देखिये जो छायावादी शिल्प के पार्श्व में आसानी से रखा जा सकता है : "कोहरा धीरे-धीरे इतना घना ही गया था कि बालकनी से आगे कोई रूप, कोई रंग नजर नहीं आता था। आकाश की पारदर्शिता पर जैसे गाढ़ा सफैदा पोत दिया गया हो।......... कौहरे के बादल कई-कई रूप लेकर हवा में इधर-उधर भटक रहे थे। अपनी गहराई में फैलते और सिमटते हुए वे अपनी थाह नहीं पा रहे थे। बीच में कहीं-कहीं देवदारों की फुनगियाँ एक हरी लकीर की तरह बाहर निकली थीं—कुहरीले आकाश पर लिखी गई एक अनिश्चित सी लिपि जैसी।[2] कहने का तात्पर्य यही है कि यहाँ राकेश की भाषा चित्रगुण संवलित काव्यभाषा के काफी नजदीक है। उसमें रंग, स्पर्श, ध्वनि और दृश्य संवेदन को उभारने का जो गुण है वह उनके समकालीन रचनाकारों में नहीं मिलता है।

7. राकेश की कहानियों की भाषा में जहाँ पर्याप्त काव्यात्मकता, चित्रात्मकता और अलंकृति है, वहीं उसमें प्रतीकात्मकता भी कम नहीं है। डा० शिवप्रसाद सिंह का यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि 'राकेश की शैली में प्रतीकात्मकता का बहुत ही संचेत पुट दिखाई पड़ता है।'[3] ग्लास टैंक, जंगला, 'फौलाद का आकाश', 'सेफ्टी पिन', जख्म सोया हुआ शहर, मलवे का मालिक और जानवर और जानवर' आदि प्रतीकात्मक कहानियाँ हैं। इनके शीर्षक व्यंजक और गहरा प्रतीकार्थ रखते हैं। इन कहानियों में प्रतीक व्यापक स्तर पर कथ्य को उद्भासित करते हैं। 'मलवे का मालिक' कहानी में 'मलवा' मानव शरीर का प्रतीक है। शरीर मलवे का ढेर ही तो हैं जो वृद्धावस्था को प्राप्त गनीमियाँ व 'रक्खे' पहलवान के शरीर की स्थिति का प्रतीक है। यों तो समूची कहानी का प्रतीकार्थ भी स्पष्ट

---

1. वही वही, पृष्ठ 68
2. वारिस : एक और जिदन्गी, पृष्ठ 15
3. माध्यम जनवरी, 1968 पृष्ठ 70

है । भारत के विभाजन की विभीषिका से अवशिष्ट यह मलवा उस मलवे का भी अर्थ देता है जो समाज के नित्य प्रति विगलित और जर्जरित होते बंधनों और मूल्यों के रूप में हमारी चौखट पर पड़ा है । 'मलवे' पर बैठा 'रक्खा' पहलवान समाज के उन ठेकेदारों का प्रतीक है जो आज भी पुरानी परंपराओं को अपनी सम्पत्ति मानकर उसकी रक्षा-सुरक्षा के लिये प्रयत्नवान बने रहते है । 'बस स्टैण्ड की एक रात' कहानी का 'लैम्प पोस्ट' मास्टर हरवंशलाल के व्यक्तित्व को भी संकेतित करता है । अतः कहानी का 'लैम्प पोस्ट' एक आश्रयदाता एवं प्रकाशमान शिक्षक का प्रतीक है । 'फौलाद का आकाश' उस व्यक्तित्व का प्रतीक है जिससे प्रेम और करुणा की बूँदे तक नहीं बरसती हैं । 'ग्लास टैंक' विवश, आत्म केन्द्रित किन्तु मुक्तिकामी नारी का प्रतीकार्थ लिये हुए है । 'जानवर और जानवर' का प्रतीक तो स्पष्ट है ही । वह इन्सानी खाल के पीछे छिपी पाशविक वृत्तियों का भी प्रतीक है । 'जख्म' बाहर का नहीं भीतरी जख्म का संकेत देता है । 'सोया हुआ शहर' का प्रतीकार्थ है – अपराधग्रस्त और वासनाग्रस्त जीवन । इसी प्रकार 'सोया हुआ शहर' कहानी में आये कतिपय अन्य अन्य प्रयोग यथा 'कबूतर का पंख फड़-फड़ाना', 'एरियल का काँपना', 'औंधी रखी चारपाइयों के पाये बना चौखटा', 'फ्लश के हत्थे का जोर जोर से हिलाया जाना और गत्ते की डिब्बियाँ और चमकते गोल सुनहरे पत्ते आदि सबके सब रात की बाँहों में सोये शहर की गोद में चल रहे लड़कियों के अवैध व्यापार-कर्म को ही संकेतित करते हैं ।

8. राकेश की भाषा में नाटकीयता का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । अनेक कहा-नियों की भाषा-शैली नाटकीय रंगत लिये हुए है । यह भाषा-शैली राकेश की सर्वा-धिक प्रिय शैली है । "फौलाद का आकाश' और 'जख्म' कहानियों की भाषा नाट्य तत्वों से भरपूर है । उनकी शैली में नाटकीयता आकर्षण और आकस्मिकता पर्याप्त मात्रा है । भाषा की नाटकीयता की दृष्टि से ये पंक्तियाँ देखिये : 'ट्रैफिक के आवाज से हटकर एक और आवाज–आसमान में बादल की हलकी गड़गड़ाहट । मैंने ऊपर की तरफ देखा ··· जैसे कि देखने से ही पता चल सकता हो कि वारिष फिर तो नहीं होने लगेगी ।"[1] नाटकीयता की यह प्रवृत्ति 'जख्म' कहानी के प्रारंभिक दो अनुच्छेदों में भी दिखाई देती है : "हाथ पर खून का लोंदा · सूखे और चिपके गुलाब की तरह । फुटपाथ पर औंधे पीपे से गिरा गाढ़ा कोलतार ···सर्दी में ठिठुरा और सहमा हुआ । एक दूसरे से चिपके पुराने कागज ···भींग कर सड़क पर बिखरे हुए । खोदी हुई नाली का मलवा···झड़कर नाली में गिरता हुआ । बिजली के तारों से ढका आकाश ···रात

1. वारिस : जख्म कहानी, पृष्ठ 236

के रंग में रंगता हुआ। चिकने माथे पर गाढ़ी काली भौंहें''' उँगली और अँगूठे से सहलाई जा रहीं।[1] यह अतिनाटकीयता है जो प्रशंसनीय नहीं है। वाक्य गठन की यह अदा, यानी संज्ञा पहले और कृदंत विशेषण अंत में, इतनी कृत्रिमता पैदा करते हैं कि बहुत सी चीजों को एक में समेटने का लेखकीय उद्देश्य विफल हो जाता है।[2] कहानी की संवेदना बिखरने लगती है और प्रयुक्त शब्दावली अर्थहीन और मुर्दा होने का आभास देती हुई पाठक के मन में खीझ पैदा करती है। 'ग्लास टैंक' कहानी का प्रारंभिक अंश भी भाषा-शैली की दृष्टि निरर्थक और उबाऊ है।

9. राकेश की भाषा-शैली में उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त यथार्थ संदर्भों व स्थितियों को अभिव्यंजित करने की भी भरपूर क्षमता है। इस दृष्टि से जानवर और जानवर, जख्म, पाँचवे माले का फ्लैट, मलवे का मालिक, परमात्मा का कुत्ता, सुहागिनें, सौदा, मंदी, एक ठहरा हुआ चाकू और गुनाह बेलज्जत आदि कहानियों को लिया जा सकता है। संदर्भानुकूल व पात्रानुकूल भाषा की ही बात नहीं है यहाँ तो परिवेश के अनुकूल भी भाषा शैली प्रयुक्त हुई है। यथार्थ स्थितियों की अभिव्यंजना में छोटे-छोटे वाक्य, सरल-सपाट शैली और रंगहीन, किन्तु अर्थगर्भित शब्दों का प्रयोग करने में भी राकेश कुशल दिखाई देते हैं। छोटे वाक्य, चुस्त शब्द और व्यंजक शैजी का मिलाजुला रूप इन पंक्तियों में देखा जा सकता है: 'एक साइकिल मस्ती में चलती हुई गली की तरफ मुड़ जाती है। एक कार बिना हार्न दिये तेजी से निकल जाती है कुत्ता मुश्किल से अपने को उसकी चपेट से बचाता हैं। उसका गुर्राना भौंकने में बदल जाता है।[3] इसके साथ ही ये पंक्तियाँ भी देखिये जिनकी वाक्यावली न केवल संक्षिप्त है, वरन् पात्र की मन:स्थिति की एक-एक परत को उसके परिवेश के साथ उघाड़ती चलती है: हवा थी। गर्मी भी थी। सामने गिरगाँव की सड़क थी आसानी से क्रास कर सकता था। मगर घर आने को मन नहीं था। खाना खाने जाने को भी मन नहीं था। न ईरानी के यहाँ, न गुजराती के यहाँ, न ब्रजवासी के यहाँ। रोज तीनों जगह बदल बदलकर खाता था। एक का जायका दूसरे से दब जाता था। पैसें अदा करने में सहूलियत रहती थी। चेहरे भी नये-नये देखने को मिल जाते थे। शिकायत भी तीनों से की जा सकती थी। 'कहीं-कहीं छोटे-छोटे वाक्यों के सहारे घटना-चक्र को जिस कुशलता के साथ अभिव्यक्ति दी गई है वह राकेश की भाषा सामर्थ्य को ही घोषित करता है: फोटो हाथ में लेकर देखता रहा। फिर वहीं रखकर किताब बंद करदी। उसे पलंग पर छोड़कर उठ खड़ा हुआ। फिर पलंग से

---

1. वही वही, पृष्ठ 225
2. माध्यम जनवरी, 1968, पृष्ठ 68
3. पहचान: पाँचवे माले का फ्लैट, पृष्ठ 215

उठाकर मेज पर रख दिया और खिड़की के पास चला गया। लौटकर कुर्सी पर आ गया। कितनी ही देर बैठा रहा। फिर एकाएक उठकर किताब को हाथ में ले लिया। फिर वहीं रख दिया। अंदर जाकर छुरी ले आया और डबलरोटी काटने लगा। फिर आधे कटे इलहास को वैसे ही छोड़कर खिड़की के पास चला गया।[1] इन पंक्तियों की भाषा पात्र की मन:स्थिति के जल्दी जल्दी बदलने को व्यक्त करती है। पात्र के मनोभावों के अनुसार एक अस्तव्यस्त मन स्थिति के अनुरूप ही यहाँ वाक्य भी उल्टे-पल्टे व अस्त-व्यस्त हैं। 'फिर' शब्द का अनेक बार प्रयोग मानसिक अस्तव्यस्तता को रेखांकित करने में सहायक तो है किन्तु यह सब एक समर्थ भाषा-प्रयोक्ता राकेश के शिल्प के अनुरूप नहीं लगता है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि राकेश की कहानियों की भाषा सीधी, सहज, सपाट अर्थोद्घाटक, सांकेतिक, व्यंजक, काव्यात्मक और चित्रात्मक तो है ही, उसमें परिवेश व संदर्भ के अनुकूल यथार्थ- व्यंजक शब्दावली, व्यंग्यात्मक उक्तियां, वर्तमान जीवन की त्रासदी को व्यक्त करने वाले शब्द-प्रयोग और नाटकीय शैली युक्ति प्रयोग भी भरपूर हैं। यों उनकी भाषा एक आधुनिक कलाकार की भाषा है। डा० शिवप्रसाद सिंह के शब्दों में वह 'साहब स्टाइल' भाषा है[2] क्योंकि इसमें जितनी साहित्यिकता और काव्यात्मकता है उतनी ही सपाटता व सहजता है। वह एक ओर अलंकृति युक्त है तो दूसरी ओर सहज, यथार्थ की व्यंजक और आवरणहीन भी है। जहाँ तक शैली का प्रश्न है वह भी चित्रात्मक, व्यंजक, लाक्षणिक, आत्मपरक और अनुभूति संवलित है। इतना ही नहीं आधुनिक युग की त्रासद, भयावह सौर उबाऊ स्थितियों की व्यंजना के लिये जिस तरह की ढाँचाहीन भाषा आज अपेक्षित है वह राकेश की कहानियों में सहज ही मिल जाती हैं। वह रवानगी से भरी हुई, प्रभाव व प्रवाह से रंगी हुई, झिझक से दूर एक आधुनिक कहानीकार की भाषा है। कहानी के शिल्प और शैली पर पूरा अधिकार, टकसाली प्रवहमान भाषा, अभिव्यक्ति का अद्भुद, कौशल, कहीं-कहीं किंचित् भावुकता और आदर्शवादिता-राकेश की उत्कृष्ट कहानियों के गुण हैं।[3]

मूल्य विमर्श :

राकेश की कहानियाँ स्थायी महत्व की कहानियाँ हैं। उनमें राकेश ने समकालीन जीवन के सुखुद-दुखुद प्रसंगों, जीवन में भरती जारही ऊब, अकेलापन और

---

1. पहचान : वही पृष्ठ 219
2. माध्यम : जनवरी 1968, पृष्ठ 68
3. उपेन्द्रनाथ अश्क : हिन्दी कहानी एक अंतरंग परिचय, पृष्ठ 253

उदासी का अंकन जिस सूक्ष्मता से किया है, उतनी ही गहराई से मानव-मानव के सम्बन्धों को उनकी पूरी कटुता, तिक्तता और त्रासदी के साथ व्यक्त किया है। इस प्रकार से राकेश की कहानियाँ मानव-सम्बन्धों, मानवीय मूल्यों और समकालीन परिवेश में साँस लेते मनुष्य की कहानियाँ हैं। उनमें प्रतिपादित अनुभूतियाँ कच्ची नहीं हैं। वे तो लेखकीय मानस में घुट-पिटकर रसायन बन गई हैं। उनका असर कहीं तेज और तिक्त है तो कहीं मीठा और मादक। वे कभी पाठकीय संवेदना को सहलाती हैं तो कभी धक्का देती हैं उनमें तेजाब की गंध है और शरबत का स्वाद भी। वे समकालीन परिवेश के तापसंताप, भय, अकुलाहट, सुरक्षा असुरक्षा, आत्मीयता-परायापन, निजता-बेगानापन और सर्द-गर्म श्वासों की वाष्प से गंधित हैं। यदि हम कतिपय प्रयोगशील कहानियों को छोड़दें तो राकेश की कहानियाँ नख से शिख तक चुस्त और दुरुस्त हैं। उनका शिल्प सधा हुआ, सहज और आत्मीय है। अनुभूत सत्य के अभिव्यंजन के कारण राकेश की कहानियाँ गहरे यथार्थ को उद्घाटित करती हुई मार्मिक बन गयी हैं। स्थितियों को यथार्थ की खुली नजर से देखने के कारण राकेश की कहानियों का न केवल कथ्य वरन् शिल्प भी आत्मीय, विश्वस्त और प्रभावी बन गया है। कहीं शिल्प में रचावट और कहीं संवेदना के रंग में रंगकर निखरी हुई भाषिक संरचना है, वह आधुनिक कहानियों के इतिहास में उनकी सामर्थ्य की परिचायिका हैं। रहे उनके पात्र वे विराट मानवीय चेतना का आभास देते देते अन्तर्मुखी होकर रह गये हैं। उनमें से अधिकांश अकेलेपन व अलनबीपन का बोझ ढोते ढोते घुटनशील माहौल में डूब गये हैं। एक वाक्य में ये जीवन की त्रासदी के प्रतिरूप हैं। अतः राकेश की कहानियाँ भी पात्रों की स्थिति के अनुरूप अपने परिवेश में ढलीं समकालीन जीवन के 'ट्रेजिक विजन' और 'टैंशन' की यथार्थवाही अभिव्यक्ति हैं।

डॉ० सुषमा अग्रवाल

जन्म 10 अगस्त, 1946

शिक्षा एम. ए. पी–एच. डी.,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सम्प्रति अध्यक्षा हिन्दी विभाग, सत्यसांई कालेज फॉर वूमेन, जयपुर

प्रकाशित रचनायें

(1) समकालीन नाट्य साहित्य और मोहन राकेश के नाटक

(1) आधुनिक हिन्दी निबन्ध

(3) कहानीकार मोहन राकेश

प्रकाश्य

(1) मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व